

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178786

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83/Y12S. Accession No. A/2089

Author यादव, बंसिनाथ

Title सराज

This book should be returned on or before the date
last marked below.

सरोज

[सामाजिक उपन्यास]



लेखक

श्री बंसी लाल यादव

प्रकाशक

हिन्दी साहित्य भण्डार
कर्मल गंज, प्रयाग

मूल्य ३ रुपये

प्रकाशक—

श्री गुरुचरणदास अग्रवाल

हिन्दी-साहित्य-भण्डार

कनकलगन्ज, प्रयाग

[सर्वाधिकार सुरक्षित]

मुद्रक—

अनारकली प्रेस, कनकलगन्ज, प्रयाग

शेखर बड़ी अच्छी प्रकृति का, हँसमुख और एक सुन्दर युवक था। पढ़-लिख लिया था जितना भाग्य में था। शिक्षा व विकास के सम्बन्ध में सच तो यह है कि उसे भाग्य के प्रति किसी प्रकार की कोई शिकायत करने का हक भी न था। वह बी० ए० पास न कर सका—किन्तु डिग्री ही तो योग्यता का माप-दण्ड नहीं है। अपने लिए चार पैसे जुटा लेने में वह तेज़ न था, कुशल न था और इसीलिए अब तक बेरोज़गार ही था; किन्तु बुद्धि उसकी इतनी कुण्ठित भी न थी कि इस सोच-बूझ की दुनिया में सदा 'ढेंचू-ढेंचू' ही करता रहे।

यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक शिक्षित और प्रखर बुद्धि वाला मनुष्य इस भीड़ से भरी विचित्र दुनिया में 'हीरो' की ही विशेषता लिये हुए हो। कहानी के हितार्थ यदि 'हीरो' के गुणों को हिमालय की छोटी तक ऊँचा कर दिया जाय तो उसके ठीक विपरीत एक बदमाश का चरित्र 'अटलाण्टिक' महासागर के पेंदे तक पहुँच जाता है। किन्तु शेखर इनमें से कोई भी न था। वह केवल एक सादा और अच्छा आदमी था—एक सुन्दर मानव। ... बस।

उस समय, उसको उसकी चाची बैठी हुई 'लैक्चर' पिला रही थी— 'मैं तो शेखर तुम्हें देखकर शर्म से ज़मीन में गड़ी जा रही हूँ।' वह कह रही थी— 'तू अब कोई नन्हा-मुन्ना नहीं है, पूरे चौबीसवें वर्ष में है; किन्तु तूने कभी अपने जीवन को 'जीवन' बनाने का प्रयत्न नहीं किया। ऐसे अवसर आये भी तो तूने उनको ठुकरा-ठुकरा दिया। रहा पैसे का खवाल, तो मैंने भी तुम्हें कभी तज़-दस्त होने का मौका नहीं दिया; किन्तु तू सिवाय मटरगश्त करने के, बार-दोस्तों में गप-शप करने के और किसी काम का अपने को नहीं बना सका।'

‘जी—’ शेखर के कण्ठ से झिझका हुआ स्वर निकला ।

और शेखर दिल में सोच रहा था कि आज खैर नहीं है । चाची का क्रोध सीमा पार कर गया है, शायद वह उसी पुराने किस्से को छेड़ना चाहती हैं ।”

वह कह रही थीं—‘तेरी माँ की एक ही तो यादगार रह गया है तू और जिस लाड़-प्यार से मैंने तुझे पाला है, ईश्वर ही जानता है; किन्तु तेरी ओर से उसका विनिमय कुछ अच्छा नहीं मिल रहा है । खैर, तेरे सम्बन्ध में मैंने एक निर्णय कर लिया है ।’

‘कैसा निर्णय चाची ?’ विस्मित होकर शेखर ने पूछा ।

‘यह कि या तो तू मेरे कहे अनुसार चल, नहीं तो मैं तेरा सारा हाय-स्वर्च बन्द कर दूँगी ।’

‘जी—’ और शेखर चुप हो गया ।

‘बेटे, तुझे तुझसे कोई दुश्मनी तो है नहीं; जो कहती हूँ, तेरे अच्छे के लिए ही कहती हूँ ।’

‘चाची, मैं बड़ा दुष्ट और नीच हूँ जो आपका कहना नहीं मानता ।’

‘मैं नहीं कहती कि तू दुष्ट है, नीच है... । नहीं-नहीं, तेरे अन्दर भी हमारी खानदानी खूबियाँ मौजूद हैं और मैं यह भी नहीं कहती कि तेरे यार-दोस्त बदमाश हैं या तेरी सोहबत बुरी है । ईश्वर देखता होगा जो मैंने आज तक कभी तेरे सम्बन्ध में कोई ऐसी-वैसी बात भी सुनी हो । तुझे तो केवल तुझसे यह शिकायत है कि तुझे अपने कर्तव्य का, अपनी जिम्मेदारी का तनिक भी खयाल नहीं है—’

‘कौन से कर्तव्य का चाची ?’

‘अब यह भी मैं बताऊँ ? तुझे अब अपना घर बसाना चाहिए, बेटा, ताकि तेरे ‘पागलपन’ की यह अवस्था दूर हो जाय और तेरा भविष्य सुधर जाय । कुछ अपने भावी जीवन को सुन्दर बनाने की भी फिक्र कर शेखर । आखिर यों कब तक चलेगा ?’

‘चाची—’

‘हाँ-हाँ, बेटे...कह-कह । शरमा नहीं । शेखर, सच तो यह है कि अब मेरे पास कोई खजाना नहीं गढ़ा है जो तुम्हें बैठे-बैठे को जीवन-पर्यन्त खिलाती रहूँ ! आखिर बूढ़-बूढ़ कर समुद्र भी खाली हो जाता है । अब तुझे अपनी चिन्ता आप करनी चाहिए । मैं तेरी शिखा और तेरे लालन-पालन में अब तक काफी से ज्यादा खर्च कर चुकी हूँ—’ फिर कुछ नम्र होकर बोलीं—‘मेरी यह अभिलाषा है बेटा, कि तू किसी सम्भ्रान्त और धनी कुल की एक देवी-स्वरूप लक्ष्मी लाये जिसके सहारे तू कोई व्यवसाय, धन्धा या नौकरी पाने में सफल हो सके ।’

‘पर चाची, मेरी आत्मा तो यह कभी स्वीकार नहीं करती कि पत्नी के धन से अपने भाग्य का निर्माण करूँ ।’

‘तू तो है मूर्ख—’ चाची को फिर क्रोध हो आया—‘ऐसे नाकामियों को हमने सदा दर-दर की खाक छानते हुए देखा है । तू जान, मेरा क्या होगा । आप दुःख पायगा, आप कौड़ी-कौड़ी को मोहताब होगा । मैं तो अब तुम्हें एक फूटी कौड़ी देने की नहीं !’

शेखर ने जब इस विधाता की लम्बी-चौड़ी दुनिया में आँखें खोलीं तो सिवा चाची के उसका ‘अपना’ और कोई न था । शैशव-काल से अब तक सदा चाची का ही प्रेम उसे अनवरत मिलता रहा है । वह चाची को ही सर्वस्व समर्पित रहा है, पिता भी और माँ भी । वह उसकी पूज्य थीं, आत्मीय थीं और...और भी बहुत कुछ ! और इसीलिए शेखर उनमें सदा श्रद्धा लुटाता था । उन्हीं की शीतल छाया में वह पनपा, बड़ा हुआ । चाची के ही स्नेह की उज्ज्वल धूप में उसे सुवास मिला, सौंदर्य मिला, जीवन-दान मिला और क्या कुछ नहीं ? किन्तु आज...जैसे वह निर्दयता-पूर्वक सब कुछ उससे छीन लेना चाहती थीं—सब कुछ, स्नेह भी, वात्सल्य भी, आर्थिक सहायता भी । किन्तु क्या वह समझती हैं कि शेखर कोई अपाह्न है जो झूठों मर जायगा ? और अभी-अभी जो उसकी चाची ने उसे फूटी कौड़ी भी नहीं देने की धमकी दी—तो उससे

उसके जवान खून में उबाल आ गया इसलिए उसने भवें सिकोड़ कर कहा—‘चाची, आप मुझे इस बात की क्या भमकी देती हैं । मैं कुछ अपाहज तो हूँ नहीं ।’

‘क्यों रे, मैंने तुम्हें इसीलिए पाला होगा कि बड़ा होकर मुझ पर इस तरह मुराया...?’

‘मेरी अच्छी चाची—’ दूसरे ही क्षण यह कहकर, शेखर अपनी चाची से छोटे बच्चों की भाँति लिपट गया ।

‘चल, रहने दे । शैतान कहीं का । मुझसे अब बात मत कर, मत । मुझ पर ।’ चाची शेखर को प्यार से झिड़क रही थीं; किन्तु स्नेह से चेहरे में हाथ भी फेरती जाती थीं ।

‘अच्छा-अच्छा, जहाँ तुम कहोगी वहीं मैं शादी करूँगा । बताओ गी लड़की मन में छाँद कर रखी है तुमने ?’

झूटकर रखने वाली कौन ? तू आप ढूँढ़ ले कहीं ।’ चाची अच्छा अभिनय कर रही थीं ।

, हाथ जोड़ता हूँ—अब तो बताओ चाची ?’

‘ल, खुशामदी सारे ज़माने का !...अरे भाई...वही लड़की है—वही, रायबहादुर चुन्नीलाल की लड़की उषा । कालेज में न जाने गैँ तक पढ़ी है ।’

‘क्या ?’— शेखर ने चाची से दूर होते हुए कहा—‘वह लड़की चाची, जिसके अहङ्कार और गर्व के कारण, उसकी सब सहेलियाँ तज़ हैं ? उसकी एक सखी पद्मा तो मेरे दोस्त चन्द्रहास की बहन ही है । एक बार अपनी पसन्द पर फिर से ध्यान दो चाची ।’

‘मैंने खूब सोच-समझ लिया है । इससे अच्छी लड़की तुम्हें और कहीं न मिलेगी । लोग तो व्यर्थ ही दूसरों को बदनाम कर देते हैं शेखर लड़की मेरी अपनी आँखों की देखी हुई है । बड़ी गरीब, बड़ी सुशील बहुत ही सुन्दर और बहुत ही शिष्ट !’

‘चाची, आपके ज़माने में शादी-ब्याह को इतना महत्व नहीं दिया

जाता था जितना हमारे जमाने में दिया जाता है। और दिया भी जाना चाहिए। यह कोई गुड़ियों का खेल नहीं है। यह तो जीवन का बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न है, बहुत ही...।

‘हाँ-हाँ, मैं सब समझती हूँ, कोई बची नहीं हूँ। और यह तू कैसे कहता है रे, कि हमारे जमाने में विवाह के प्रश्न को महत्व नहीं दिया जाता था?’

‘आप ही ने कहा था कि मेरी माँ की शादी उनकी इच्छा के विपरीत कर दी गई थी, जिसका फल यह हुआ कि उन्हें अपने जीवन का दो पड़ाव पकर देना पड़ा और मेरे निर्दयी और नृशंस पिता उनकी मृत्यु के पश्चात् उसे ऐसे जाकर कहीं छिपे हैं कि आज तक उनका पता नहीं।’

‘यह दुनिया है शेखर। यह जरूरी नहीं कि सभी तेरे पिता की तरह हों! खैर मुझे बहस करने की जरूरत नहीं। मैंने अपनी पसन्द की लड़की तुझे बता दी। अब तू जान। मैंने तुझे यह भी बता दिया है कि इस शादी में तेरा ही फायदा है। एक तो सम्भ्रान्त और माननीय, उच्च धराने की लड़की घर में आयगी और दूसरे उसके पिता अर्थात् राय बहादुर साहब का सब पर बहुत ज्यादा असर है, सब उनसे डरते हैं और उनका आदर करते हैं। उनका यह असर तेरे भविष्य के निर्माण में बहुत सहायक सिद्ध होगा। आगे तेरी मर्जी।’

शेखर ने देखा कि चाची का मिजाज फिर बिगड़ा जा रहा है। ज़रा सा उनकी पसन्द का और विरोध करने पर वह और अधिक बिगड़ उठेगी इसलिए उसने बात के तनाव को कुछ ‘हल्का’ करने के अभिप्राय से पहलू बदलते हुए कहा—‘किन्तु चाची, यह आपने कैसे विश्वास कर लिया कि आपकी पसन्द राय साहब के घर में स्वीकार कर ली जायगी अथवा यह सम्बन्ध पक्का कर लिया जायगा? हो सकता है कि लड़की पहले से ही कहीं माँग ली गई हो।’

शेखर नहीं जानता था कि चाची अब तक हवाई उड़ानें ही भर रही

थीं, इसलिए जब शेखर ने उनके समुख यह सम्भावनाएँ रखीं कि कुछ घबरा-सी गईं। वह शेखर की इन जिज्ञासाओं और प्रश्नों के लिए प्रस्तुत न थीं।

शेखर ने उनके चेहरे पर की भावभङ्गिमा से उनके मन की स्थिति का पता लगा लिया। उसने सुन्न की एक साँस ली और कुछ क्षण पश्चात् फिर वही प्रश्न दोहराया। किन्तु अब चाची उत्तर के लिए प्रस्तुत हो गई थीं, बोलीं—‘अब यह तो हमारा विचार है। यह भी तो सम्भव है कि अभी उसकी बात कहीं पकी न हुई हो। हमको कोशिश तो करनी चाहिए। केवल इस सन्देह पर कि लड़की कहीं माँग तो न ली गई हो, कोशिश न करना मूर्खता है।’

‘लेकिन चाची, मैंने उसको देखा तो है ही नहीं?’

‘फिर वही शैतानी? ... तू देखकर क्या करेगा? हमारा देख लेना क्या पर्याप्त नहीं है?’

‘तो फिर मैं उससे विवाह करके क्या करूँगा? आपका उससे विवाह कर लेना पर्याप्त है!’ शेखर ने मुस्कराकर कहा। चाची को गुस्सा आ गया।

‘शेखर, दूर हो मेरे सामने से। यही क्या कालेज में सिखाया जाता है कि बड़ों से इस प्रकार व्यवहार करो! इन लक्ष्यों से तो भीख माँगता फिरेगा—भीख। सच कहती हूँ, तेरे में ऐसी विशेषता कौन सी है जिसके कारण तू दुनिया में नामवरी पैदा कर सके?’

‘वाह, विशेषता कैसे नहीं है चाची?’ शेखर ने फिर चाची को प्रसन्न करने के अभिप्राय से कहा—‘मेरा नाम कितना सुन्दर है शेखर, उक्त कितना प्यारा नाम है! और हाँ, खानदान के तो कहने ही क्या हैं—जिसमें तुम जैसी मेरी चाची हो!’

‘रोंपा कर नाम और खानदान को, कोई दो कौड़ी को भी पूछने वाला नहीं है।’ फिर बोलीं—‘पैतृक-सम्पत्ति तो तुम्हें कौड़ी भी न मिली—मेरी ही ओर से जो मिल गया सो मिल गया! और भी शायद कुछ मिल जाता!’

‘क्या मिल जाता ?’

‘पीपलगाँव की समस्त ज़मीन व जयिदाद हमारी है; किन्तु मेरा बहनोई अनूप सब ढकार गया ।’

शेखर को छुट्टी मिली । विवाह के प्रसंग का तो खात्मा हुआ । उसने चाची को इसी विषय पर जान-बूझ कर उलझाये रखने को कहा—‘मेरे नाना का नाम, जिनकी मृत्यु हो चुकी है, शायद उमाकान्त था...? हाँ, चाची ! यह तो बताओ कि आपको मेरे पिता का भी कुछ इतिहास मालूम है क्या ?’

‘उनका नाम मेरे सामने न ले । तू भी बहुत कुछ अपने बाप को ही गया है ! मैं चाहती हूँ कि तेरी अपनी गृहस्थी हो ताकि तू उत्तर-दायित्व समझे, अपने आप को ‘मनुष्य’ बना सके । याद रख शेखर, एक अच्छी स्त्री आदमी का जीवन सँवार देती है और दुनिया में उसको काम का आदमी बनाकर रहती है । अच्छा, अब मैं तुम्हें सोचने के लिए एक माह का समय देती हूँ । इस बीच खूब सोच ले ।’

‘चाची, एक माह तो बहुत ही कम है । ईश्वर के लिए, कम से कम छः महीने का समय तो दीजिए मुझे !’

‘छः महीने ! ताकि वह लड़की हाथ से निकल जाय ?’

‘छः महीने कोई ज्यादा नहीं हैं चाची । तब तक आप अपनी बुद्धिमत्ता द्वारा यह मामला राय बहादुर साहब के यहाँ उलझाये रखें ।’

‘अच्छा जा । छः महीने सही । लेकिन उसके बाद मैं कुछ सुनना नहीं चाहती ।’

‘मेरी अच्छी चाची !’ और शेखर फिर चाची से लिपट गया । फिर चाची को प्रसन्न करके बरता-बरता बोला—‘चाची, कुछ पैसे चाहिए ।’

‘फिर वही ! सच कहती हूँ शेखर, एक चाँटा रसीद कर दूँगी अभी ।’

शेखर ने रोनी सूरत बनाई तो चाची को ममता आ गई—‘जा, तू पीछा नहीं छोड़ने का—मेज़ के ड्रायर में से निकाल ले । कितने चाहिए तुझे ?’

‘पहले देखता हूँ, कितने हैं ।’ फिर जाकर रुट से ड्रायर खोली और बोला—‘इसमें अहा, सौ-सौ के दो नोट ।’ फिर दोनों नोट जेब में रखते हुए बोला—‘अच्छा चाची, अब चल दिये ।’

‘चल दूर हो यहाँ से, शैतान ।’

शेखर चला गया तो चाची ने एक ठंडी साँस ली—फिर अम्बुट से स्वर उनके मुँह से निकले—‘मेरा बच्चा ! अपनी माँ की एक मात्र स्मृति ।’ और एक अस्पष्ट से सुख से उनके नेत्रों के कोर कुछ-कुछ गीले हो गये ।

२

‘ओह, अभी तो छः महीने पड़े हुए हैं ।’ शेखर ने डाकस्थाने से सौ-सौ का नोट भुनाते हुए सोचा ! छः माह ! किन्तु छः माह बाद क्या होगा ? सम्भव है, मैं मर जाऊँ । राय बहादुर साहब की लड़की ऊषा मर जाये या चाची । चाची ? नहीं-नहीं, ईश्वर इन्हें सुखी रखे ! शङ्ख-सूरत कैसी है राय बहादुर की लड़की की ? ऊँह, सूरत भी क्या कोई विचित्र होगी ? वही पञ्च-तत्त्व निमित्त देह है, देह में छोटा-सा दिल है, आदमी का बच्चा है । खूब, तो वैसे किसी जानवर से भी शादी हो जाया करती है ? नहीं साहब मैं राय बहादुर की लड़की से शादी नहीं कर सकता । पहले तो वह राय बहादुर की लड़की है और यहाँ अपना बाप ही लापता । दूसरी बात यह कि उस समय तक विवाह का क्या मज़ा जब तक कि होने वाली पत्नी के नाम व कल्पना मात्र से मुँह में पानी और दिल में ठंडक सी पैदा न हो ? और होने वाली पत्नी यदि अपने सौंदर्य द्वारा होने वाले

पति को बेसुध : , बना दे—यहाँ तक कि पति उसकी कल्पना में डूबकर एक प्यार की हल्की चपत की गर्मी भी अपने प्राणों में अनुभव न कर सके तो होते-होते रह जाने वाले पति को खुशी से आत्महत्या कर लेनी चाहिए और पत्नी के लिए शुभकामनाएँ और बस ।

शेखर इन्हीं विचारों में इतना व्यस्त था कि उसे पता नहीं कब वह घर आ गया—घर आकर दादी बनाने बैठा । फिर वही विस्मृति, वही विचारों की भीड़ । शेखर डुल गया ।—मैं शादी अभी करना चाहता नहीं, फिर वाची व्यर्थ ही यह संकट कर देने के लिए क्यों कमर कस रही हैं ?—और एक महारा प्रश्नवाचक चिह्न शेखर के मन में बन गया ।

इस चिह्न के ओरे-ओरे उलझा हुआ शेखर एक अँगड़ाई के साथ उठा और नहाने का निश्चय कर, उसने कमरे की ओर पैर बढ़ाया । उसे पता नहीं कि विचारों के व्यूह में इतना फँस गया था कि दादी केवल एक ओर की ही बनकर रह गई थी ।

शेखर को जब पैसे मिलते थे तो वह सबसे पहले दो काम किया करता था । एक तो सबसे पहले सिगरेट खरीदता, दूसरे उस दिन वह सबसे ज्यादा कीमती 'क्लास' में बैठ कर सिनेमा देखता । इसलिए अब भी उसने मुँह से 'स्टेट एक्सप्रेस' लगा हुआ था और उसने पूर्ण निश्चय कर लिया था कि सन्ध्या को सिनेमा जायगा ।

सन्ध्या तक उसे पता नहीं कि दादी आधी ही बम पाई है । और जब वह सिनेमा जाने की तैयारी कर ही रहा था तो चन्द्रहास ने कमरे में प्रवेश किया—'कहो शेखर, क्या हो रहा है ?'

'ओहो चन्द्रहास ! खूब आये ! चलो, सिनेमा चलते हो ?'

'पैसे ?'

'हम देंगे ।'

'नहीं, हम देंगे ।' चन्द्रहास ने कहा ।

'आप पागल हैं ।'

‘हो सकता है, किन्तु उसका सिनेमा से कोई सम्बन्ध नहीं ।’ फिर शेखर की आधी बनी हुई दाढ़ी की ओर ध्यान से देखते हुए मन ही मन मुस्कराया । फिर बोला—‘हाँ, मैंने कहा, क्या इसमें कोई खास रहस्य है या कोई नवा फ्रेशन है यह ?’

शेखर ने विस्मित होकर पूछा—‘क्या ?’

‘यही इकतरफ़ा प्रेम ?’

‘क्या ?’

‘कुछ नहीं, यही—‘फिर भी मोहब्बत छिप न सकी, जब तेरा किसी ने नाम लिया ।’ गुनगुनाते हुए चन्द्रहास ने एक शीशा उठाकर शेखर के सामने कर दिया । शेखर के पहले तो कुछ समझ में नहीं आया किन्तु जब उसने ध्यान से देखा तो शीशे में अपनी आधी बनी हुई दाढ़ी नज़र आई ।

‘धू तेरी की !’ ठहाका मारते हुए शेखर बोला ।

‘यही मैं देख रहा था कि आखिर यह क्या पागलपन है ? क्या किसी गोरी ने—?’ आँखें नचाते हुए चन्द्रहास ने शेखर से पूछा ।

‘मान गये भाई चन्द्रहास ! कायल हो गये रायबहादुर की लोंढिया के । उसमें आदमी को आत्म-विस्मृत कर देने की बहुत बड़ी चमत्ता है ।’

‘कौन राय बहादुर की लड़की ?’

‘तुम नहीं समझते; पर वह कोई समझने योग्य बात भी नहीं है; क्योंकि मैं उससे शादी नहीं कर सकता । मुझे उसकी कल्पना में विशेष आनन्द नहीं आता, और यदि कभी कल्पना में उस पर सोच-विचार भी करता हूँ तो ऐसा अनुभव होता है जैसे कोई श्रद्धा और विश्वास में रत भक्त अपने स्वामी का विचार करता हो—बहुत ही पौढ़, बहुत ही दुर्बोध । अकल्पित और जटिल विचार ।’

चन्द्रहास ने हारकर कहा—‘तुम कुछ बताना नहीं चाहते हो तो मैं पूछने की मूर्खता क्यों करूँ ?’

‘आदमी तो तुम कुछ समझदार मालूम होते हो । अच्छा अब चलो ।’ शेखर ने मुस्कराते हुए कहा और फिर दोनों उस सिनेमा घर की ओर चल पड़े जिसमें ‘जुगनू’ चल रहा था ।

सिनेमा से लौटते समय शेखर के मन की विचित्र अवस्था थी । उसे आस-पास की प्रत्येक वस्तु से विरक्ति-सी हो रही थी । उसे अपना सुसज्जित कमरा काटने को दौड़ रहा था । एक तो पिक्चर ही ऐसी देखकर आया था कि जिसमें दृष्टा के विरुद्ध शादी हो जाने का भीषण परिणाम दिखाया गया था । इसके अतिरिक्त चाची की कल की बातें वह अपने चेष्टाकृत प्रयास द्वारा भी भुला न सका था और चाची का एक-एक शब्द याद आ-आकर उसके मस्तिष्क में बौखलाहट-सी भर रहा था । उसे लग रहा था जैसे घर की और बाहर की समस्त वायु दूषित हो गई है जिसमें उसका दम घुटा जा रहा है । उसको निकल भागना चाहिए, जितनी जल्दी हो यहाँ से निकल भागना चाहिए ताकि यहाँ से कहीं दूर जाकर वह साँस ले सके, जीवित रह सके और अपने घाव सँक सके । निकल भागना चाहिए; किन्तु कहाँ ?

इस प्रश्न का कोई उत्तर न था, और यह प्रश्न एकाकी बनकर छा गया । यदि उस प्रश्न का कोई उत्तर था तो यह कि उसे कुछ दिनों के लिए यहाँ से चला जाना चाहिए—कहीं भी, किधर भी, जहाँ पैर उसे ले जायँ । बस, पैरों की प्रेरणा पर ही उसे चलते चलना है । जो भी जगह सर्वप्रथम उसके दृष्टि-पथ के सम्मुख पड़े, वहीं उसे रुक जाना है । वही उसका पड़ाव है... पड़ाव ।

रात भर शेखर सो न सका । सुबह उसका दिमाग भारी था और आँखें बोझिल । नारते के समय उसने अपनी चाची से आज्ञा प्राप्त करनी चाही कि वह थोड़े दिन के लिए कहीं जाना चाहता है ।

‘कहाँ जाओगे शेखर, आखिर मालूम तो हो ?’

‘मेरी खुद की समझ में नहीं आता कि कहाँ जाऊँगा चाची ।’

‘मैं बताऊँ, पीपलगाँव चले जाओ । छोटा-सा गाँव है, जहाँ न सिंरमा है, न बाग, न रेल—तुम्हारा जी तो नहीं लगेगा वहाँ । फिर भी वह गाँव एकदम नहीं है, कस्बा है और उसमें ‘नई बस्ती’ से तो बिल्कुल शहर का-सा ही आभास मिलता है ।’

‘चाची, बस, मैं भी ऐसी ही जगह जाना चाहता हूँ जहाँ कोई चीज़ ऐसी न हो जो इस शहर में है ।’

‘तो हो आओ वहाँ । कुछ पैसों की ज़रूरत है ?’

‘जी नहीं, अभी तो मेरे पास हैं । आप ही ने मुझे बिगाड़ा है और बिगाड़कर अब हाथ-खर्च बन्द करना चाहती हैं ।’ चाची ने देखा कि शेखर का स्वर कुछ संयत है और कुछ विगलित । चाची अस्वाभाविक हँसी हँसकर बोली—‘नहीं-नहीं बेटा, मैं अभी छः महीने तक तो अपने शेखर का हाथ-खर्च बन्द नहीं करूँगी । हाँ, उसके बाद यदि तूने किसी प्रकार की मुझसे बगावत की तो तू जानेगा । छः महीने पश्चात्—’ कहते-कहते सहसा चाची रुक गईं, फिर एक ठंडी साँस भरते हुए कहा—‘छः महीने पश्चात्, यदि ईश्वर ने ज़िन्दा रखा तो अपने राजा बाबू का तो धूम-धाम से ब्याह करूँगी कि देखने वाले चकरा जायेंगे । ऐसा ब्याह न अपने चौखले में कहीं हुआ और न होगा ।’

‘ब्याह ? धूम-धाम ?’—कहता हुआ शेखर उठ खड़ा हुआ और थोड़ी देर बाद पीपलगाँव की ओर चल पड़ा ।

जहाँ तक रेल जाती थी वहाँ तक तो उसने उसमें यात्रा की । फिर मोटर पकड़ी और धूल की आँधियों से खेलता हुआ पीपलगाँव जा पहुँचा । यहाँ आकर शेखर को ऐसा लगा जैसे किसी नई दुनिया में पहुँच गया है । उसके गले के फन्दे और साँस के घुटाव में अब कुछ ढीलापन आ गया था और वह उस छोटी-सी बस्ती की प्रत्येक चीज़ में आनन्द लेता हुआ विश्राम-स्थान की खोज में चला जा रहा था ।

छोटी सी बस्ती होते हुए भी वहाँ एक तहसील थी । डाकखाना

और दो प्राइमरी स्कूल—(एक लड़कों का और दूसरा लड़कियों का) भी थे । कस्बे के दूसरे भागों में एक 'नई बस्ती' थी जहाँ बड़े लोग रहते थे—पढ़े लिखे, सभ्य-समृद्ध । लेकिन यात्रियों के ठहरने के लिए कुछ अच्छी व्यवस्था न थी । एक मामूली-सी धर्मशाला थी जिसमें कुछ साधू और भिखारी पड़े रहते थे और कभी कोई भूला-भटका मुसाफिर नज़र आ जाता था । शेखर ने पहली ही नज़र में एक बात 'नोट' की कि उस गाँव के लोग सहृदय और आतिथ्य-सत्कार में बड़े ही तत्पर थे । उसने जिस भी आदमी से धर्मशाला का पता पूछा उसने उसको पहले अपने यहाँ ठहरने का निमन्त्रण दिया; किन्तु वह अपरिचितों का अहसान नहीं चाहता था; इसलिए उसने धर्मशाला में कष्ट पाकर ठहरना ही उचित समझा ।

दो दिन और दो रात का सफ़र करके वह चाहता था कि अपने थकान से चूर शरीर को कहीं आराम दे । रात हो चुकी थी, वह धर्मशाला के पास पहुँचा; किन्तु उसमें आदमियों की भीड़ देखकर, उसे बहुत निराशा हुई । उक्त, यहाँ भी आदमी...आदमी ही आदमी—वह एकाकी नहीं रह सकता ?—शायद यहाँ कोई बारात ठहरी हुई है । किन्तु अब तो वह यहाँ आ ही गया था, इसलिए जल्दी से अपना सामान एक खाली पड़े कमरे के सामने रखवाते हुए धर्मशाला के मालिक को ढूँढ़ने लगा ।

उस शोर में कौन सुनता था उसकी ? अन्त में धर्मशाला का ही कोई आदमी उसे धर्मशाला के मालिक के पास ले गया । किन्तु वह लोगों से किसी आवश्यक जान पड़ने वाले विषय पर बड़ी सरगर्मी से बहस कर रहा था । उसने शेखर की ओर ध्यान भी नहीं दिया । अन्त में शेखर ने तज़ आकर उसका कन्धा झोर से झंझोड़ा और उसे अपनी ओर आकर्षित करना चाहा ।

'अजी, उसकी ऐसी-तैसी, देखना उस साले की—नालूम हो जाय ज़रा कि कौन बदमाश है ।' धर्मशाला का मालिक आवेश में बोल रहा

था। अब वह शेखर को भी देख रहा था पर ध्यान उसका उन लोगों में था जो उसे घेरे हुए खड़े थे।

‘किसकी हिम्मत है चौधरी जो ...’ वह शेखर से कन्धा छुड़ाकर फिर उत्तेजित हो गया। इस बार शेखर उसके सामने आ खड़ा हुआ और बहुत ही विनम्र स्वर में बोला—‘भाई, मैं आपकी तलाश में लगभग द्वां मिनट से परेशान हो रहा हूँ। मुझे ठहरने के लिए एक साफ़-सुथरा कमरा चाहिए।’

अब धर्मशाला वाले ने शेखर को वास्तव में देखा। उसकी आँखों के सामने एक सभ्य, शिक्षित और सुन्दर युवक खड़ा था। वह जैसे एक दम स्वप्न से चौंक उठा—‘जी, ... जी, आपको कमरा चाहिए? मैं साहब आपके लायक तो कोई कमरा है नहीं, पर ठहरिए।’ और फिर जोर से किसी को आवाज़ दी—‘अरे भैरूँ, ओ भैरूँ, देख ज़रूर परवाती से, नहीं-नहीं रहने दे, हाँ, अपनी ब्रिटिया भूमकू से कहियो, ऊपर का कमरा अच्छी तरह झाड़-पोंछ कर खाली कर दे और उसमें वह नई दरी जो मैं गढ़ के मेले में से लाया था, बिछा दे।’ फिर शेखर के सामने एक टूटी हुई-सी कुर्सी रख कर बोला—‘जब तक आप इस पर बैठें। अभी पन्द्रह मिनट में सब टय़र किए देता हूँ। माफ़ करना साहब, आपको बहुत तकलीफ़ हुई। बात यह है हमारे कस्बे की एक बहुत ही नेक और लक्ष्मी सरूप लड़की लापता हो गई है। आपने तो उसको कहीं नहीं देखा?’

इस प्रश्न पर सब ने शेखर की कुर्सी को घेर लिया और लगभग डेढ़-सौ आँखें उस पर केन्द्रित हो गईं। शेखर अनायास मुस्कराया और ‘नकार’ में सिर हिलाते हुए बोला—‘बहीं भाई। मैं लड़कियों की तरफ़ बहुत कम देखता हूँ।’

‘बड़े नेक हैं। आप शरीफ़ों के ऐसे ही तरीके होते हैं। बात यह है साहब, कि वह लड़की ऐसी थी कि सारा कस्बा उसके गुन गाता है। बड़ी नेक, बड़ी सुसील, बड़ी चरित्रवान और बड़ी हँसौड़। यहाँ हर

एक उससे प्रेम करता है, उसका आदर करता है । उसके लापता हो जाने से सारे कस्बे में आग-सी लग गई है । सबको बड़ा दुःख है और उसका यह गरीब बाप (एक ओर सीढ़ियों पर बैठे आदमी की ओर इशारा करके) तो अधमरा हो गया है ।’

शेखर ने उस वृद्ध की ओर देखा जो सिर झुकाये वेदना-ग्रस्त और जलान्त-सा बैठा था । उसके नेत्रों से दुःख के साथ पागलपन के से कुछ चिह्न प्रकट हो रहे थे । पर...पर...?

शेखर ने खेद प्रकट करते हुए कहा—‘मुझे दुःख है, मैं आप क्षेत्रों में बिल्कुल अपरिचित हूँ, सीधा कलकत्ते से, अपने घर से, चला आ रहा हूँ । मुझे आप लोगों की सुसीबत का ज्ञान नहीं था वरना मैं आपको परेशान न करता ।’

‘वाह साहब, ऐसा न कहिए । हमारा कहाँ ऐसा भाग्य जो आप जैसा माननीय अतिथि आये ? आप कलकत्ते से आ रहे हैं ? ओहो ! कितना बड़ा शहर होगा वह । आज तक हमारे यहाँ कलकत्ता जैसे भारी शहर से कोई मेहमान आकर नहीं ठहरा । कितनी खुशी की बात है कि इतने भारी शहर से ऐसा बड़ा आदमी हमारे यहाँ आकर ठहरे । आप कोई थालिस्टर हैं या जज ?’

उफ़, एक साथ इतने सवाल !

शेखर ने केवल अन्तिम प्रश्न को पकड़ा और छोटा-सा जवाब दिया—‘नहीं, मैं न बैरिस्टर हूँ और न जज । मैं तुम जैसा ही मामूली आदमी हूँ, और तुम भी मुझे यही समझो ।’

एक बोला—‘नहीं साहब, आप गुनी हैं, साहब हैं और शहर से आये हैं । भगवान ने शहर वालों को हम गाँव वालों के मुकाबले बड़ा दिमाग दिया है । साहब, आप हमें कोई उपाय बताइए जिससे हमें हमारी सरोज मिल जाय ।’

‘भाइयो, यहाँ मैं बिल्कुल अपरिचित हूँ । यह जगह मेरे लिए बिल्कुल नई है और फिर मुझे अभी इस मामले के बारे में पूरा हास भी

नहीं मालूम है। साथ ही आप लोगों के रहन-सहन और रीत-रिवाज के बारे में भी मैं अनभिज्ञ हूँ। समझ में नहीं आता कि इन परिस्थितियों में मैं आपकी क्या और कैसे सहायता करूँ ?

‘हम अभी एक मिनट में आपको सब बता देंगे हैं।’

‘लेकिन अभी तो मेरा मारे भूख के दम निकल रहा है, इसके अतिरिक्त थकान से चूर हूँ। ज़रा साँस ले लूँ तो शायद आप लोगों की मदद करने के योग्य अपने को बना सकूँगा ?’

‘हाँ साहब, मैं भी कैसा गधा हूँ।’ धर्मशाला वाला लज्जित होता हुआ बोला—‘अबे बैल के ताऊ रामकरण, खड़ा-खड़ा मुँह क्या देख रहा है, जल्दी से जाकर...’ और आज्ञा देते-देते सहसा रुक गया। डरते हुए शेखर से पूछा—‘क्या साहब, आप हमारे हाथ का...’

उसका आशय समझते हुए शेखर मुस्कराकर बोला—‘हाँ-हाँ, क्यों नहीं, क्या आप आदमी नहीं हैं, क्या आपके हाथ आदमी के हाथ नहीं हैं ? क्या आप लोग मुझसे कोई अलग चीज़ हैं ?’

तो झट से उत्साहित हो, धर्मशाला के मालिक ने रामकरण से कहा—‘मन्दिर में पण्डित दीनदयाल से कह कर साहब के लिए ‘दयाल’ के लिए झटपट कुछ ले आ, और हाँ, धन्ना की भूरी बकरी का औंटा हुआ दूध भी एक लोटे में भरते लाना।’ फिर शेखर से बोला—‘माफ़ करना साहब, हम गँवार हैं। रुखा-सूखा खाते हैं, मोटा-झोटा पहनते हैं। बुरा न मानना।’

शेखर ने कहा—‘नहीं, यह बात नहीं। न तुम गँवार हो और न गरीब हो। यह केवल तुम्हारा खयाल है। तुम अमीर हो, अमीरों से भी अच्छे। तुम्हारे पास ‘दिल’ है... एक अच्छा, निष्कलङ्क दिल, खातिर का दिल और तुम वास्तव में महान् हो, मानव हो। तुम अन्नदाता हो।’

सब के चेहरों पर एक उज्ज्वल ज्योति और एक परिष्कृत मुस्कान नाच उठी।

धर्मशाला के मालिक ने, जो जाति का ठाकुर था, किसी और को पुकारा—‘देख तो किसना भगत, अगर ऊपर का कमरा साफ़ हो गया हो तो साहब का बिस्तर और सामान वहाँ पहुँचा दूँ । और हाँ, ज़रा भूमक से कह देना भाई कि एक कोरे मटके में साफ़ पानी भर कर ऊपर रख दे । भाई तारा चन्द, ज़रा पोस्ट मास्टर साहब के यहाँ से साहब के लिए गर्म-गर्म चाय का एक प्याला तो भरवा ला । देख भाई, लपक कर आना जैसे यहीं खड़ा था ।’

शेखर चाय पीकर और भर पेट खाना खाकर ठाकुर के ऊपर के कमरे में चला गया । यह कमरा दो मेहनती स्त्रियों के आध घंटे के परिश्रम के पश्चात् भी साफ़ और आकर्षक नज़र आने से मानो इनकार कर रहा था । किन्तु फिर भी न इतना गन्दा ही था और न इतना भयानक ही । अच्छा हवादार था, फिर नई दरी ने उसमें स्वाभाविक रोशनी-सी पैदा करके उसको जगमगा दिया था ।

शेखर साफ़-सुथरे बिस्तर पर लेटा हुआ ‘स्टेट-एक्सप्रेस’ का मज़ा ले रहा था । नई जगह, नये चेहरे, नई छोटी-सी दुनिया । गाँव में चाय, और गाँव में यह ‘स्टेट-एक्सप्रेस’ । शेखर को अनायास हँसी आ गई । शहर, चाची और राय बहादुर की वह लड़की...ऊषा...गर्वीली और फुफ्फुकारती हुई, सब एक-एक कर चलचित्र की भाँति उसकी आँखों में घूम रहे थे, कि तभी उसके विचारों को एक झटका-सा लगा । क्रम टूट गया ।

बाहर कोई दरवाज़ा खटखटा रहा था । शेखर उठा और उठकर दरवाज़ा खोल दिया । लगभग एक दर्जन आदिमियों ने धर्मशाला के मालिक ठाकुर सहित उस कमरे में प्रवेश किया ।

उसके प्रवेश करने से पूर्व ही शेखर ने अपने विचारों को जल्दी से समेट लिया था और इन हमदर्द लोगों को देखकर ही उसने अपने 'आराम' का खून भी कर दिया था । अब तक उसका दिमाग प्रत्येक आवाज विचार में आनन्द ले रहा था किन्तु अब उसे प्रकृतिस्थ हो जाना पड़ा और अपने समस्त विचारों को समेट कर सरोज नाम की खोई हुई लड़की पर केन्द्रित कर देना पड़ा ।

'साहब, कितनी 'गुनवन्ती', कितनी नेक और कितनी पारसा लड़की थी वह ।' ठाकुर ने कहा । शेखर समझने में असमर्थ था कि यह भोज-भाले देहाती क्यों उसके इस कदर पीछे पड़ गये हैं ? और उसको क्यों व्यर्थ ही लाल बुझकड़ का दिमाग समझने लगे हैं ? एक साधारण-सी घटना से इस प्रकार यह लोग क्यों इतने अस्थिर होकर तबड़ उठे हैं ? बड़े शहरों में ऐसी कितनी ही सरोज प्रति दिन विपैले भोंकों से टकराकर नेस्त-नाबूद हो जाती होंगी और किसी को उनके सुवास और दुर्भाग्य का बता भी नहीं चलता है । कितनी ही सरोज हैं जिन्हें निर्दयी हाथ मसलकर फेंक देते हैं और राहगीर उनकी इस दशा पर दो आँसू भी नहीं बहाता किन्तु उन पर अपने वज्रनी जूते चटखाता हुआ, उन्हें और कुचलता हुआ आगे बढ़ जाता है ।

पर वह शहर है, और यह कस्बा है । यहाँ एक सरोज खो गई है, कि बस हर आदमी की ज़वान पर उसी का नाम है, उसी का जिक्र है । प्रत्येक आदमी उस विचित्र-सी 'सरोज' की तलाश में मारा-मारा फिर रहा है और अपनी ढूँढ़ में असफल होकर सरोज में चला आ रहा है, फिर वहाँ से शेखर के कमरे में । क्योंकि सबको मालूम हो चुका था कि कलकत्ता जैसे विचित्र शानदार शहर से एक पढ़ा-लिखा, काबिल युवक

आया है और हर कलकत्ते का निवासी योग्यता और मालूमात के सम्बन्ध में 'ऐनसाइक्लोपीडिया' से कम नहीं होता है। इसलिए शेखर साहब अन्धों में काने राजा बने हुए बैठे थे। कुछ भी हो, शेखर के हृदय में इन भोले-भाले गाँव के निरीह और 'आकुल' प्राणियों के लिए दुःख और हमदर्दी पैदा हो रही थी, और वह अपने को इन लोगों की सेवा के लिए प्रत्येक रूप से सूक्ष्ममन्द बनाने का प्रयत्न कर रहा था।

‘तो साहब अब बताइए हम क्या करें?’

‘भई, मैं अब तक असल मामले को नहीं समझ सका हूँ। पहले यह तो बताओ कि यह लड़की अपने किसी प्रेमी के साथ भाग गई है या खुद अपनी इच्छा से भागी है?’

‘राम-राम! कैसी बात मुँह से निकालो हो साहब? वह तो एक दम ‘गौ’ लड़की थी—‘गौ’!’

एक दूसरा बोला—‘सो साहब वह ऐसी लड़की थी कि ‘फरिस्ते’ उसका ‘गुन’ गाते थे और हूँ...’

‘हूँ, हूँ!’ तीसरा बीच ही में बोला—‘उसे देख-देख लजाती थीं।’

हर आदमी शुरू से उस लड़की की प्रशंसा किए जा रहा था। शेखर को बड़ा आश्चर्य हो रहा था। वह उस सरोज नाम की लड़की की इतनी बड़ाई सुन-सुन कर हैरान हो रहा था, बोला—‘ओह, समझा! तो वह इस प्रकार की लड़कियों में से न थी। आप सब लोग इस प्रकार चिन्तित क्यों हैं? सम्भव है, वह अपने किसी सगे-सम्बन्धी से मिलने आस-पास किसी गाँव में चली गई हो और दो-चार दिन में वापस आ जाय।’

ठाकुर बोला—‘जी नहीं, उसके माँ-बाप के सिवा और कोई यहाँ नज़दीक में उसका रिश्तेदार नहीं है। शाम को चार बजे वह स्कूल से पढ़ा कर आई, नाश्ता किया और लगभग शाम के छः बजे नदी की ओर निकल गई। बस, उसके बाद से उसका कोई पता नहीं है।’

‘क्या वह प्रायः नदी की ओर सैर करने जाने की आदी थी ?’

‘जी हाँ, कभी-कभी ।’

‘क्या वह शाम को स्कूल से आकर रंजीदा नज़र आ रही थी ?’

‘नहीं तो !’

‘क्या उम्र होगी उसकी ?’

‘यही सत्तरह या अठारह साल ।’

‘वह यहाँ लड़कियों को पढ़ाती थी ?’ शेखर ने पूछा ।

‘जी !’

‘माफ़ करना, एक बुरा-सा सवाल करता हूँ—उस पर यहाँ कोई लट्ठ तो नहीं हुआ ?’ कुछ और स्पष्ट करते हुए शेखर ने ज़रा खाँसते हुए कहा—‘मेरा मतलब है, उसकी ओर से किसी को ‘बढ़ावा’ न मिला हो किन्तु कोई अपनी ही मरज़ी से...?’

‘ईश्वर मूठ न बुलाय—सरोज की तो हम कह सकते हैं कि वह किसी की ओर आँख उठाकर भी न देखती थी । हाँ, अपनी खुशी से उस पर कोई पागल हो गया हो तो खबर नहीं । हाँ, हम वीरेन्द्र (वीरेन्द्र) को तो जानते हैं । वह यहाँ लड़कों के स्कूल में मास्टर है । बेशक वह तो सरोज पर बुरी तरह लट्ठ है, उस पर अपनी जान देता है—यहाँ तक कि सरोज के पैरों की मिट्टी को उठाकर अपने सिर पर ढाल लिया करता है । उसका पूरे दो बरस से यह हाल है लेकिन सरोज उसकी तरफ़ देखती तक नहीं ।’

‘अच्छा, यह वीरेन्द्र कैसा आदमी है ?’

‘आदमी बुरा नहीं है । हाँ, दो साल पहले बड़ा बदमाश था—शराबी, जुआरी । अपना सारा कसरती बदन मिट्टी में मिला दिया था लेकिन जब से उसका मन सरोज से उलझा है, बड़ा नेक और पारसा बन गया है । शराब भी छोड़ दी, दोनों समय की ‘सन्ध्या’ करता है । वह कहता है कि अपने को सरोज के तँई लाक (लायक) बनाकर रहूँगा ।’

‘ओहो, अजीब अरमान है ! क्या तुम्हारा विचार है कि वीरेन्द्र सरोज को नुकसान नहीं पहुँचा सकता ?’

‘यह बात समझ में नहीं आती । वह तो सरोज की पूजा करता है । फिर ऐसे आदमी से किस तरह डरा जा सकता है ? उसकी तो यह हालत है कि यदि सरोज के लिए कोई ऐसी-वैसी बात कह देता है तो वह कहने वाले की गर्दन पर सवार हो जाता है, जान को आ जाता है । पहलवान आदमी है, उससे सब डरते हैं ।’

दूसरे साहब ने जो स्वयं भी मास्टर थे, कहा—‘हाँ, वीरेन्द्र तो वाकई सरोज की पूजा करता है और उससे सरोज के नुकसान की आशा करना विचित्र और एक असम्भव सी बात है ।’

शेखर को उस लड़की सरोज के गुणों, उसके रहस्यमय ढङ्ग द्वारा लापता होने और गाँववालों में रुचि पैदा होने लगी थी । उसने उत्सुक होकर पूछा—‘वह यहाँ कितने समय से रहती है ?’

‘बचपन से । उसका जन्म तो यहाँ का नहीं है लेकिन उमकी उम्र पाँच वर्ष की होगी जब उसके माता-पिता यहाँ आये थे । बस तब से वह यहीं रही ।’ एक वृद्ध ने कँपकँपाते हुए स्वर में कहा ।

‘तब तो वह इस कस्बे और यहाँ के लोगों से भली भाँति परिचित होगी ।’ परेशान होने की कोई बात तो नहीं है । अच्छा, नदी में पानी कितना है ?’

‘यहाँ तो वह बहुत गहरी है ।’ स्कूल मास्टर ने बताया ।

‘यही एक खतरा है ।’ शेखर ने अपना सन्देह प्रकट करते हुए कहा—‘कहीं ऊँची जगह पर से उसका पैर न फिसल गया हो या जान-बूझ कर पानी में न डूब गई हो ।’

‘भगवान् ही जाने साहब, क्या हुआ है और क्या नहीं ।’ ठाकुर ने विगलित कण्ठ से कहा ।

‘अच्छा, अब आप लोग आराम करो । मुझे इस घटना में वैसे कोई विशेष रुचि नहीं है, लेकिन मैं आप लोगों की खातिर इस भेद की तह

तक पहुँचने का यत्न करूँगा। विश्वास नहीं होता कि मैं इसमें सफल ही होऊँगा क्योंकि असफलता के लक्षण अधिक हैं किन्तु फिर भी मैं उसको ढूँढ़ूँगा और मेरा तज्ज्ञाश करने का ढङ्ग आप लोगों से पृथक् होगा।' शोखर ने कहा।

'ईश्वर आपको इस अच्छे काम का फल दे ! सरोज के माँ-बाप आपके इस उपकार के लिए आपके सदा कृतज्ञ रहेंगे और आपकी मङ्गल-कामना के लिए भगवान् से प्रार्थना करेंगे। अच्छा भाइयो, अब चलो, साहब को सोने दो।' स्थूल मास्टर ने कहा। और उसके कहते ही सब उठकर चल दिये।

सब चल दिये किन्तु शोखर की नींद गायब हो चुकी थी। वह लड़की चरित्रवान और शर्मिली बताई जाती है। उसके गुण यह बताते हैं कि वह बड़ी गम्भीर है और सदा अपने को लिये रहती है। गायब होने से पूर्व वह चिन्तित और दुःखी भी नज़र नहीं आ रही थी तो फिर उसके इस प्रकार लापता हो जाने में क्या रहस्य है ?

शोखर पड़ा सोच रहा था। रात के ग्यारह बज चुके थे। चारों ओर भीमकाय अन्धकार फैला था। कस्बे में बिजली के न होने से चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा था। खास-खास रास्तों में इक्की-दुक्की लालटेन ही रोशनी देने का विफल प्रयत्न कर रही थीं। शोखर के मीने में कुछ जलन और कुछ सैर करने का प्रबल इच्छा अंकुरित हुई। उसने सोचा कि नींद तो उड़ ही चुकी है, आओ, जरा कस्बे की सुनसान और अँधेरी गलियों का ही चक्कर काट आओ और इस अमीर और सुस्त रफ्तार नदी की भी सैर कर लो। इसलिए उसने कपड़े पहने और नंगे सिर धमंशाला से निकल गया।

इस छोटी सी बस्ती में चारों ओर सन्नाटा और अँधेरा फैला हुआ था। किसी-किसी घर में से वृद्धों की 'अक्र-अक्र' करके बुरी तरह खाँसने की आवाज़ें आ रही थीं—और बस, वैसे फिर सन्नाटा था। गहरा और न टूटने वाला। जैसे उस समय सब कुछ स्थब्ध था, सब

कुछ ठहरा हुआ—मौन, मूक, अविचल । जीवन भी, साँस भी और समय भी ।

आखिर वह टहलता-टहलता नदी के किनारे पर जा पहुँचा । कई जगह ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर उसने ठोकरें खाईं और कई बार अँधेरे में उसका जूता मवेशियों के गोबर में भर गया ।

चारों ओर मेढकों की तड़तड़ाहट । भींगरों के अनवरत नगमों और कभी-कभी नदी के वल्ल पर किमी बड़ी मछली के तड़प उठने से स्तब्ध और निर्जन वातावरण में एक सजीत-सा पैदा हो जाता था । सहसा शेखर को अपने बहुत ही निकट पैरों की आहट सुनाई दी । उसने धवरा कर पीछे मुड़कर देखा ।

‘जयराम !’ अन्धकार के गर्त को चीरती हुई एक तेज़ आवाज़ न जाने कहाँ से आई ।

शेखर ने ‘जयराम’ का जवाब दिया । अब जो उसने ध्यान से देखा तो एक बलिष्ठ युवक को अपने पीछे खड़ा पाया जो क्रोध व आश्चर्य से निर्निमेष देख रहा था ।

‘तुम कौन हो ?’ उसने भीषण आवाज़ में पूछा ।

शेखर उसे आश्चर्य से देख रहा था । कुछ बोला नहीं ।

‘बोलो ।’ उसने फिर कड़क कर कहा ।

‘बता तो सकता हूँ किन्तु इस लहजे का ताबेदार होकर नहीं ।’ शेखर ने ज़रा सख्ती से जवाब दिया ।

‘बताओ, कौन हो तुम ?’ उसने फिर उसी लहजे में पूछा ।

‘मेरा विचार है कि अब तो मुझे बिल्कुल नहीं बताना चाहिए कि मैं कौन हूँ ।’ शेखर ने जवाब दिया ।

‘तुमको बताना पड़ेगा ।’ उसने चीखाकर कहा ।

‘मेरे दोस्त, तुम पागल तो नहीं हो ?’

‘तुमको क्या, मैं कोई भी हूँ । कैसे नहीं बताओगे ? तुमको माबूम है जहाँ वह छिपी हुई है ।’

‘हे भगवान्, ‘वह’ कौन ?’

‘तुम्हे मालूम है, तुम्हे मालूम है—बता पाजी ।’ उसने क्रोध से लाल होकर कहा ।

‘मैं तो अब तक समझता था कि इस कस्बे में सारे नेक लोग रहने हैं किन्तु तुम्हारी ‘मजन्’ की सी बातचीत को सुनकर, खेद है, मुझे अपनी राय बदल देनी पड़ी ।’ फिर कुछ हककर बड़ा—‘वास्तव में यह दुनिया गुण्यों से खाली नहीं है । तुम या तो दीवाने हो या फिर शराबी ।’

‘मैं दीवाना ? मैं शराबी ? दुष्ट—बता, बताता है या नहीं कि तू उसे कहाँ उड़ा ले गया है, या रसीद करूँ घौंसा ? बेटा, जान से ही मार डालूँगा तुम्हें ।’ उसने अनर्गल बकना शुरू किया ।

‘जान से मार डालने की धमकी तो बहुत ही कायरतापूर्ण धमकी है, दोस्त । मेरा हायाल है कि मुझे तुम्हारा नाम बहुत शीघ्र मालूम कर लेना चाहिए ताकि पुलिस में सूचना दे सकूँ ।’ शेखर ने सयत स्वर में कहा ।

‘मैं अपना नाम बताने से डरता नहीं हूँ । मुझे वीरेन्द्र कहते हैं । अब बताओ, तुम उसे लेकर कहाँ छिपा आये हो ?’

‘वीरेन्द्र !’ शेखर ने दिल में कहा—‘ओह, मेरा मुकाबला किसी चोर या डाकू से नहीं है; किन्तु एक पागल प्रेमी से है ।’ फिर प्रकट में कहा—‘वीरेन्द्र, तुम्हारा क्रोध बिल्कुल ही मूर्खतापूर्ण है, तुम्हें मालूम होना चाहिए कि मैंने तुम्हारे कस्बे में कल शाम को ही पैर रक्खा है और मुझे दुःख है कि मैं तुम्हारी ‘प्रेमिका’ की तलाश में तुम्हारी कुछ मदद नहीं कर सकता ।’

‘अच्छा तो, तुम मेरे सम्बन्ध में सुन चुके हो ? तो तुम्हें बिल्कुल ज्ञान नहीं कि वह कहाँ चली गई ?’

‘हाँ, मुझे कुछ नहीं मालूम ।’

‘अदि तुम झूठ बोल रहे हो तो तुम पर ईश्वर की मार हो ।’

और यह कह कर वह पागल भागकर फिर अन्धकार में विलीन हो गया ।

शेखर बहुत देर तक हतप्रभ-सा खड़ा रहा और फिर, इधर-उधर घूमता हुआ वह धर्मशाला में आ गया और पढ़ कर सो गया ।

४

इसमें तो सन्देह नहीं कि चन्द्रहास ने आज कल नयनतारा की सूरत नहीं देखी थी किन्तु सुना यह था कि वह रूप-राशि की अनुजनीय प्रतिमा है । बुद्धि की बड़ी प्रखर और बेपनाह सीधी, सुशील और शिष्ट । जब वह हँसती थी तो बेशुमार कलियों में जान पड़ जाती थी, जब रोती थी तो लगता था मानो इन मोतियों से सैकड़ों सीपें भर सकती हैं और जब नज़र उठाकर देखती थी तो परियाँ उसके सम्मान में पंक्ति बद्ध होकर, अद्व के साथ आ खड़ी होती थीं । यह तो स्पष्ट है कि उसके उस नज़र उठाकर देखने के सुन्दर अवसर पर न तो चन्द्रहास को परियों की पंक्ति में आ खड़े होने की कभी खुशी ही प्राप्त हो सकती थी और न परियों की उस भीड़ में स्वर्ग का-सा सुख प्राप्त करने की आशा ही किन्तु ऐसी कल्पना करने से उसे कोई नहीं रोक सकता था । यह उसकी भावना थी—भावना, सुखद और कल्पना से भी अधिक कोमल, और आशा से भी अधिक प्राणमयी ।

आप खुद ही अनुमान लगाइए कि जब चन्द्रहास के विवाह की उससे बातचीत चली तो चन्द्रहास को कितनी खुशी हुई होगी ? और आप ही यह भी अन्दाज़ा लगाइए कि जब वह केवल इस कारण पसन्द नहीं किया गया कि सिगरेट बहुत ज्यादा पीता है तो उसको कितना

दुःख पहुँचा होगा ? खैर, उसके हर्ष अथवा दुःख से नतीजा भी क्या निकल सकता था और आप उससे हमदर्दी करके उसके व्यक्तित्व को लाभ भी क्या पहुँचा सकते हैं ?

पहले तो सम्मान अथवा आकर्षण के दृष्टिकोण से वह स्वयं कुछ नहीं कह सकता था कि नयनतारा उसको पसन्द करती थी या नापसन्द । हाँ, अपनी तसल्ली और आपको संतुष्ट करने के हितार्थ वह एक बेबुनियादी सा विश्वास दिखाता था कि यदि वह उसको पसन्द करने अथवा कर सकने की कृपा करती तो वह हर प्रकार से अपने को सँभालने का प्रयत्न कर सकता था । सँभालने से मतलब यही है कि सिगरेट कम कर देता । यहाँ तक कि छोड़ भी देता, और नाज़ में चूर उस मधुरिमा की मधुपात्री की शान में कभी इस दुष्ट अगरबत्ती को मुँह में दावे अपने को उपस्थित न करता ।

उसकी शादी का मामला तो इस दुष्ट सिगरेट ने मटियामेट कर दिया जिसको उसने अब प्रतिशोध के रूप में ज्यादा धौकना शुरू कर दिया था । वह रह गया मुँह तकता और उधर उसके बड़े भाई की शादी तय भी हो गई बल्कि यों कहना चाहिए कि हो गई । एक और जगह, शहर से मीलों दूर एक छोटे से गाँव में ।

नयनतारा से बहुत दूर का सम्बन्ध भी होता था इसलिए उसके भाई साहब की शादी में उसकी माँ, बाप, भाई वगैरा सभी शामिल थे । यह मालूम नहीं कि वह भी शामिल थी या नहीं । अनुमान यही है कि वह नहीं आई होगी । एक लारी और दो प्राइवेट कारों की व्यवस्था की गई थी । इधर चन्द्रहास अपने चचा की मोटर उड़ा लाया था ।

रात को लगभग ग्यारह बजे राम-राम करके देहाती समधी ने बारात को विदा किया । अब हर आदमी की यह इच्छा थी कि मोटर में बैठे । मोटर थीं केवल दो । चन्द्रहास अपनी कार को तो इसलिए नहीं गिन रहा था कि उसमें केवल अपने भैया-भाभी को बैठाने का इरादा था, किसी

और की यह हिम्मत न थी कि उसमें पैर भी रख दे इसलिए वह बहुत पहले से ही अपनी कार को एक कोने में लगाकर उसमें आ बैठा था ।

ग्यारह बज चुके थे । काले-काले बादल आकाश पर धूम मचाते फिर रहे थे और इस धींगामस्ती में उनके पसीने की कुछ बूँदें पृथ्वी पर गिरना आरम्भ हो गई थी । और कुछ ही क्षण में मूसलाधार वर्षा शुरू हो गई । बारात में खलबली-सी मच गई । औरते, आदमी और बच्चे— जिसको जहाँ जगह मिली बिना विचार लोरी, मोटर के, उसमें घुस पड़े ।

उधर जब यह भगदड़ मच रही थी, चन्द्रहास की आँखें नौद से मुँदी जा रही थीं । होलडॉल बँधा हुआ सुकड़ा-सुकड़ाया पिछली सीट पर रखा हुआ था । और न जाने कब चन्द्रहास की आँख लग गई ।

जब आँख खुली तो उसने देखा, बड़े जोर की वर्षा हो रही थी और मोटरें बारात सहित न जाने कब यहाँ से चला दी थीं । उसकी पलकें अब भी बाँझिल थीं और वह ऊँघ-सा रहा था कि सहसा उसे होशियार हो जाना पड़ा ।

तभी, मोटर के निकट काँचड़ में सपड़-सपड़ पैरों की आवाज़ हुई और उसके बाद एक महीन-सी, कर्ण-प्रिय आवाज़ में किसी ने किसी से कहा—

‘अरे, यह मोटर खाली है ? इसमें घुस पड़े’ हम ।’

‘न बाबा, न जाने किसकी है और मालिक न जाने कब आ जाय । हमें देखेगा तो क्या कहेगा ?’

‘कहेगा क्या ? यह मोटर भी आखिर सवारियों के लिए ही है । ले अब अन्दर आ जा, कब तक पानी में पिटती खड़ी रहेगी ?’

‘अच्छा, तू बैठ—मैं अभी आई ।’

‘मर । जा । पिटती हुई....’ मज़ा तो अब जब है तरे आने से पूर्व

इधर डाइवर आ जाब और मोटर को लेकर चल दे और तू मुँह तकनी रह जाय ।’

‘और तू ठाट से एक अपरिचित के साथ अकेली कार में उड़ती चली जाये । क्यों, बही चाहती है न ?’

‘ओ, होश की दवा कर—होश की । बातें फिर करना । मुर्दार खड़ी भीग रही है, यह नहीं कि झट से जाकर आ जाय ।’

उसके पश्चात् आहिस्ता से दरवाज़ा खुला और किसी ने अन्दर प्रवेश किया । दूसरी गिरती-पड़ती कीचड़ में एक मकान के पीछे चली गई । छिप गई ।

चन्द्रहास को जान-बूझकर शरारत सूझी । इस शोख की इच्छा यह है कि उसकी सखी की अनुपस्थिति में डाइवर आ धमके और सखी को बिलखता हुआ छोड़कर इसको ले उड़े । इसकी इस इच्छा की पूर्ति होनी चाहिए, डाइवर को आ जाना चाहिए । इसलिए वह फ़ौरन उठ बैठा । खट से रोशनी की और ‘शू-शू’ करती कार बँदों से खेलती, कीचड़ उछालती और अँधेरे को पछाड़ती हुई रवाना हो गई ।

सीट पर से एक चीख की आवाज़ आई ।...

गुराँते हुए इन्जिन ने उस चीख को अपने पेट में धर लिया ।

कच्चा रास्ता था । जगह-जगह गड्ढों में कीचड़ और पानी भरा हुआ था इसलिए वह मोटर को तेज़ी से नहीं दौड़ा सकता था । फिर भी बीस-पच्चीस मील की रफ़्तार से चल रहा था । फिर एक मुसीबत यह थी कि रास्ता मालूम न था । बस, अन्दाज़े से चला जा रहा था । जहाँ भी बकदौर ले जाय । दूसरी मोटरों के साथ तो जा सकता था, अब अकेला नई, अनजान राह किधर जाता ? चन्द्रहास बहुत परेशान था । पिछली सीट पर अब खामोशी थी । आखिर बड़ी कठिनाई के बाद एक गाँव नज़र आया । अँधेरे में घड़घड़ाहट और फिर रोशनी को देखकर कुत्तों ने ज़ोर-ज़ोर से भौंकना शुरू किया और छोटे दूध-पीते बच्चे नींद से चौक

उठे और उन्होंने भी कुत्तों की आवाज़ के साथ चीखना शुरू किया । इस बदतमीज़ी के तूफ़ान से गाँव के कई आदिमियों की आँख खुल गई । चन्द्रहास ने मोटर को रोका और मेंह में भीगता हुआ रास्ता मालूम करने एक आदमी के पास पहुँचा ।

पिछली सीट पर कुमसुमाहट हुई और फिर वही... खामोशी, मृत्यु की भाँति जड़ता । चन्द्रहास ने अपनी मंज़िल शामगढ़ की राह पछी तो मालूम हुआ कि उसने कभी उस गाँव का नाम भी न सुना था । सुनता भी कैसे ? वह यहाँ से मीलों दूर होगा । आखिर इतना मालूम हुआ कि वह सड़क को बहुत दूर छोड़कर गलत रास्ते पर आ गया है और अब पक्की सड़क यहाँ से बीस मील से भी ज्यादा दूर होगी । वह पानी में तर, वापस मोटर के पास आया और अपने भीगे हुए कपड़े पिछली सीट पर बदलने चाहे । पर यह जो मेंह फिराये यहाँ बैठी है—लड़की-सी कोई—वह ? उसने एक ही दृष्टि में भर लिया । हल्के धानी रङ्ग का बनारसी दुपट्टा, हल्के धानी रङ्ग की सलवार... सफ़ेद-सफ़ेद गुदाज़ हाथ और नागन सी दो चेष्टियाँ । दृष्टि में तो भर लिया, किन्तु उसे अपनी ओर आकर्षित करने के लिए चन्द्रहास को ढुँढ़ने पर भी शब्द नहीं मिले । बहुत देर तक वह परेशान-सा खड़ा यही सोचता रहा कि किस सम्बोधन से पुकारे ? क्या कहेगी यह ? क्या सोचेगी और यदि—

‘तुम चाहता हैं...’ आपको कष्ट तो होगा, ज़रा अगली सीट पर तशरीफ़ ले आइएँ । मैं... मैं तमाम भीग गया हूँ और कपड़े बदलना चाहता हूँ ।’ आखिर बड़ी कठिनाई के पश्चात् वह इतना ही बोल पाया । पर क्या यह कुछ कम था ?

इसके जवाब में गुस्से से कार का दरवाज़ा खोल दिया गया ।

अनुनयपूर्ण स्वर में चन्द्रहास ने फिर कहा—‘हुज़ूर, कहाँ चलीं ? बाहर तो मूसलाधार मेंह पड़ रहा है, व्यर्थ में भीग जायँगी—अन्दर ही से चली जाइएँ ।’

किन्तु उसका वाक्य पूरा होने के पूर्व ही वह बाहर से दरवाजा खोल, अगली सीट पर पहुँच चुकी थी ।

चन्द्रहास ने जल्दी से कपड़े बदले और लपक कर फिर 'स्टीयरिंग' पर आ बैठा । उसको देखकर फिर वह दूसरी ओर का दरवाजा खोलकर बाहर जाने लगी तो अपने हाथ को उसके रास्ते में बढ़ाकर चन्द्रहास बोला—'यह क्या ? आपने आखिर यह भाग-दौड़ क्यों लगा रखी है ? अब यहीं तशरीफ़ रखिए । पिछली सीट पर आपको डर भी लगता होगा ?' और कार चल पड़ी ।

रूपसी का धानी दुपट्टा भीगकर गोरी गर्दन और अरुण कपोलों पर चिपक गया था, जिसका आगे का भाग यौवन के ज्वार को दुबकाये रखने के विफल प्रयास में सीने तक लटक रहा था । हल्के धानी रङ्ग की सल्वार और उतनी ही प्यारी चप्पल कीचड़ में कई जगह से खराब हो गई थी । चन्द्रहास ने रुमाल निकालकर सल्वार के निचले भाग पर से कीचड़ छुड़ाने का प्रयत्न किया तो उन्होंने गुस्से से अपना सफ़ेद, मुन्ना-सा पाँव खेंच लिया ।

'अच्छा-अच्छा, कसम ले लीजिए जो हम आपके सौंदर्य की छाया तक को छुएँ । अब तो यहाँ बैठी रहिये । बात यह कि मोटर चन रहा है आहिस्ता । सम्भव है, तकदीर का कोई डाकू या हिंसक जानवर उचककर आपके पास पिछली सीट पर आ बैठे ।' चन्द्रहास ने उन्हें डराने के अभिप्राय से कहा ।

बाहर निकलने के लिए तने हुए सुन्दर शरीर में हल्का-सा ढीलापन पैदा हुआ और वह दूर—बिल्कुल दरवाजे से चिपक कर बैठ गई ।

'देखिए, मेरे यह दो हाथ हैं बिल्कुल इन्सानों जैसे जिनपर न तो शेर के से नाखून हैं और न बला के पंजे । इसके अतिरिक्त मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैंने आज तक किसी आदमी को नहीं खाया है । फिर आप मुझसे क्यों सहमी जा रही हैं ?'

क्रोध से तने हुए शरीर में एक हल्की-सी हरकत पैदा हुई गोया मुस्कान को जन्म किया जा रहा है ।

महीन धानी दुपटे में रूप की लपटों को और भड़काने के लिए कार के अन्दर रोशनी काफ़ी से ज्यादा थी इसलिए चन्द्रहास देख रहा था कि दो जादू-से भरी मुकी-भुकी पलकें, दो चुभने वाली तनी-तनी भवें और दो मीठे-मीठे, लाल-लाल, पतले-पतले होंठ प्राणों में अनायास ही आग-सी सुलगा रहे हैं ।

‘मेरी प्रार्थना यह है कि दरवाजे से लगकर न बैठें, शायद अचानक खुल पड़े और हीरा कीचड़ में गिर पड़े ।’

जब वह फिर भी न हिलीं न डुलीं तो चन्द्रहास ने उनके कन्धे पर से हाथ ले जाकर दरवाज़े को ठीक तरह बन्द कर दिया । जब हाथ को वापस समेटा तो अनायास कन्धे से स्पर्श कर गया । चन्द्रहास के प्राणों में बिजली-सी तड़प उठी । और वह...?

‘आपको नींद तो नहीं आ रही है ? हे भगवान्, आप तो कुछ बोलती ही नहीं ! आखिर यह पहाड़-सा रास्ता किस प्रकार तय होगा ?’

पर चन्द्रहास को जवाब नहीं मिला ।

और इसी प्रकार, बहुत देर तक गिरते-पड़ते वह सड़क की तलाश में परेशान रहे । और करीब दस-एक मिनट पश्चात् चन्द्रहास ने देखा कि उनका कसा हुआ शरीर नाजुक ढाल की भाँति उसकी तरफ़ झुक गया है और दुपटे का एक छोर सिर पर से खिसक कर गर्दन पर आ पड़ा है ।

हाय राम ! उसके बहुत पास एक बहुत ठंडा सूरज चमक रहा था । उसकी आँखें चकाचौंध हो गईं । काले-काले चमकदार रेशमी बालों से सौरभ उठ-उठ कर उसकी नासिका में प्रवेश कर रहा था और उन लपटों में वह अपने को उन्मत्त और अचेत अनुभव कर रहा था । उधर नींद से भारी आँखें सो रही थीं किन्तु गज़ब डर रही थीं और ऐसी प्रतीत होती

थीं मानो कोई दो बहुत ही 'रौब' वाले प्रहरी रूप के खजाने का सचेत हो पहरा दे रहे हों, जिनकी ओर एक बार से अधिक किसी को निगाह उठाकर देखने का साहस तक न होता था । चन्द्रहास की आँखें भी अचानक हो गई ।

हर केवल इस बात का था कि नींद में कहीं 'उनका' सिर किसी सख्त जगह पर न पड़ जाए इसलिये वह भी कुछ उनके निकट आ गया । और उनकी नींद और नींद के भोंकों की अन्तिम हद चन्द्रहास की पसलियों पर आकर समाप्त हो गई । उन्होंने सिर टेक दिया और निश्चिन्त होकर सो गई—पर प्रहरी मानो सचेत थे । प्रहरी—रूप और यौवन के ।

५

शेखर को पीपलगाँव आये दो-तीन दिन हो गये थे । इस अरमे में उसने यहाँ के समस्त नदी-नाले और पहाड़ियाँ छान डाली थीं किन्तु सरोज कुछ ऐसी गायब हुई थी कि किसी को उसका कहीं भी पता न चला । क्रस्वे वाले और धर्मशाला का ठाकुर शेखर को शहर का निवासी होने के कारण बहुत तेज़ और काबिल आदमी समझते थे और उन्हें पूर्ण आशा थी कि वह सरोज को कुछ ही घंटों में ढूँढ़ निकालने में सफल हो जायगा किन्तु अब जब कि दो-तीन दिन बीत गये थे और सरोज का कुछ भी पता नहीं चल रहा था तो उन लोगों की वह शेखर के प्रति की गई धारणा निर्मूल सिद्ध हो गई थी । उसको वह अब अपना ही जैसा एक साधारण बुद्धि का मामूली आदमी समझने लगे थे । अभी-अभी चौबीस घंटे पूर्व उन्होंने शेखर से सारी आशाओं त्याग दी थीं और चुपचाप सन्न करके बैठ गये थे । इससे शेखर को बड़ा सुख मिला । अब वह उस खोई हुई लड़की सरोज की तलाश के बारे में कई उपाय स्वच्छन्दतापूर्वक सोच

सकता था और अपने कल्पित विचारों को कार्य रूप में परिणत भी कर सकता था । 'पहले यह उसके लिए सम्भव नहीं था क्योंकि पूरा कस्बा ही उसकी गर्दन पर निरंतर सवार रहता था और उस आक्रान्त में न तो वह कुछ सोच ही सकता था और न कुछ कर ही पाता था ।

तीसरे दिन शाम को वह तहसील के पीछे से निकला । यह 'नई बस्ती' थी, जहाँ कस्बे के समृद्ध लोग रहने थे । तो वहाँ उसने एक सुन्दर टैनिस-लॉन देखा । मामूली से कस्बे में टैनिस-कोर्ट देखकर शेखर को बड़ा आश्चर्य हुआ और साथ ही खुशी भी कि यदि यहाँ किसी से परिचय सम्भव हो गया तो वह अपने सबसे अधिक प्रिय खेल का आनन्द उठा सकेगा । न जाने अभी उसे इस कस्बे में कितने दिन गुज़ारने पड़ेंगे और सरोज की तलाश ही तो उसके जीवन का एक मात्र उद्देश्य नहीं बन सकती थी । कुछ मनोरञ्जन और शारीरिक क्रिया भी तो कुछ कम आवश्यक नहीं है । मनोरञ्जन और व्यायाम दोनों ही उसे इस टैनिस कोर्ट में दिखाई दे रहे थे ।

शेखर टैनिस कोर्ट से कुछ ही दूरी पर जा रहा था । चारों ओर तने हुए पर्वों के कारण वह खेलने वालों को नहीं देख सकता था । कुछ देर के लिए वह वहीं खड़ा हो गया और सोचने लगा कि कोर्ट पर जाकर यहाँ के सदस्यों से परिचय प्राप्त कर लूँ; पर फिर दूसरे ही क्षण झिझक कर रह गया । सोचा, कैसे क्या कहूँगा ? कैसे कहते बन पड़ेगा ? क्या यह कहूँगा कि मुझे भी खेलने दो । पर मैं मेम्बर तो हूँ ही नहीं—और यदि वह इनकार कर गये तो ? तो ? यही सोचता हुआ वह कुछ क्षण वहाँ खड़ा रहा । आखिर हिम्मत की और कोर्ट की ओर बढ़ गया । मन में सोचा, डर और शर्म की क्या बात है ? कोई औरत तो हूँ नहीं जो आदमियों में जाता हुआ लजाऊँ ? और यही निश्चय करके, एक सुन्दर से 'गेट' में होकर उसने 'कोर्ट' में प्रवेश किया ।

दो युवा लड़कियाँ कपड़े लटकाने की खूंटियों के पास खड़ी हुई, खेलने के लिए अपनी साड़ियाँ ठीक कर रही थीं । शोखर धक् से रह गया ।

उसके नेत्र अपने आप बंन्न-चालित से उधर से घूम कर कोर्ट पर जम गये जहाँ और दो जवान और सुन्दर लड़कियाँ बड़े डस्साह से खेल रही थीं, कि तभी साड़ियाँ ठीक करने वाली लड़कियों की दृष्टि अकस्मात् शोखर पर पड़ गई ।

होटों ही होटों में 'I am sorry (मुझे खेद है)' नीची नजरें कर शोखर ने पता नहीं किसको सम्बोधन करके कहा और वापस निकल भागने को मुड़ना ही चाहा था कि लड़कियों ने उसे आ घेरा ।

एक शोख थी, बोली—'अरे साहब, आइए ! कहाँ चले ?'

शोखर ने अस्पष्ट-सी आवाज़ में कुछ शब्द बुदबुदाये जिनका आशय पता नहीं क्या था, और जिन्हें कोई भी न सुन सका ।

उसी शोख लड़की ने फिर कहा—'आपको टैनिस के गले की कसम । आइए—तशरीफ़ लाइए ।'

एक खिलखिल-सी हुई, मानो जलतरङ्ग को किसी ने छेड़ दिया हो ।

शोखर ने घबराते हुए कहा—'मैं...मुझे पता नहीं था कि यह—लेडीज़ क्लब है । मुझे...मैं लमा चाहता हूँ । मैं इस कस्बे में बिल्कुल अजनबी हूँ और—और कुछ नहीं जानता ।'

वही शोख बोली—'लीजिए, आप तो अपना परिचय देने लगे । मैं तो यह कह रही हूँ कि आप इस प्रकार भागे क्यों जा रहे हैं—चोरों की तरह । आप न शोभा, देख यह जाने न पायें ।' उसने अपनी एक सहेली से कहा जो अब अपनी साड़ी को ठीक करके इधर ही आ रही थी ।

शेखर पागलों की भाति हँसा और फिर उसने गौर से एक-एक को देखा जो उसको घेरे हुए खड़ी थीं। सब जवान और सब—। नहीं-नहीं 'सब' वह नहीं, जो वह सोचने जा रहा था बल्कि आँखों से देखने जा रहा था। हाँ, बचपन जवानी से गले मिलकर अभी रवाना ही हुआ था, यही कारण था कि सबके चञ्चल नेत्रों में कच्ची किशोरावस्था और अधपका यौवन, अनबूझ और उच्छृङ्खल यौवन—कौमार्य, साथ मिलकर शेखी से खिल-खिल कर रहे थे। शेख को देखा—कुन्दन-सा रङ्ग, लम्बे बाल और मरा-मरा बदन—यह थी उसकी निजी सम्पत्ति जिसमें दो-एक खोटे सिक्के भी थे। उदाहरणार्थ, ऊपर का होठ जरा मोटा था जो शेखी और उच्छृङ्खलता का चिह्न है और भवें गहरी न थीं।

‘विश्वास कीजिए... मैं पहली बार कलकत्ते से इस कस्बे में आया हूँ और अभी यहाँ किसी से परिचित भी नहीं हुआ हूँ।’ शेखर ने असहाय भाव में कहा।

‘अच्छा, अन्दर तो चलिए। इस प्रकार खड़े होकर लड़कियों से बात करने का क्या कलकत्ते में ‘फ्रैशन’ है?’

‘मैं तो अपनी ओर से बातों का खात्मा ही कर चुका था। आप ही उनको इतना तूल दे रही हैं।’

‘अब चलते हैं या नहीं?’ डाँटते हुए शोभा ने पूछा।

सबने एक ज़ोर का कहकहा लगाया।

‘हाय राम!’ शेखर ने ठंडी साँस भर कर कहा—‘चलिए साहब!’ और उसने पैर उठाये और कोर्ट के अन्दर आ गया।

‘यहाँ बैठिए!’ शोभा ने उसे एक बेंच पर बिठाते हुआ कहा।

बीच में शेखर था और दोनों ओर दो किनारों पर वह शोभा और शोभा बैठ गईं। बाकी की इन भौंदू नाथ शेखर साहब का तमाशा देखने लगीं। बसबसे पटक दिये और तमाशा देखने लगीं।

अब तो शेखर और भी घबराया ।

शोख ने आँखें नचाते हुए कहा—‘आप हम पर कलकत्ते का ‘रौब’ गाँठ रहे थे । मैं कस्बे की अन्य लड़कियों की भाँति रौब में आने वाली नहीं हूँ । मैं भी बर्दवान में पढ़ती हूँ ।’

‘खूब-खूब ! आपके दर्शन-लाभ करके बड़ी प्रसन्नता हुई ।’ शेखर अब चल निकला था ।

‘अच्छा, अब मैं क्रमानुसार सबसे आपका परिचय कराती हूँ ।’ उसी शोख ने कहा ।

फिर बताया—‘यह जो मोटी सी लड़की आपके सामने खड़ी है और जिसका सुबह से शाम तक टैनिस् खेलने से भी जी नहीं भरता, डाक्टर कुंज बिहारी साहब की लड़की है । आपने अस्पताल में इनके पिता को देखा होगा । नाम आशा है ।’

‘मैं अब तक यहाँ के अस्पताल में नहीं गया लेकिन शायद आज जाने की नौबत आ जाय ।’ शेखर ने कनखियों से हँसते हुए कहा । अब वह, कहा न, चल निकला था ।

‘अच्छा !’ मुस्कराकर शोख बोली—‘यह जो आशा के ठीक विपरीत दुबली-पतली लड़की है, यहाँ के वकील श्याम सुन्दर जी की एक मात्र सन्तान है । इसका ज़रूरत के समय नाम हरबन्स है और वैसे वास्तविक—बतख ।’

खिल-खिल ! खिल-खिल !

‘तेरा भी नाम बताऊँ क्या ?’ हरबन्स ने हंस की भाँति अपनी लम्बी गर्दन तान कर कहा ।

शेखर हँस रहा था । बल्कि, हँसे जा रहा था ।

शोभा ने चुपके से कहा—‘चुप रहो ! अपरिचित के सम्मुख इतनी उद्बुद्धता ठीक नहीं और न इतनी बेतकल्लुफी ही ।’

‘और यह शोभा हैं जो आपको गिरपतार करके यहाँ ले आई हैं ।’

‘और हुआ?’ शेखर ने परिचय समाप्त होता हुआ देख, धीमे से शोख से पूछा।

‘यह हमारे तहसीलदार साहब की सात लड़कों की पुरत पर प्यार की आखरी मोहर है और इनका नाम जैसे शीला है और जैसे ‘फिरकनी’ है। बात करना इनसे गुनाह है।’ शोभा ने कहा।

‘तब ही आप इतनी—इतनी—!’ और शेखर रुक गया।

‘जी-जी! कहिए!’ मुस्कराकर शीला ने पूछा।

‘इतनी अच्छी हैं!’ शेखर एक साँस में कह गया। मानो भीतर का बोझ ‘हल्का’ कर दिया।

शीला आरक्त हो उठी। पलकें उसकी झुक-झुक-सी गईं। और भरे-भरे कपोलों में अनायास गड्ढे पड़-पड़ गये।

‘अच्छा, अब आप अपना परिचय भी तो...?’ शीला ने लज्जा के छिपाते हुए कहा।

‘मेरा परिचय? मेरा परिचय क्या होगा? कलकत्ते से चार दिन पहले आया हूँ, नहीं, भूल गया। तकदीर यहाँ ले आई है, अपनी ओर से नहीं आया। धर्मशाला में पड़ा हुआ हूँ। यहाँ से भी जल्द भागने की फ़िक्र में था कि सरोज नाम की खोई हुई लड़की की तलाश में लोगों ने रोक लिया।’ फिर कुछ सोच कर बोला—‘मुझे भी उसके इस रहस्य-मय ढङ्ग से खोजे जाने ने एक तरह से आश्चर्यान्वित कर दिया है और मैं उसको ढूँढ़ने के प्रयास में अब अत्यधिक रुचि लेने लगा हूँ। देखिए...’

‘आपकी इतनी बातें सुनकर भी हम मालूम नहीं कर सके कि आप कौन हैं?’ डाक्टर की बेटी ने कहा।

‘हाँ, यह तो बताइए आप हैं कौन?’ हरबन्स बोली।

‘बेशक, आपको बताना चाहिए।’ शोभा ने भी कहा।

‘हूँ, आखिर मालूम तो हो, आप हैं कौन—महानुभाव ?’ शीला ने कहा ।

‘मैं कौन हूँ—अफ़सोस ! खुद नहीं जानता । यदि कुछ हूँ तो बस—आचारा परिंदा ।’

‘आप आचारा हैं तो आपका चालान क्यों न करा दिया जाय ?’ शीला ने कहा ।

‘गिरफ़्तार तो आप कर ही चुकी हैं । अब चालान कराइए या जेल भिजवाइए ।’

सब ने कहकहा लगाया । शीला के गालों में फिर लाली दौड़ गई । उपाखंड के से स्वर में बोली—‘कम्बख़्तो, मैं ही उनसे पूछे जा रही हूँ । तुम क्यों नहीं पूछती ?’

सब ने एक स्वर से कहा—‘तू ही उनके पकड़ कर लाई है । अब तू ही निबट ।’

शेखर ने मुस्कराकर कहा—‘मुझे डर है कि शीला महोदया गुस्से में कहीं आप लोगों के पञ्जा न मार दें ।’

शीला खिसियानी-सी होकर उठ खड़ी हुई ।

शेखर ने भी सोचा, अब बहुत हो चुका, चलना चाहिए । इसलिए वह भी उठ खड़ा हुआ । और शीला ने पलटकर पूछा—‘क्या आप जा रहे हैं ?’

‘अरे, अभी से जा रहे हैं ?’ शोभा बोली ।

शेखर ने मुस्कराते हुए कहा—‘आपकी शीला देवी हमसे नाराज़ हो गईं । अब हमारा यहाँ ठहरना बेकार है ।’

‘नहीं तो । मैं तो नाराज़ नहीं हुई । टेनिस खेलिए न ?’ शीला ने कुछ अनुरोध-सा किया ।

‘हाँ, ज़ूता तो पैर में टेनिस का है ही ।’ हरबन्स ने कहा ।

‘मैं आप लोगों के खेल में बाधा उपस्थित करना नहीं चाहता । आप लोग खेलिए, मैं तमाशा देखता हूँ ।’

‘नहीं । आपको भी खेलना पड़ेगा ।’ शीला बोली ।

‘अच्छा तो, आप में से जो दो सबसे अच्छा खेलती हैं, एक ओर हो जायँ । मैं एक तरफ़ होता हूँ ।’

‘आप ‘सिंगल’ हम दो से खेलेंगे ?’ शीला ने आश्चर्य में भर कर पूछा । फिर तत्पर हो बोली—‘अच्छा, आ जाओ । शोभा, इनकी शामत आई है ।’

कुछ-एक ‘सैट’ के ही बाद दोनों लड़कियों को मालूम हो गया कि इनका मुकाबला किससे है । वह एक बार भी न जीत सकीं, आखिर विजयी के ढङ्ग में शेखर बैच पर आ बैठा ।

‘आप तो बड़े छिपे हुस्तम निकले !’ हरबन्स और आशा ने बधाई के ढङ्ग में कहा ।

‘आप तो बला के खिलाड़ी हैं ।’ शीला और शोभा ने आकर कहा ।

‘अच्छा भई, अब चल दिऐ । सरोज की तलाश का समय आ रहा है ।’ शेखर ने सिगरेट सुलगाकर कहा ।

‘आपने कभी सरोज को देखा है ?’ शीला ने पूछा ।

‘आज तक नहीं । क्यों ?’

‘बड़ी घमण्डी लड़की है । है तो मामूली-सी टीचर, किन्तु अपने को रानी से कम नहीं समझती ।’ हरबन्स ने कहा ।

‘किन्तु लड़की बुरी नहीं है । यह और बात है कि वह किसी से ज्यादा मिलती-जुलती नहीं थी ।’ शोभा ने कहा ।

‘उसको देखकर तो आप गुम-सुम हो जायँगे । आपका सारा बोलना धरा रह जायगा ।’ शीला ने कहा ।

और आज शेखर ने जाना कि सरोज इतनी सुन्दर है, तो दबी ज़बान से पूछा—‘क्या बहुत ही सुन्दर है ?’

इस प्रश्न पर शीला ने मुस्कराकर शोख नज़रों से शेखर को देखा; पर बोली कुछ नहीं। वही क्या, कोई कुछ नहीं बोला।

बस, बोली तो केवल हरबन्स और वह भी यह—‘सरोज के खो जाने से सबको आश्चर्य हो रहा है।’

हूँ, सो तो है ही। पर शेखर का प्रश्न—‘उसकी जिज्ञासा—’वह—’ वह ? उसका समाधान ?—

तो कराहता-टुआ-सा बोला—‘आखिर वह कहाँ चली गई ?’

‘ईश्वर ही जाने ! सब घरों में उसी का चर्चा है।’ आशा ने बताया।

शीला ने उत्सुक होकर पूछा—‘आप उसकी तलाश में अब तक कितने सफल हो चुके हैं ?’

‘कुछ भी तो नहीं। निराशा के स्वर में शेखर ने कहा—‘मेरे पास ‘अनुमान’ और थोड़ी-सी ‘हिस्ट्री’ के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। फिर कठिनाई यह है कि प्रत्येक आदमी उसकी प्रशंसा ही तो करता है; लेकिन यह कोई नहीं बताता कि उसकी पूरी ‘हिस्ट्री’ क्या है।’

‘यह आपको कोई नहीं बता सकता; बल्कि मेरा तो विचार है कि वह स्वयं नहीं जानती।’ शोभा ने कहा।

‘आप उसके माता-पिता से भी मिलिए। सम्भव है, कोई कड़ी हाथ आ जाय।’ शीला ने कहा—और खूब कहा।

सच तो यह है कि शेखर के दिमाग में यह बात ही अब तक न आई थी। उसने दिल ही दिल शीला को धन्यवाद दिया और जाने के लिए तैयार हो गया।

‘अब फिर कब दर्शन दीजिएगा मिस्टर ! ओह, आपने अब तक हमें अपना शुभ नाम भी नहीं बताया ?’ शोभा ने कहा।

‘अरे हाँ, नाम भी नहीं बताया ?’ शीला ने कहा।

‘वाह, नाम बताये बिना जाने लगे ?’ आशा ने पुराज किया।

‘यह कोई बात है भला, नाम तो बताइए ?’ हरबन्स बोली ।

‘अरे, आप तो सब मेरे पीछे पड़े गईं’ मानो मुझसे कोई बड़ा भारी पाप हो गया हो ।’ शेखर ने मुस्कराते हुए कहा ।

‘बताइए, बताइए—नाम बताइए ?’ शीला ने ज़ोर देकर पूछा ।

‘नाम ? कह लीजिए—शेखर ।’

‘धन्यवाद ! अब कब मिलिएगा ?’ शीला ने शब्दों को हँसाते हुए कहा ।

शेखर ने गम्भीर होकर कहा—‘क्षमा कीजिएगा । मैं सदा अपने को ‘स्त्री-समाज’ में बैठने के योग्य नहीं पाता हूँ ।’

‘ओह, वाह जनाब, आप तो बहुत ही मज़ेदार आदमी हैं ।’ शीला ने विश्वास-सा दिलाते हुए कहा ।

‘आपको फिर आने का वादा करना पड़ेगा ।’ हरबन्स बोली ।

‘हूँ, करना पड़ेगा ।’ आशा ने ‘हाँ’ में ‘हाँ’ मिलाई ।

‘हरबन्स, और शीला और हाँ...आशा देवी, क्षमा कीजिए । क्या आपके माता-पिता आपकी इन बातों का विरोध नहीं करते ?’

तीनों की तीनों ज़रा सकुचा-सी गईं । शीला बोली—‘अजीब प्रश्न है आपका ?’

हरबन्स बोली—‘वह तो सदा मनोरञ्जन और स्वास्थ्य सम्बन्धी बातों पर ज़ोर दिया करते हैं ।’

‘खूब ! तो अपना सवाल मैं वापस लेता हूँ किन्तु शीला महोदया क्या आपके माता-पिता इसको भी पसन्द करते हैं और प्रोत्साहित कि आप किसी अपरिचित से मिलती रहें, और इस प्रकार ?’

सब चुप हो गईं ।

‘इसमें आपत्ति ही क्या है ?’ आखिर शीला ने कहा ।

‘यह तो हमारा कर्तव्य है कि जिससे मिलें उसकी देख-भाल पहले कर लें ।’ हरबन्स बोली ।

‘क्या कहने ! आप लोग बड़ी तेज़ दिमाग़ हैं, घण्टे-आध घण्टे में प्रत्येक अपरिचित की देख-भाल कर लिया करती हैं । अच्छी लड़कियो, यह देख-भाल का खेल ही तो बड़ा भयानक खेल है ।’ शेखर ने वृद्ध की भाँति कहा । फिर अपने कथन का तनाव कुछ हल्का करता हुआ बोला—‘खैर, मैं तुम्हारे कोमल हृदयों को आघात पहुँचाना नहीं चाहता और न मैं तुम्हारे नियमों को अपनी इस आकस्मिक भेंट द्वारा बोझीला ही बना सकता हूँ । यदि आप लोगों से फिर कभी ऐसी ही आकस्मिक और अप्रत्याशित भेंट हो भी तो मैं अपने को आपकी आवभगत का बोझ सिद्ध न होने दूँगा ।’ और यह कह, वहाँ से चला दिया ।

शीला ने देखा कि शेखर चला जा रहा था—विशाल कन्धों पर एक बड़ा सा नङ्गा सिर लिये हुए—मानव का नङ्गा सिर ! और वह अपलक उसका जाना देखती रही—और उसे मालूम नहीं था कि ऐसी दृष्टि से हृदय रूपी ख़जाने में सर्वप्रथम आग लगती है और फिर वह बहुत शीघ्र नष्ट भष्ट होकर दूसरी बार दृष्टि-पात करने के लिए प्राणी को विवश करता रहता है ।...

६

जपा का आलोक प्राची में फैल रहा था । संसार एक अँगड़ाई खेकर आँखें खोल रहा था । उसके जागरण में मुस्कान थी । शेखर की आँख आज जल्दी ही खुल गई थी, वह थोड़ी देर तक वैसे ही बिस्तर पर पड़ा रहा, फिर उसने अपने कमरे की खिड़की खोल दी और बाहर देखने

लगा । नीड़ में से निकले हुए पक्षी कलरव कर रहे थे । शेखर आश्चर्य से उनका कलरव सुन रहा था । वह नहीं समझ पा रहा था कि आखिर उन्हें यह उल्लास क्यों ? संसार में प्रवृत्त होने की इतनी प्रसन्नता क्यों ? दो-दो दाने बीनकर ले आने और जीवन को लम्बा करने की इतनी उत्कण्ठा ? इतना उत्साह ? जीवन क्या इतने सुख की वस्तु है...? ग्वाले जानवरों को चरने ले जा रहे थे । पनघट पर औरतों की भीड़ हो रही थी । कुछ युवा थीं, कुछ किशोरी, कुछ सर पर घड़े लिये बल खाती चली जा रही थीं । समीर के नटखट भोंके उनके आँचलों से धक्कम-धुक्की और परिहास कर रहे थे । वह लजा-लजा कर, सिमट-सिमट कर आँचलों को संभालती थीं और लोगों से बचती-बचाती चली जा रही थीं । मयूर पङ्क्तों को फैलाये लता-वितान, और घरों की मुँडेरों पर किलकते फिर रहे थे । उसने सोचा, इतना आकर्षक, इतना माया-ममतापूर्ण स्त्री हृदय-सुलभ गार्हस्थ्य जीवन और किसी समाज में है ? गृहिणीत्व की जैसी सुन्दर योजना भारतीय स्त्रियों को आती है, वह अन्यत्र क्या दुर्लभ नहीं ? कितना सुख है, जीवित और मचलता हुआ सुख । कैसा उत्साह है—अदम्य और वेगपूर्ण । उसके प्राणों में सुख की एक सिहरन-सी व्याप्त हो गई । उसने सीने पर कमीज़ के बटन खोल दिये और खुले सीने को ठंडे भोंकों के सामने कर दिया और सुख और शान्ति से आत्म-विभोर हो गया ।

शेखर ने तब एकाएक सोचा कि यह कस्बा भी तो उसके पूर्वजों की ही सम्पत्ति थी । उसकी चाची ने कहा था कि वहाँ की सारी ज़मीन किसी ज़माने में चाची के बाप-दादा के ही अधिकार में थी । किन्तु वह आज एक अपरिचित, यात्री की भाँति धर्मशाला के एक मामूली से कमरे में पड़ा हुआ था । समय-समय की बात है, संस्कार की बात है । उसने नाश्ता किया जिसे वहाँ 'कलेवा' पुकारा जाता है ! कपड़े पहने और

कमरे से नीचे उतरा । ठाकुर से भेंट हुई, तो उससे पूछा—‘कहो भाई, कुछ पता चला ?’

ठाकुर ने निराशा के साथ सिर हिलाया और कहा—‘नहीं साहब ! कुछ पता नहीं चल सका है । हम तो सब परेशान हो चुके हैं, उधर उसके माँ-बाप की भी दुःख के मारे बड़ी बुरी दशा हो रही है ।’

‘क्या तुम्हारे कस्बे में और कोई होशियार और बहुत ही बुद्धिमान आदमी नहीं है जिससे विचार-विनिमय किया जाय ?’

‘यहाँ तो ऐसा कोई नहीं है साहब । एक साधू हैं जो लाला राम की बगिया में पड़े रहते हैं । अस्सी वर्ष से ऊपर की उम्र होगी । धूनी रमाये पड़े रहते हैं । तावीज़ और भाषा-फूँकी भी करते हैं, किन्तु राम के भक्त हैं—उनको किसी से क्या लेना-देना ? बेचारों को आँखों से भी कम दिखाई देता है । यहाँ से ही दोनों समय उनके लिए रोटी चली जाती हैं और मुझे मालूम है कि सरोज भी कई बार अपने घर से खाना ले गई है । फिर तो...वह ‘नई बस्ती’ के बड़े लोग हैं जिन्हें हमारी क्या चिन्ता ?’

‘खैर तो, वह तो इस मामले में क्या दिलचस्पी लेंगे । ठाकुर, मैं ज़रा सरोज के ... से मिलना चाहता हूँ, कोई हज़र तो नहीं है ?’

‘नहीं साहब, हज़र काढ़े का । उनका मकान लड़कों के स्कूल के पास ही है, ज़रा ऊँचा-सा । हो आइए ।’

‘अच्छा, हो आता हूँ, पर न मालूम वह दिल में क्या सोचेंगे । मैं यहाँ...।’

‘आप चिन्ता न करें । वह बड़े अच्छे आदमी हैं । हो आओ आप ।’

तो शेखर सरोज के मकान की ओर चल दिया और दरवाज़ा खट-खटाया । कुछ क्षण पश्चात् किसी ने दरवाज़ा खोला ।

‘जय राम ।’ शेखर ने हाथ जोड़े ।

‘जय राम । आओ बेटा, कैसे कष्ट किया ?’ एक वृद्ध ने पूछा ।

‘सुमा कीजिए । मैं आप को कष्ट दे रहा हूँ, शायद आप तो मुझे नहीं जानते होंगे । सरोज की तलाश में आपसे कुछ सहायता लेने आया हूँ ।’

‘तो अन्दर आओ न !’

शेखर अन्दर गया । वृद्ध बोला—‘सरोज की माँ, देखना—यह आये हैं । मैंने तुमसे कहा था न कि एक काबिल मुसाफिर यहाँ आया है जो हमारी सरोज की तलाश में दिलचस्पी ले रहा है ।’

‘मुझे उससे क्या ? तुम कर लो उससे चातचीत । पर यह परदेशी लोग क्यों हमारे मामलों में घुसते हैं ?’ प्रौढ़ा कुछ बुरे दिमाग की मालूम होती थी ।

शेखर ने उसके सामने हाथ जोड़े और एक खाट पर बैठ गया । फिर बोला वृद्ध से—‘आपने तलाश के अतिरिक्त भी कोई और कार्रवाई की ओर ध्यान दिया ?’

‘भाई तलाश का जहाँ तक सम्बन्ध है प्रायः सभी कर हारे । अब समझ में नहीं आता कि क्या करें ?’

शेखर को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि सरोज के खो जाने पर जितना इन माँ-बाप को दुःखित होना चाहिए उतना वह नहीं दिखाई दे रहे थे । वह बोला—‘मेरा मतलब है कि आप पुलिस द्वारा उसकी खोज क्यों न करें ?’

‘नहीं बेटा, हम पुलिस की मदद नहीं लेना चाहते । उसमें फिर बड़ा फजौता होता है ।’ वृद्ध ने कहा ।

‘तो फिर कलकत्ता से किसी होशियार जासूस को बुलाया जाय ?’ शेखर ने दूसरी युक्ति उपस्थित की ।

‘न बाबा, इसमें तो बड़ी बदनामी होगी ।’ वृद्धा ने फिर गर्दन हिला दी ।

‘तो क्या आपके मतानुसार तलारा के जो सही और उपलब्ध ढङ्ग हैं और ज़रिए हैं उनसे काम ही नहीं लेना चाहिए ?’ शेखर ने तर्क आकर कहा ।

प्रौढ़ा ने असहाय होकर कहा—‘ईश्वर की इच्छा है, यदि जिन्दा हुई तो मिल ही जायगी । और क्या करें ?’

‘मेरा विचार है कि आपकी नींद और आपका खाना हARAM हो रहा होगा ?’ शेखर ने उन्हें कुछ और टटोलने के अभिप्राय से पूछा ।

‘हाँ बेटा, दुनिया हमारी आँखों में अधेरी हो रही है । कैसी प्यारी बेटी । देखो, तुम्हें उसकी तस्वीर बताऊँ ।’ यह कहकर वृद्ध ने एक बस्ता-सा खोला । उसमें से बहुत से पुराने कागज़ निकालकर एक ‘पैकेट’ उठाया और उसे शेखर के हाथ में देते हुए वृद्ध ने कहा—‘देखो, यह तो उसके बचपन की तस्वीर है और यह अभी थोड़े दिनों की है ।’

शेखर ने बचपन की तस्वीर भी देखी और अभी की भी । अतीत के मासूम दिनों में यह लड़की एक नन्हीं-सी कली थी जो अब खिलकर एक सुन्दर और बड़े फूल में परिणत हो गई थी । सरोज यथार्थ में सरोज थी । शेखर उसे पहली ही दृष्टि में देखकर आत्म-विस्मृत सा हो गया । चाँद से मुखड़े पर घँघर वाले बाल पड़े हुए ऐसे प्रतीत होते थे मानो वह मादक और फटेरे सी बड़ी-बड़ी आँखों और कोमल अधरों की शान में झुके हुए मानो उसके रूप पर कविता कर रहे हों । आँखें—बोलती हुई और बड़ी-बड़ी जिनमें अँगूरी शराब की मादकता छलछल रही थी । उन्नत भाल, सीधी उतरती लम्बी नाक । और बीच से मिली हुई घनी भौहों के नीचे न जाने कितना अन्धकार खेल रहा था जो बताता था कि इसका सारुण्य इससे कभी न छूटेगा । यह गाँव की किसी साधारण

लड़की का चेहरा कभी नहीं हो सकता था। यह इस वृद्ध और उन कुरूप प्रौढ़ा के पेट का 'रतन' न हो सकता था।

शेखर कई मिनट तक उस हृदयहारी सौन्दर्य को अपलक देखता रहा और जितनी देर उसने उसको देखा उतनी ही उसकी तलाश की इच्छा उसकी छाती में प्रबल और वेगवान होती गई। उसने हड़ निश्चय कर लिया कि वह इस 'परी' को बड़े से बड़े मूल्य पर खोज कर रहेगा। तस्वीर बोल रही थी कि 'तुम हमको ढूँढ़ो, हम छिप गये हैं। आओ हमारी तलाश में। तुम्हारा जीवन अब तक खंडहर था, हमें पाने की कोशिश करो—हम तुम्हारी जिंदगी में शराब उँडेल देंगे, आकर्षण भर देंगे, सुख भर देंगे—अरे तुम आओ तो सही, तुम्हारी भटकी हुई जिन्दगी के हम सितारे मँड देंगे। आओ—'

और जैसे ही यह शेखर ने सुना वह चल पड़ा। वह उसे ढूँढ़ेगा... ढूँढ़ेगा, जीवन के अन्तिम श्वाँस तक ढूँढ़ता रहेगा। जमीन को खोद देगा, जङ्गलों को छान डालेगा, पहाड़ों से टकर ले लेगा; किन्तु उसे ढूँढ़कर रहेगा—ढूँढ़कर... उसने उसे पुकारा है, वह जायगा। वह जायगा।



'क्यों साहब, मिल आये सरोज के माता-पिता से?' ठाकुर ने शेखर से पूछा।

'हाँ, मिल आया ठाकुर। उस लड़की को हमें किसी भी मूल्य पर खोजकर निकालना है।'

'हाँ, हर कीमत पर खोजकर निकालना है।' पीछे से आवाज़ आई।

'मैं उनसे रात को मिल चुका हूँ।' शेखर ने हँसते हुए कहा। फिर मुड़कर बीरेन्द्र की ओर देखा।

शेखर के सम्मुख एक सुदृढ़, बलिष्ठ युवक खड़ा था जिसके चेहरे से पागलपन, मजनू की सी मोहब्बत और जङ्गलीपने के भाव स्पष्ट हो रहे थे ।

‘मैं रात के अपने आचरण पर क्षमा चाहता हूँ ।’ वीरेन्द्र ने शेखर से कहा, फिर कुछ रुककर बोला—‘किन्तु आपको धन्यवाद देता हूँ कि आप सरोज की तलाश में मुझे सहयोग प्रदान कर रहे हैं ।’

‘मेरे को एक युक्ति सूझी है ।’ शेखर बोला—‘मैं नहीं कहता कि इस कस्बे में बदमाश ही बसते हैं किन्तु ईश्वर की बुरी दुनिया सभी जगह मौजूद है... इसलिये मेरा विचार है कि अकस्मात् कस्बे में घरों की तलाशी ली जाय लेकिन वह उस समय तक सम्भव नहीं जब तक कि मजिस्ट्रेट से तलाशी का वारण्ट नहीं प्राप्त कर लिया जाय ।’

‘बड़ा कठिन मामला है ।’ ठाकुर ने कहा ।

वीरेन्द्र बोला—‘पहले तो मजिस्ट्रेट की अधिकार तहसीलदार को ही प्राप्त थे किन्तु अब यह अधिकार यहाँ के जमींदार साहब को मिल गये हैं जो बहुत ही अखड़, एकान्त-प्रिय और शुष्क प्रकृति के आदमी हैं किन्तु यह सब कुछ होते हुए भी वह कस्बे वालों से सहृदयता अवश्य रखते हैं । मेरा विचार है कि आप, ठाकुर साहब और कुछ अन्य लोग मजिस्ट्रेट साहब की हवेली पर चले और उन्हें अपनी संपूर्ण कठिनाइयों से सूचित करें तो वह अवश्य ‘वारण्ट’ निकाल देंगे !’

शेखर ने कहा—‘मुझे तो चलने में कोई आपत्ति नहीं—वह जमींदार या मजिस्ट्रेट साहब क्या इसी कस्बे में रहते हैं ?’

‘हाँ, यहाँ से लगभग एक फ़र्लाङ्ग की दूरी पर उनकी एक विचित्र सी, दकियानुसी हवेली है—हवेली क्या है, एक प्राचीन समय का किला है जिसमें वह अकेले रहते हैं । हाँ, भूत और प्रेत तो उनके साथ रहते हैं । सुना है कि उस हवेली में अत्यधिक भूत-प्रेत हैं ।’ ठाकुर ने कहा ।

‘तुम्हारे उन मजिस्ट्रेट साहब का नाम क्या है ?’ शेखर ने पूछा ।

‘ठाकुर अनूपसिंह ।’ वीरेन्द्र ने बताया ।

‘ओहो, आज हम अपने एक रिश्तेदार के दर्शन करेंगे जो हमें पहचानते भी नहीं हैं ।’ शेखर ने कहा । फिर बोला—‘मेरा विचार है, आज रात को आप, मैं और ठाकुर और कुछ सज्जन मिलकर उन जमींदार साहब की सेवा में उपस्थित हों और उनसे मकानों की तलाशी के सम्बन्ध में कागज़ प्राप्त करें ।’

‘ज़रूर चलिए, मेरे अच्छे दोस्त, ज़रूर चलिए । सरोज—तेरी तलाश में मैं आकाश और पृथ्वी छान डालूँगा ।’ दीवाने वीरेन्द्र ने कहा ।

‘साथी, यह आचरण तुम्हारा एक सच्चे प्रेमी के उपयुक्त नहीं है कि तुम हर स्थान पर यों स्वतंत्रतापूर्वक सरोज का नाम ज़बान पर लाओ । ज़रा इन्सानियत के जामे में रहिए ।’ शेखर ने वीरेन्द्र से कहा ।

‘तुम कौन होते हो मुझे मना करने वाले ?’ उसने क्रोध में जवाब दिया—‘उफ़, तुम क्या जानो, उसके बियोग में मेरी क्या दशा हो रही है !’

शेखर बोला—‘किन्तु इस एक ओर के प्यार से क्या लाभ ? वह तो तुम्हारी परवाह करती ही नहीं है । तुम व्यर्थ ही उसके प्रेम में पागल बने हुए हो ।’

‘पागल !’ ‘अरे भाई, मैं तो उसका पुजारी हूँ, उसका सेवक हूँ, उसका गुलाम हूँ । जिस जगह वह कदम रखती है, मेरे लिए स्वर्ग बनाती जाती है । प्यारे दोस्त, तुम क्या समझो कि प्रेम किसे कहते हैं ।’

‘सच, मैं इस मजनु के से प्रेम से अनभिज्ञ ही हूँ और भगवान् से

प्रार्थना करता हूँ कि उससे हर प्राणी को सुरक्षित रखे—धर्म और आदर्श के हितार्थ, मानवता और...।’

‘धर्म ? आदर्श ? हा-हा-हा !’ वीरेन्द्र ने पैशाचिक हँसी हँसते हुए चिल्लाकर कर कहा—‘सच कहता हूँ, तुम मेरी सरोज की तलाश में मेरी मदद कर रहे हो, अन्यथा मैं तुम्हारी इस ‘नास्तिकता’ पर तुम्हारा सिर फाड़ डालता ।’ वीरेन्द्र ने लाल होकर कहा ।

‘वीरेन्द्र साहब कुछ होश में भी हैं या सबको एक लाठी से हाँक रहे हैं ?’ शेखर ने मुस्कराते हुए कहा ।

‘तुम मेरे माननीय अतिथि का अपमान कर रहे हो, कितनी शर्म की बात है । एक तो वह निःस्वार्थ भाव से हमारी मदद कर रहे हैं, हमारे काम आ रहे हैं और उस पर तुम्हारी अकृतज्ञता का यह हाल है ।’ ठाकुर ने बिगड़ते हुए कहा ।

‘ओह, शेखर साहब मुझे माफ़ करना । मैं पागल हो रहा हूँ । उफ़, मैं यह कभी सहन नहीं कर सकता कि मेरे अतिरिक्त किसी और के मुँह पे सरोज का नाम निकले ।’ वीरेन्द्र ने कहा ।

खैर विवाद बन्द हो गया । . .

रात को खाना खा-पीकर कस्बे के कुछ लोग और यह तीनों मिलकर मजिस्ट्रेट साहब की हवेली पर पहुँचे । शेखर ने देखा कि यह मकान क्या था, एक बहुत बड़ा किला था, जिसमें सैकड़ों प्राणी पनाह ले सकते थे जिसमें वह मजिस्ट्रेट अकेला रहा करता है । यही कारण था कि कुछ कमरों को छोड़, अन्य सभी कमरे अँधेरे पड़े हुए थे । इस हमारत को देखकर एक आतङ्क-सा पैदा होता था । डरावने कमरे, सुन्सान दालान और अँधेरी कोठरियाँ—ऐसा प्रतीत होता था मानो यह भूत और प्रेतों का निवास-स्थान है । सदर दरवाज़े पर दो प्रहरी बैठे थे और एक चौकी-दार बैठा हुआ बीड़ी पी रहा था । उनको देखकर प्रहरी उठ खड़े हुए और झुक कर सलाम किया ।

‘हाकिम साहब भीतर हैं क्या?’ ठाकुर ने पूछा ।

‘जी हाँ । फ़रमाइए ।’ एक चपरासी ने गैलेरा में से पूछा ।

‘ज़रा भाई सूचना देना कि कस्बे के कुछ लोग भेंट करना चाहते हैं ।’ वीरेन्द्र ने कहा ।

चपरासी कुछ क्षण पश्चात् स्वीकृति लेकर आ गया । शेखर का दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़क रहा था । वह आज जीवन में प्रथम बार अपने बाप-दादा के मकान में प्रवेश कर रहा था और अपने वृद्ध आत्मीय से मिलने वाला था । जान-बूझ कर उसने सबसे अन्त में प्रवेश किया इसलिए ज़मींदार साहब की दृष्टि में वह नहीं पड़ा ।

एक बहुत ही लम्बे-चौड़े और सुन्दर हॉल में कार्लोस बिछी हुई थी और उन पर पुरानी ‘फ़ैशन’ की मसबदेँ और ‘गाँव-तकिये’ रखे हुए थे । कोनों में चमकदार आबनूसी मेज़ें और आलमारियाँ रखा हुई थीं और दीवारों पर कुछ प्राकृतिक दृश्यों की और कुछ प्रताप, शिवाजी, वनवासी राम और धार्मिक पुरुषों की तस्वीरें लटक रही थीं । बीच में एक बड़ी-सी कंदील जल रही थी । हाँ, तो प्रत्येक वस्तु प्राचीन समय की याद दिला रही थी । एक सुन्दर से लकड़ी के तख्ते पर, एक मखमल के कपड़े पर ‘गीता’ रखी हुई थी—इसके बिल्कुल सामने तकिये के सहारे मजिस्ट्रेट साहब बैठे हुए थे । उनकी उम्र ४५ और ५० के बीच होगी किन्तु अङ्ग इतने सुदृढ़ और गठीले थे कि उम्र पाँच-दस वर्ष कम ही मान्गूम होती थी । छः फ़ीट का कद, चौड़ा सीना, विशाल कन्धे, बलिष्ठ शरीर, अरुण और श्वेत चेहरे पर कार्लो स्याह दाढ़ी से भय का संचार होता था ।...

‘आओ ठाकुर । ओ हो, वीरेन्द्र भी है । आज किस तरह आना हुआ ? उन्होंने अपनी दृढ़ और मँजी हुई आवाज़ में पूछा ।

इसके पश्चात् उनकी दृष्टि अकस्मात् शेखर पर पड़ी और इस सुन्दर, स्वस्थ और प्रफुल्ल युवक को उन्होंने बड़े आश्चर्य और चाव से देखा । और

तब उठ कर, उन्होंने सबको यथास्थान बिठा कर, शेखर को अपने निकट आने का संकेत करते हुए बोले—‘आपका शुभ नाम ? मेरा विचार है कि मैंने इससे पूर्व आपको कभी इस कस्बे में नहीं देखा ।’

‘आपका विचार सही है ।’ शेखर ने विनीत स्वर में कहा—‘मुझे कलकत्ते से यहाँ आये हुए अभी कुछ ही दिन हुए हैं ।’

‘कैसे आना हुआ ?’

‘शहरी जीवन से जी घबरा गया था, कहीं जाना चाहता था । भाग्य इधर ले आया ।’

‘आपका शुभ नाम ?’

‘शेखर !’

‘शेखर ..?’ उन्होंने उसे बड़े ध्यान से देखते हुए अस्फुट से स्वर में कहा—‘शेखर !’

‘जी !’

‘आप बहुत सही जगह आये हैं !’

‘मैं आपका आशय नहीं समझा ।’

तो क्या वह उसको पहचान गये थे ?.....असम्भव है । इन्होंने आज तक मुझे नहीं देखा है । फिर .. अनूप सिंह कुछ मुस्कराकर बोले—‘आशय, यही है कि हर युवक को आबहवा के दृष्टिकोण से पीपलगाँव जैसे हॉ कस्बे की आवश्यकता है ।’

क्या इस कथन का सार कुछ और था ? शेखर असमंजस में डूबने-उतराने लगा । पर सँभलकर बोला—‘जी हाँ, वास्तव में इस दृष्टिकोण से आपका कस्बा बहुत ही सुन्दर और उपयुक्त जगह है कि यहाँ से लड़कियाँ गायब होकर अपरिचितों को अपने सौंदर्य और अपनी कोमलता का कष्ट दिया करती हैं ।’

शेखर ने जैसे अनायास ही चुटकी भर ली ।

‘अच्छा—तो सरोज नाम की लड़की की तलाश में आपको भी पकड़

लिया है ?' अनूपसिंह ने शेखर के वाक्-चातुर्य और चुटकी की मन ही मन प्रशंसा कर, मुस्कराते हुए कहा ।

‘जी हाँ साहब, यह बड़े भले आदमी हैं । हम लोगों ने इनको भी सरोज की तलाश में धर घसीटा है और सच तो यह है कि जो बात इनके दिमाग में आती है वहाँ तक हमारी समझ पहुँचती भी नहीं ।’ धर्मशाला के ठाकुर ने कहा ।

‘अच्छा, तो आप लोग अब तक इस खोई हुई लड़की की तलाश में कहाँ तक सफल हो पाये हैं ?’

‘कुछ भी तो नहीं । अब आपकी सहायता से कुछ काम बन जाये ?’ वीरेन्द्र ने कहा ।

‘मैं हर प्रकार से आपकी सहायता करने को प्रस्तुत हूँ । इस लड़की के चरित्र का जहाँ तक मैं पता लगा सका हूँ, इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि वह यहाँ के वातावरण से बिल्कुल पृथक् प्रकृति रखती है और कुछ देहाती मन चलों और गुण्डों (यह कटाक्ष वीरेन्द्र की ओर था) से उसने अपने सौंदर्य को अब तक भावनाओं के रङ्गीन धोखे से सुरक्षित ही रखा । इसलिए यह तो समझ में नहीं आता कि वह किसी के साथ भागी है और न यह स्वप्न में भी विचारा जा सकता है कि वह नदी में डूब गई है । अब तो केवल यह अनुमान शेष रह जाता है कि सम्भव है कि वह ज़बर्दस्ती इस बस्त्र में किसी मकान में बन्द कर दी गई हो अथवा खुद छिप गई हो—स्वेच्छा से ।’

‘हमारा भी यही विचार है—बिल्कुल यही, इसलिए कस्बे के सारे घरों की तलाशी के लिए आपसे आज्ञा प्राप्त करने, आपकी सेवा में उपस्थित हुए हैं ।’ शेखर ने कहा ।

‘आप यदि सरकारी तौर पर एक वारण्ट निकाल देंगे तो आपकी बड़ी कृपा होगी । हम संदिग्ध मकानों की तलाशी ले सकेंगे ।’

‘बहुत अच्छा विचार है। मैं इसका समर्थन करता हूँ।’ ठाकुर अनूप सिंह ने कहा। फिर कुछ गम्भीर भाव से कहा—‘मैं स्वयं इस लड़की की तलाश में दिलचस्पी लेने लगा हूँ इसलिए यदि आप सज्जन पसन्द करें तो अपने एक होशियार दोस्त को काश्मीर से बुलवा लें जिसकी समस्त आयु ऐसे ही संझटों में बीती है।’

‘धन्यवाद ! किन्तु सरोज के माता-पिता यह नहीं चाहते कि यह मामला पुलिस के सुपुर्द किया जाय।’ शेखर ने कहा।

‘और न मैं चाहता हूँ कि किसी भले आदमी की बदनामी हो। वह आदमी पुलिस से सम्बन्ध नहीं रखता है... खैर, मैं उसको कल ही तार देकर बुलवाता हूँ और ‘वारण्ट’ भी प्रमा दिया जायगा।’

‘ईश्वर आपको प्रसन्न रखे।’ ठाकुर ने कहा।

‘अच्छा तो अब आज्ञा दीजिए। हमने आपका मूल्यवान समय लिया।’ वीरेन्द्र बोला। और फिर सब लोग जाने के लिए खड़े हो गये।

ठाकुर अनूपसिंह ने कहा—‘मुझे आशा है, शेखर, तुमसे यह आखरी मुलाकात न होगी।’

‘आप जब आद फरमावें, सेवक हाज़िर हूँ।’ शेखर ने जवाब दिया, और फिर सब चल दिये।

७

‘अच्छा, यह तो बताओ ठाकुर, यह अनूपसिंह सरोज को कैसे जानते हैं?’ शेखर ने धर्मशाला में आकर ठाकुर से पूछा।

ठाकुर बोला—‘वैसे कौन नहीं जानता? साहब, सरोज के स्कूल में बड़ा-कड़ा जलसे हुआ ही करते थे, उनमें पारितोषिक भी बाँटा जाता

था, तो उन जल्सों में यह मजिस्ट्रेट साहब ही प्रधान हुआ करते थे । वह भी सरोज पर बड़े कृपालु थे और उसे माता-पिता का सा प्यार करते थे ।’

‘ठाकुर, तुमने मुझसे एक बार एक अन्धे साधू का जिक्र किया था जो बस्ती से बाहर, लालाराम की बगिया में एकाकी पड़े रहते हैं । मेरा आशय है कि आज उनसे भी मिल आऊँ । सम्भव है कि कुछ उनके द्वारा मालूम हो ।’ शेखर ने कहा ।

‘वहाँ से आपके पल्ले कुछ नहीं पड़ेगा । वह तो राम के भक्त हैं— खैर, हो आओ उनके पास यदि तुम्हारा दिल चाहे ।’ ठाकुर ने कहा ।

‘तुम्हारे मजिस्ट्रेट साहब के कोई सन्तान नहीं है ?’

‘एक लड़का है जो विलायत गया है । बड़ा होनहार बच्चा है ।’

‘हूँ !’ और शेखर ऊपर अपने कमरे में चला गया । खाना खाया और तत्काल कपड़े पहनकर नीचे आया । ठाकुर से लालाराम की बगिया का पता पूछा और ‘बाबा’ की सेवा में जा उपस्थित हुआ ।

बाबा धूनी रमाये अकेले पड़े हुए थे । नीचे शेर की खाल बिछी हुई थी—एक ओर उनकी खड़ाऊँ पड़ी हुई थी—और एक ओर उनका चिमटा, कमण्डल और चिलम इत्यादि रखे हुए थे । शेखर के पैरों की आवाज़ सुनकर वह कुछ चौंके और फिर दहाड़ती आवाज़ में बोले—
‘कौन है ?’

‘प्रणाम बाबा, यह तो मैं एक अपरिचित आपके दर्शन करने चला आया हूँ बाबा, आपका आशीर्वाद प्राप्त करने ।’ और फिर शेखर ने अपना नाम और आने का आशय बताया ।

बाबा बोले—‘बड़ी अच्छी बच्ची थी सरोज । ईश्वर उसकी रक्षा करे । किन्तु तुम क्यों उसकी तलाश में इस प्रकार चिन्तित हो ?’

‘धर्म और परोपकार का काम है बाबा ।’ शेखर ने कहा ।

‘निःसन्देह । ईश्वर तुम्हें सुश रखे । बड़े भले आदमी मालूम होते हो ।’ फिर कुछ रुक कर बोले—‘मैं सरोज के पिता लच्छीराम को भी जानता हूँ । मेरे सामने ही तो वह यहाँ आकर बसे थे । पन्द्रह-सोलह वर्ष हुए होंगे, सरोज पाँच साल की थी । उसको मैंने गोद में खिलाया है ।’

बाबा ने अकस्मान् निरर्थक-सी और कुछ सार्थक-सी बातचीत आरम्भ कर दी । शेखर को सन्देह हुआ कि यह बाबा इस रहस्य के बारे में अवश्य कुछ जानते हैं । तो पूछा—‘आप अनूपसिंह जी ज़मींदार से भी परिचित हैं ?’

‘मैं किसको नहीं जानता ?’ फिर कुछ झिझकते हुए कहा—‘बड़े सज्जन पुरुष हैं । और मैं राजित सिंह—इनके साले से भी अच्छी तरह परिचित हूँ । बड़ा आदारा आदमी था । क्या तुम उन्हें जानते हो ?’ बाबा ने बात टालते हुए और-और प्रसङ्ग छेड़ देना चाहा ।

‘यह मैं नहीं जानता बाबा, पर इतना जानता हूँ कि अनूपसिंह मेरे आत्मीय ही हैं ।’ फिर कुछ रुककर कहा—‘हाँ तो बाबा, कुछ बताइए न ?’

‘मैं कुछ नहीं जानता ।’ बाबा ने साफ़ जवाब दे दिया ।

‘कुछ तो बताइए ही बाबा ।’ शेखर ने अनुरोध किया ।

‘मेरे पीछे क्यों पड़े हो बाबा ?’ मैं क्या जानूँ ? जाओ यहाँ से ।’

‘बाबा, क्या यही हमारा हिन्दु धर्म है—और क्या यही हमारे हिन्दु धर्म की शान है कि किसी हिन्दु की हिन्दु मदद न करे ?’ शेखर ने धर्म की दुहाई देते हुए कहा ।

शेखर अब तक सरोज को एक साधारण ढङ्ग से खोज रहा था । अब तक उसने उसकी तलाश को केवल समय बिताने का एक मात्र

साधन समझ रखा था किन्तु उसकी तस्वीर देखा लेने के बाद से उसकी इस तलाश में तन्मयता, लगन और सरगमी पैदा हो गई थी । न जाने क्यों सरोज के साथ शेखर अब एक आन्तरिक लगाव अनुभव करने लगा था । वह स्वयं नहीं जानता था कि यह अविदित और अस्पष्ट आत्मिक सम्बन्ध किसके लिए जुड़ता चला जा रहा है और क्यों ? फिर भी कुछ ऐसा था जिसे वह 'लगाव' और 'आकर्षण' की संज्ञा देता था और आन्तरिक तौर पर अनुभव करता था—एक तीव्र अनुभव, कि सरोज को ढूँढ़ना है, बिना ढूँढ़े वह जीवित रहकर ही क्या करेगा ? हूँ, क्या करेगा वह ?...

वह कराहता हुआ-सा बोला—‘आप सब कुछ जानते हैं पर बताते नहीं बाबा ।’

‘मैं कुछ नहीं बता सकता—मैं कुछ नहीं बताऊँगा । वह मुझे कच्चा चबा डालेगा, वह मुझे ज़िन्दा गाड़ देगा ।’ बाबा ने कँपकँपाते हुए कहा ।

‘वह—कौन बाबा ?’ शेखर की आँखें भय और आश्चर्य से चौड़ी हो गईं और हृदय स्पन्दन मानो क्षण भर के लिए ठहर गया ।

‘मैं उसका नाम भी नहीं बता सकता ।’

और शेखर पल भर में समझ गया कि ऐसी प्रबल शक्ति सिवा अनूपसिंह के और कौन हो सकती है जिससे यह अंधेरी दुनिया का प्राणी और कहे जाने को राम का भक्त इस प्रकार कँपता है—वह किन्तु भरे स्वर में बोला—‘आप अनूपसिंह जी से डरते हैं शायद ?’

‘चुप-चुप ! उसका नाम इतनी ज़ोर से ज़बान पर न लाओ । दीवारों के भी कान होते हैं ।’

‘मुझे तो डरने का कोई भी कारण दिखाई नहीं देता बाबा...’

अच्छा, यह तो बताओ बाबा, यह सरोज क्या लच्छीराम की ही अपनी लड़की है अथवा कोई सौनेली...?’

‘हूँ—तुमने यह सवाल क्यों किया?’

‘क्योंकि सरोज में न तो मुझे लच्छीराम की और न उनकी स्त्री की समानता मिलती है।’

‘तुमने सरोज को कहाँ देखा?’

‘मैंने उसकी तस्वीर देखी है और बहुत ध्यान से देखी है।’

‘तुम बहुत खतरनाक आदमी मालूम होते हो, तब तक पहुँचे जा रहे हो। सरोज न लच्छीराम की बेटी है और न उनकी स्त्री की ही।’

‘ओह... यह बात...! चलिए मेरा एक अनुमान तो सत्य निकला। मैं तो पहले ही समझ गया था कि सरोज का न तो इस करबे के वातावरण से ही सम्बन्ध है और न यहाँ के लोगों से ही।’

‘हाँ, तुम सही हो। लच्छीराम और उसकी पत्नी ने सरोज को उस समय से पाला है जब वह दूध पीती बच्ची थी, यही कारण है कि वह उन्हें अपना माता-पिता ही समझती है।’

‘तो वह आखिर किसकी लड़की है?’ शेखर ने अधीर होकर पूछा।

‘मेरी समझ में अब तुमको यहाँ से चल देना चाहिए। तुम यदि मुझे काट भी डालोगे तो मैं नहीं बताऊँगा।’ और यह कह, बाबा उठ खड़ा हुआ और चिमटा उठा कहीं जाने के लिए तैयार हो गया।

‘अच्छा बाबा, आप तो नाराज़ हो गये। मैं जाता हूँ। प्रणाम।’ और यह कह, शेखर भी वहाँ से उठकर चल दिया एक ओर।...

सूरज पहाड़ियों के दामन में, पेड़ों के झुरमुट के पीछे पच्छिम में डूब गया था। चारों ओर अन्धकार वस्तुओं को निगलता हुआ बढ़ा चला

आ रहा था । बादलों के कारण और भी अँधेरा हो गया था । शेखर ने सोचा, इस समय भूख तो है ही नहीं इसलिए अपने कमरे में जाकर क्या करूँगा ? ज़रा अनूपसिंह साहब से फिर मिल आऊँ, उन्होंने दूसरी मुलाकात की दावत भी दी थी । सम्भव है कि वहाँ पहुँचकर 'घटना' के चेहरे पर से कुछ नकाब और उठ जाये किन्तु वह अपने आत्मीय की उपस्थिति में जाने से डरता था क्योंकि वह बड़े घाघ और गहरी प्रकृति के आदमी थे । यद्यपि उन्होंने उसे अच्छी तरह पहचाना नहीं था किन्तु वह रिश्तेदारी के बीच में रखकर भी उनसे कुछ उगलवा नहीं सकता था ।

पैर उसके बढ़ रहे थे—यंत्र-चालित शव की भाँति वह आगे बढ़ता जा रहा था—आगे, उसे पता नहीं कहाँ । विचारों की भीड़ में फँसा हुआ, अर्द्धचेतन, हतप्रभ और शून्य । नई-नई निज्ञासायें टोली बनाकर बरों की भाँति उसके दिमाग में 'धू-धू' कर रही थीं—सरोज लच्छीराम की लड़की नहीं है तो फिर किसकी है ? क्या यह सम्भव नहीं कि उसके भी यह रहस्य प्रकट हो गया हो और वह अपना असली माता-पिता का खोज में निकल खड़ी-हुई हो ? किन्तु वह चली कहाँ गई ? आश्चर्य तो यह है ।...

कि वह विचारों के व्यूह से सहसा निकल आया । उसने देखा, वह मजिस्ट्रेट साहब की उस विशाल इमारत के बिल्कुल सामने आ गया है । इमारत के चारों ओर अँधेरा था और वह इस अँधेरे में और भी वीभत्स नज़र आ रही थी । उसकी बाहर की दीवारों पर से चूना उखड़ गया था जिससे दीवार पर विचित्र डरावनी सूरतें बन गई थीं । ऐसा प्रतीत होता था मानो दीवाल से लगे भूत-प्रेत चुपचाप पहरा दे रहे हों ।...

जैसे ही शेखर कोठी के फाटक के समीप पहुँचा, सदर दरवाज़ा खुला और दो आदमी रोशनी में से बाहर निकलते हुए दिखाई दिये । शेखर

एक झाड़ी के पीछे छिप गया। जब वह उसके निकट से निकले तो उसने पहचाना कि एक तो अनूपसिंह थे और दूसरा उनकी ही उम्र का कोई और व्यक्ति था। दोनों बातें करते हुए कहीं जा रहे थे।

शेखर धीमे-धीमे आगे बढ़ा और जब वह दूर चले गये तो बगीचे में से होता हुआ—अपनी उस दादा-परदादा की सम्पत्ति को देखने लगा। बाँई ओर जाकर उसने देखा कि यह तो बड़ी लम्बी इमारत है जिसका एक चौथाई भाग आलोकित है और शेष अँधेरा और सुन्सान पड़ा है।

पन्द्रह-बीस मिनट वह इसी प्रकार कुतूहल से भरा इस इमारत को बाहर से देखता रहा। हमारे पूर्वजों का कितना धन लगा होगा इसके निर्माण में? कैसी दकियानूसी हवेली बनवाई है? किन्तु यह अनूप सिंह के अधिकार में कैसे आई? यह भी विचित्र रहस्य है। भला, इस इमारत के पिछवाड़े में इस गुंबज की क्या आवश्यकता है और क्या रहस्य जो इस प्रकार लोह स्तम्भ-सी सुदृढ़ और सुरक्षित बनवाई गई है?

रात के आठ-नौ ही बजे होंगे किन्तु अन्धकार से ऐसा प्रतीत होता था मानो दस-ग्यारह से भी अधिक समय हो गया था। शेखर एक बहुत पुराने, घने और विशाल बरगद के वृक्ष के तने के पास खड़ा हुआ उस गुंबज को ध्यान से देख रहा था। उसके सिर पर चिमगादड़ें ठहाका मार रही थीं। खुश पत्तों पर से कभी कोई पत्ती निकल जाता था। अँधेरा उमड़े हुए बादलों की भाँति छाता चला जा रहा था। जैसे इस इमारत के अन्दर भूत नाच रहे हैं। जैसे चुड़ैलें उछल-कूद कर रही हैं—जैसे पायलें मृत्यु का राग अलाप रही हैं—जैसे...

और शेखर का रक्त जमने लगा। वह अपने इस मूर्खतापूर्ण 'प्रोग्राम' पर हँसा और वहाँ से चलने के लिए पैर उठाये ही थे कि उस गुंबज के निचले भाग में—जो एक तहखाना-सा मादूम होता था, णटका-सा

हुआ । ठीक उसके सामने की एक खिड़की खुली और प्रकाश की एक भड़कीली रेखा दूर तक अँधेरे का सीना चीरनी हुई चली गई । शेखर डर कर वृत्त और तने के पीछे जा छिपा और उछलता हुआ हृदय लिये देखने लगा—स्तब्ध, नीरव, साँस रोके... किन्तु—किन्तु ।

रोशनी थी । रोशनी में एक चेहरा बाहर की ओर भाँक रहा था । चेहरा ! और सन् से उसका खून दिमाग की तरफ दौड़ा । उसकी चुँधियायी हुई और डरी हुई आँखों के सम्मुख सरोज का चेहरा था ।

उसने अपने बालों को किसी चीज़ से बाँधा... शायद... शायद रेशमी सूत के बटे हुए धागे थे और फिर उन धागों को पकड़कर उसने अपने उन्नत उरोजों की मीठी-मीठी सुगन्ध लेने के लिए सामने लाकर छोड़ दिया । काले नाग यौवन की मिठास को पाकर आँचल के तल्ले कुण्डली मारकर बैठ गये । उफ़, कितना यौवन था ! कितना रूप ! शीतकाल के छोटे दिनों में घनी अमराई पर बिछलाती हुई हरियाली से तर धूप के समान यौवन ! उसने पहली ही नज़र में उसको पहचान लिया ।

उसकी आत्मा में एक भीषण आलोड़न-सा हुआ, और एक विचित्र पागलपन-सा । पहले तो तस्वीर ही देखी थी किन्तु अब साक्षात् सरोज उसके नेत्रों के सामने थी । उफ़, वह तस्वीर से कई गुना अधिक सुन्दर निकली । वह कलियों की मुस्कान से अधिक हृदयहारी थी और निरपराध बालक के सुहावने स्वप्न से अधिक निरपराध और भोली । शेखर को सिर और पैर का होश न रहा । उसकी आत्मा आँखों की राह से तिलमिलाती हुई निकलकर सरोज पर न्योछावर होने को बढ़ रही थी । उसका दिल अभिलाषाओं की सुनहरी जब्जीरों से जकड़ा हुआ सरोज के चरणों पर बलिदान होने को मचल रहा था ।

उसकी आँखें एक प्यार का चुम्बन बनकर सरोज पर छाये जा रही थीं ।

वीरेन्द्र का पागलपन निरर्थक और गलत न था ।

कुछ क्षण के पश्चात् ही जैसे वह चौंक उठी हो, घबराकर खिड़की के पास से हट गई, तत्काल अँधेरा हो गया और तेज़ी से खिड़की बन्द हो गई । शेखर के नेत्रों के सम्मुख अँधेरा वास्तव में अब छा गया । वह सिर पकड़कर बैठ गया और आत्म-विस्मृत-सा हो गया ।

न जाने कब तक वह उसी अवस्था में बैठा रहा और ईश्वर जाने कब तक यह आत्म-विस्मृति की दशा में रहता किन्तु दूर—फाटक खुलने की आवाज़ आई जिससे वह चौंक पड़ा । अनूपसिंह वापस आ गये थे । बहुत जल्दी शेखर ने अपने को सँभाला और अपने निर्जीव पैरों को घसीटता हुआ, छिपता-छिपाता धर्मशाला की ओर चल दिया ।

८

चन्द्रहास ले भागने को तो उस लड़की को मोटर में ले भागा था किन्तु अब उलझन में पड़ गया था कि अब उसे लेकर कहाँ जाया जाय ? उसने अपने बारे में कुछ बताया भी तो न था कि वह कौन है, कहाँ जाना चाहती है ।

वर्षा की अंधड़पूर्ण रात थी किन्तु वह चन्द्रहास की पसलियों में सिर छुपाकर निश्चिन्त सो रही थी । और चन्द्रहास सँभल-सँभल कर मोटर चलाये जा रहे थे । वर्षा ने बहुत हद तक कर्ब को अन्धा कर

दिया था, इस कारण उसको सड़क भी भली भाँति दिखाई नहीं दे रही थी ।

अभी वह कुछ ही मील आ पाया होगा कि उसको सड़क पर पानी का शोर सुनाई दिया । कार रोकी, आँखें फाड़कर जो सड़क पर दृष्टि डाली तो देखा, एक कमज़ोर-सा नाला बना हुआ बड़े ज़ोर शोर से चढ़ा हुआ था । पहले तो उसने सोचा कि तेज़ी से इसमें मोटर डालकर निकल जाय किन्तु सौभाग्य से उसकी नज़र लोढ़े के उस डंडे पर पड़ गई जो नालों पर गड़ा हुआ होता है और पानी का उतार-चढ़ाव बताया करता है । चन्द्रहास ने देखा कि पानी लाल निशान से भी ऊँचा ना रहा है । उसका कलेजा धक् से हो गया । बाल-बाल बचावरना न मोटर का कहीं पता होता और न उन्हीं उन दोनों का । वर्षा का यह हाल आ मानो पृथ्वी को मिट्टी के ढ़ले की भाँति पुज़ाकर दम लेने का विश्रय कर चुकी थी ।

मोटर के थम जाने से सोई हुई लड़की ने अपनी समझ में घलङ्ग पर करवट ली और 'हिल' पर गिरते-गिरते दबी । असमाप्त निद्रा की अवसन्न जड़ता से आच्छन्न और अर्द्धसुप्त आँखों ने चण भर आस-पास कुछ देखा और जब समझ में न आया तो फिर सो जाना चाहा ।

'मैंने कहा—हुज़ूर जरा आँखें तो खोलिए । देखिए, किस तेज़ी से सूरज चमक रहा है' वह हवेली कितनी ऊँची है किन्तु उसके ऊपर से कई बच्चे पेशाब कर रहे हैं । संभलिए—देखिए, कहीं आपके छूँटे न लग जायें ।' चन्द्रहास ने विनोद किया ।

लड़की अपना दुपट्टा समेट कर, एक दम चौंक कर उठ बैठी । अब जो आँखें मलकर सूर्य को देखना चाहा और पेशाब के छूँटों से बचने के लिए सिमटना चाहा तो वही अँधेरी रात—वही धाँय-धाँय वर्षा और वही मोटर की छोटो-सी सीट को पाया ।

‘देखिए चमक उठा न सूरज !’ चन्द्रदास खिलखिला पड़ा ।

शरारत से मुँह बनाया गया और फिर उसको उसी दुपट्टे में छिपा लिया गया जिसमें चेहरा छिपकर कौतूहल की सामग्री बन जाया करता है, जिसको पल भर देख लेने को आँखें तृपित और हृदय अधीर हो उठता है ।

‘देखो, अब आखरी—एक दम आखरी प्रणाम है हमारा । सामने बड़े ज़ोर से नाला चढ़ा हुआ है । इसलिए हम तो मोटर सहित यह चले—रह गईं तुम । तो मैं तुम्हें इस किनारे, इस शीशम के पेड़ के नीचे छोड़ देना चाहता हूँ । सुबह किसी बैलगाड़ी में या टट्टू, खच्चर अथवा गधे पर बैठकर अपने अज्ञात मकान पर पहुँच जाना और हाँ, पहुँचते ही एक काम यह करना कि थोड़ी-सी ताजा-ताजा मिठाई, कुछ सिगरेट और बिना तम्बाकू के पान हमारी मृत्यु पर धर्म-पुण्य कर देना ।’

मानो मुस्कान को समेटा जा रहा था***।

‘अच्छा लो, उतरो ।’ चन्द्रदास ने उसका बाजू पकड़कर दरवाजा खोलते हुए कहा ।

‘ऊँ-हूँ ।’

‘जी, इस ऊँ-हूँ से काम नहीं चलेगा । या तो उतरो या मेरे साथ मरने को तैयार हो जाओ ।’

‘नहीं मरते ।’

‘चाहता मैं भी नहीं हूँ कि मरो—तुम सलामत रहो हजार बरस... किन्तु इस समय ऐसी ही शुभ घड़ी आ गई है कि पानी के रास्ते से ईश्वर के पास पहुँचा जाय ।’

‘जरूरी नहीं है कि मोटर को इसी समय नाले में डाल दिया जाय ।’

‘ओह, तुमने तो शुभ अमावस्या का व्रत तोड़ दिया ।’

‘मरने के लिए किसी सुन्दर और उपयुक्त जगह का चुनाव नहीं किया गया है ।’

‘ओह, तो आपका विचार है कि स्वर्ग में जाकर मरें ।’ चन्द्रहास ने कहा ।

‘किस बला का मेह है और कैसे ज़ोर का मल्ल ! हे भगवान् क्या करूँ ?’

‘आखरी समय आ गया है, भगवान् का स्मरण कर लो ।’

‘हाय राम, मैं किस सुमीबत में आ फँसी ।’

‘जिससे एक छलाँग के क्रामले पर स्वर्ग है और परियाँ बाहें फैलाये हमारी प्रतीक्षा कर रही हैं ।’

‘वह घड़ी गारत न हो गई जब मैं इस हरामज़ादी मोटर में बैठी थी ।’

‘घड़ी तो मेरी कलाई पर बँधी हुई है और मोटर न हरामज़ादी है और न हलालज़ादी । पृष्ठ लेना किसी मौलवी से ।’

‘कहाँ जाऊँ मेरे राम ?’

‘मेरे विचार में नाला सबसे करीब है ।’

‘आप कुछ होश में हैं ? मुझे तो डर के मारे...और आपको परिहास सूझ रहा है ।’ उसने पहली बार चन्द्रहास को सम्बोधित करके कहा ।

‘डर—है तो वास्तव में बुरी चीज़ । आँवले के मुखे क्यों नहीं काम में लेती ?’

‘जीवन की ही किसको आशा है जो कोई चीज़ काम में ली जाय ।’

‘अहा—कविता—!’

‘वाह ई, आप कितने विचित्र आदमी हैं !’ उसने चन्द्रहास की ओर अपनी गर्दन घुमाकर कहा ।

‘खा जाऊँगा तुम्हें, अजीब जानवर हूँ मैं ।’ चन्द्रहास ने बहुत ही भयानक आवाज़ में कहा ।

‘लड़की के मुँह से हल्की-सी ‘उई’ निकल गई— ‘ईश्वर के लिए मुझे मत डराओ, मैं तो पहले ही डर के मारे अधमरी हो रही हूँ । अपनी बक्वास बन्द कीजिए, मेरा दिल उलट गया ।’

‘एक गोरी की आँखों से मुझे प्यार हुआ है—प्यार हुआ है ।’ चन्द्रहास गाने लगा ।

‘आप बड़े निरर्थक आदमी हैं—बिल्कुल बेमायने ।’

‘कौन सी ‘डिक्शनरी’ में देखकर कह रहा हो ?’

‘अरे साहब, कोई उपाय बताइए न, इस आफत से निकलने का ।’

‘उपाय-उपाय कुछ नहीं हो सकता, यदि मरना चाहती हो तो मेरे साथ नाले में गिरने के लिए प्रस्तुत हो जाओ और यदि जीवित रहना तथा रखना चाहती हो तो मोटर को इस शीशम के पेड़ के नीचे खड़ा करके राह देंगे कि इस नाले का पानी कम हो ।’

‘हाँ, ठीक है । चलिए । किन्तु यह जङ्गल, यह भयानक रात, यह साँय-साँय आँधी...’

‘किन्तु यह एक से दो प्राणी, यह सुरक्षित फ़रिश्ते, यह प्यारे विधातः की देख-रेख — क्या कुछ नहीं है तुम्हारी दृष्टि में ?’

‘आप अच्छे आदमी हैं, अब आपकी ओर से मुझे तस्ल्ली और विश्वास हो गया ।’

‘यह विश्वास कि मैं तुम्हें नहीं खाऊँगा ?’

‘कुछ भी समझ लीजिए ।’

‘सुश्री—महोदया, तुम्हें श्रम हुआ है । आज मैं अपने जीवन का एक बहुत ही गुप्त भेद बताता हूँ । लगभग पचास वर्ष हुए होंगे कि मैंने डेढ़-दो लाख आदमी कत्त कर दिये थे और पुलिस में बच कर अफ्रीका भाग गया था । वहाँ मुर्दा खाने वालों ने मेरी देख-रेख की और आदमियों को खाने की मेरे अन्दर भी आदत पैदा कर दी—वस, जब से कम्बख्त यह हाल हो गया है कि हफ्ते में एक-दो आदमी खाये बिना चैन नहीं मिलता ।’

लड़की ने घबराकर उसकी ओर देखा और चन्द्रहाम ने—गल्लस की भाँति मुँह फाड़ दिया किन्तु वह मुस्कराकर बोली—‘यह किसी और को डराइए ।’

‘डराने की एक ही रहस्य ! तुम देखती नहीं मैं कितना वीभत्स और कुरूप आदमी हूँ । ज़रा मेरे नाखून देखो—शेर के भी क्या होंगे । ज़रा मेरे दाँब देखो—मेरी खंखार आखें देखो, भूत की भी क्या होगी ?’

लड़की ने उसे फिर घबराकर देखा और उसके कथन के ठीक विपरीत उसे सुन्दर और प्रफुल्ल पाकर संतुष्ट और निडर हो गई ।

‘डरो—मुझसे भोली महोदया, चटती कर जाऊँगा तुमको । निवाला बना जाऊँगा ।’

‘चलिए, बहुत डरा चुके । अब हटाइए भी मोटर यहाँ से ।’

‘तुम मेरी ओर देखने की हिम्मत नहीं कर सकती हो—हाँ ।’

‘हे भगवान्, यह क्या पागलपन है ? आग्विर चलिए भी यहाँ से ।’

‘तुम जानो । नुकसान उठाओगी । तुम सोई और मैंने तुम्हें पेट में

धरा ।' यह कहकर चन्द्रहास ने मोटर खसकाई और शीशम के पेड़ के नीचे खड़ी कर दी ।

'रोशनी बन्द कर दीजिए । यह यहाँ जङ्गली जानवरों को खींच लायगी ।'

'आदमी तो समझदार मालूम होती हो । अच्छा, तुम्हें बन्दूक भी चलानी आती है ?'

'क्यों—खैरियत ?'

'मेरे पास पिस्तौल है । तुम यह बन्दूक सभाल लो । अच्छा अपनी यह सैंड चेहरे पर से हटा दो । देखो, इस तरह चलाने हैं, यां उठाने हैं और यों—दन !'

'क्यों, वह आपका नाले में कूदकर... का विचार क्या हुआ ?' लड़की ने परिहास किया ।

'उसको तुमने ठंडा कर दिया । अब मुझे अपने लिए नहीं, तुम्हारे लिए जिन्दा रहना पड़ रहा है ।' चन्द्रहास ने चाय के साथ कहा ।

'कौई किसी के लिए न जिन्दा रहता है, न मरता है ।'

तुम्हारा खयाल गलत है महोदया, प्राणी केवल ईश्वर के लिए मरता है और जीता है ।' चन्द्रहास ने 'रोमांस' के वातावरण में धार्मिक बेलाई बोलते हुए कहा । फिर कुछ हँसा और गम्भीर हो बोला—'महोदया, मुसलमान धर्म इस ओर बढ़ा दृढ़ है । वह सम्पूर्ण निराशावादी होते हुए, भौतिक शक्तियों पर अविश्वास करते हुए, केवल ईश्वर की अनुदम्पा पर अपने को निर्भर करता है । इसलिए उनमें इतनी दृढ़ता होती है । उनके अनुसार परहेजगार इन्सान की जिन्दगी का एकमात्र मकसूद् जाने इलाही है और दुनियादार इन्सान प्रायः गैर अह्ला को अपनी जिन्दगी का मकसूद् बना लेते हैं—कितनी ऊँची 'ट्रेनिङ्ग' है महोदया ?'

‘यह तो आपने फिर अपने ही कथन का खण्डन किया और कमजोरी को स्वीकार ।’

‘मेा तो है ही ।’

लड़की खिलखिला पड़ी । मानो लाल बिखर गये ।

चन्द्रहास अब मतलब की बात पर आया—‘महोदया, यह मालूम न हुआ कि तुम कौन हो ?’

‘मैं खुद नहीं जानती ।’

‘जरा स्मृति पर जोर दो शायद याद आ जाय ।’

‘हमको भी तो मालूम हो, आप कौन हैं ?’

‘मैं तो उमाकान्त का छोटा भाई हूँ जिनकी शादी में से तुमको उड़ा...’

‘अच्छा तो आप चन्द्र...हास !’ लड़की की आँखें आश्चर्य से चौड़ी हो गईं ।

‘जी, आपकी सेवा में—क्या आप भी जानती हैं ?’

‘जी, केवल नाम से । देखा आज तक नहीं ।’

‘तो इसका यह अर्थ हुआ कि हम शैतान हैं—नाम से मौजूद, दृष्टि से विलीन ।’

‘काम तो आपने ऐसा ही किया है । अब यह बताइए, मेरा क्या होगा ?’

‘वास्तव में बड़ी भूल हुई मुझसे । तुम्हारे माता-पिता क्या कहेंगे ? समाज क्या कहेगा ? उफ़, लोगों का हृदय इतना दूषित हो चुका है और उनकी मानवता इतनी नष्ट हो चुकी है और उनका इतना नैतिक पतन हो गया है कि एक जगह पुरुष और स्त्री को एकत्र कितनी संदिग्ध दृष्टि से देखते हैं—किन्तु तुम विश्वास करो यदि किसी ने तुम्हारे नाम अथवा

चरित्र पर किसी भी प्रकार का आरोप लगाने की चेष्टा की तो सारा अपराध अपने सिर पर ले लेंगा और पवित्र 'गीता' के हाथ में लेकर तुम्हारी पवित्रता का विश्वास लोगों को दिलाऊँगा ।'

‘आप बहुत अच्छे आदमी हैं ।’

‘क्या अब भी तुम अपना परिचय देना पसन्द नहीं करोगी ?’

‘मेरा नाम नयनतारा है—टुबैको इन्स्पेक्टर की लडकी ।’

‘कौन—नयनतारा !’ चन्द्रहास आवाक् रह गया । फिर कुछ संयत होकर बोला—‘वह—वह—जिससे मेरा सम्बन्ध पका होकर टूट गया है, तोड़ डाला गया है ?’

नयनतारा धक् से रह गई ।

‘नयनतारा !’

‘जी !’

‘हमारी तुमसे रिश्तेदारी भी तो होती है कुछ ?’

‘जी !’

‘क्या सम्बन्ध है हमारा तुमसे ?’

‘यह भी मुझे नहीं मालूम ।’

‘नयनतारा, एक प्रश्न करता हूँ, क्या तुम अपनी इस शादी को पसन्द नहीं करती थीं ?’

नयनतारा चुप रही ।

‘परमात्मा के लिए जवाब दो ।’

‘मुझे नहीं मालूम । मैंने कभी इस पर विचार नहीं...’

‘आश्चर्य ! अपने जीवन के सबसे आवश्यक प्रश्न पर तुम कहती हो,

तुमने विचार नहीं किया—यह तो जीवन का सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न है नयनतारा ।’

‘हमको इस प्रकार की शिक्षा नहीं दी जाती ।’

‘कितनी खेदजनक बात है कि जिस चीज़ की बुद्धि और हिन्दुत्व ने आज्ञा दी है—उसी पर ध्यानपूर्वक और गम्भीरता से विचारने से तुम्हें वंचित कर दिया जाता है और अन्त में तुम्हारा हाथ किसी ऐसे हाथ में दे दिया जाता है जिसमें तुम्हारी कोई समानता न हो—?’

‘इसका जबाब बेशुमार हिन्दुओं के घराने दे सकते हैं—मुझसे क्यों पूछते हैं आप ?’

‘सच कहती हो !’

अभी यह बातें चल ही रही थीं कि सामने कीचड़ में पैरों की आहट सुनाई दी । चन्द्रहास ने खट् से रोशनी कर दी । तीन आदमी नज़र आये । नयनतारा डर कर अनायास ही चन्द्रहास के निकट हो गई ।

‘हाय, डर गई ? वह यन्दूक चलाते की शिक्षा बेकार ही गई । डरो नहीं, पथिक दिखाई देने हैं, सवा तीन बज रहे हैं, किसी दूसरे गाँव में जा रहे होंगे ।’

उन लोगों ने जो अकस्मात् रोशनी देखी तो वह भी डर से उछल पड़े । जब वह कार के पास आये तो चन्द्रहास ने कड़क कर पूछा --‘कौन लोग हो ?’

‘हुज़ूर, गाँव जा रहे हैं । आप यहाँ कैसे ठाड़े हैं ?’ उनमें से एक देहाती ने पूछा ।

‘भाई, नाला बड़े ज़ोर से चढ़ा हुआ है । तुम लोग

भी न जाओ । यहीं ठहर जाओ, जब पानी उतर जाय तो चले जाना ।’

‘अरे राम, भूतिया नाला चढ़ रहा होगा । मनो पानी आवत है इसमें बाबू जी । आपने बड़ी कृपा की जो हमों से कह देवा । डूब मरते साब ।’ दूसरा बोला ।

यह लोग घूघियाँ ओढ़े हुए थे ।

‘अच्छा, बैठ जाओ पेड़ के नीचे । जब पानी उतर जायगा तो साथ ही चलेंगे ।’

‘अच्छा साब—आप सो जाओ । हम आपकी भूँ गाड़ी की चौकसी करेंगे ।’

‘अच्छा—अच्छा ।’ चन्द्रहास मुस्कराया ।

जब वह लोग पाम के पेड़ के नीचे बैठ गये तो चन्द्रहास ने नयनतारा से कहा—‘नयन, यह कुदरती चौकीदार अच्छे हाथ लग गये । लो अब तुम निश्चिन्त होकर सो जाओ ।’

‘आप सो जाइए । मुझे तो ज़रा भी नींद नहीं आ रही है, वैसा काफ़ी सो चुकी हूँ ।’

‘अरे भाई, बीड़ी-बीड़ी पीओगे क्या ?’ चन्द्रहास ने गाँव वालों को आवाज़ देकर कहा । जब उनमें से एक आया तो उसके तीन सिगरेट देकर बोला—‘भाओ, ठाट से दम लगाओ ।’

‘आपकी सिगरेटों के सम्बन्ध में हमारे यहाँ प्रायः किस्से हुआ करते थे ।’ नयनतारा ने मुस्कराकर कहा । रोशनी हो गई थी इसलिए उसने फिर दुपट्टा आगे घसीट लिया था ।

‘कैसे किस्से ?’

‘यही कि आप बला के पाने वाले हैं ।’

‘अब तो यह तुमने भी देख लिया होगा कि कितना पीता हूँ, अब तक केवल छः सिगरेट पिये हैं ।’ चन्द्रहास ने इस ढङ्ग से कहा मानो नयनतारा इतने कम सिगरेट पीने से खुश होकर अभी उससे व्याहरचा लेगी ।’

‘अच्छा, अब रोशनी बुझाकर पिल्लनी सीट पर सो जाइए ।’ नयनतारा ने दृढ स्वर में कहा ।

‘यही क्यों न कुछ देर ऊँघ लूँ?’ चन्द्रहास ने मचबते हुए कहा । इसके बाद एंजिन को चारबी से बन्द किया, चारबी जेब में रखी और ‘स्वियरिंग हिल’ पर दोनों हाथों के बीच चेहरा छिपाकर सो गया ।

सुबह के आमार स्पष्ट होने लगे थे । रात की भीगी हुई म्याही नितिन के किनारों पर हल्की होने लगी थी । बादल रात भर की कुसमुसाहट के बाद अब थक चले थे और मेंह अब इस तरह गिर रहा था मानो निचाड़ी हुई साड़ी में से पानी की अन्तिम बूँदें निकल रही हों । अन्धकार और हल्की-हल्की लाली के ममिश्रण से विचित्र धूधलका-सा पैदा हो गया था जिसमें चन्द्रहास का कसा हुआ बदन साफ दिखाई देने लगा था ।

नयनतारा ने उसके मजबूत हाथों को देखा, सुन्दर पीठ पर दृष्टि डाली और आकर्षक सिर जो नींद में एक ओर झुक गया था, अपने बहुत निकट पाया । बालों की उच्छृङ्खल लटें—कुछ कोट की आस्तीन पर पड़ी हुई थीं और कुछ पहिये पर । साफ-सुथरे प्राणी के शरीर की भीनी-भीनी गुश्बू तम्बाकू की हल्की-सी लपट के साथ नयनतारा के नाक में आ रही थी जिससे उसे ऐसा अनुभव हो रहा था जैसा वह सिनेमा में बैठी है ।

चन्द्रहास एक बार नींद में झौंका खाकर नयनतारा के घुटने पर गिरा जिसमें उसके घुटने में लगी और चन्द्रहास के माथे पर किन्तु किसी ओर से न तो अक्रसोस की आवाज़ आई और न दर्द की सिमकी की ।....

सुबह हो चुकी थी और पानी भी नाले का कम हो गया था । गाँव वालों ने आकर चन्द्रहास को जगाया । चन्द्रहास ने खखार से गला साफ़ किया । रुमाल चेहरे पर मला, नयनतारा को 'ऊपा' का नमस्कार किया, सिगरेट सुलगाई और मोटर स्टार्ट कर दी....सफ़र—आगे का सफ़र—जिन्दगी भी तो एक सफ़र ही है—जिसका पड़ाव कहाँ और मंजिल कौन ?

६

शेखर सरोज को गिबकी में देख लेने के पश्चात् रात भर न सो सका । ..

उसके मन की शान्ति एक दम उड़ गई । उसका मस्तिष्क विकल था और वह अपनी बेचैनी से बेचैन हो रहा था । घोर मानसिक संघर्ष के बीच वह पिम रहा था । सरोज के खो जाने की उस विचित्र पहेली का 'अवसर' ने बहुत बड़ी सीमा तक अब सुलझा दिया था किन्तु विचारों की एक विचित्र सरिता ने प्रवाहित होकर उसके मन के चैन और आँखों की नींद को छिल्ल-भिल्ल कर डाला था ।....

निर्मल शिशु की शीतल ज्योत्सना में तारे ग्लान पड़ गये थे और समस्त नीलाकाश एक स्निग्ध सी चाँदनी से व्याप्त हो उठा था—शेखर

की आँखें हँसते ही टँकी हुई थीं किन्तु उसका स्वरूप चेतन और अधीर मन विचारों की लड़ियाँ गुँथ रहे थे—तो सरोज अनूप के यहाँ छिपी हुई है किन्तु प्रश्न यह है कि वह वहाँ बन्दी है अथवा स्वेच्छा से जा छिपी है जिसका ज्ञान अनूप को भी न हो ? किन्तु वह वहाँ जाकर छिपी क्यों ? इसमें क्या भेद है ? निःसंदेह, वह मकान ऐसा है कि उसमें यदि हजार आदमी भी जा छिपें तो किसी को कानों कान खबर न हो । यदि सरोज वहाँ कैद नहीं है तो किस चीज़ ने उसे वहाँ जाकर छिपने पर विवश किया है ? उसे यदि अपने वास्तविक माता-पिता का पता ही मालूम करना था तो कहीं और क्यों न निकल खड़ी हुई ? वहाँ क्या मिल जायगा उसके ? फिर एक प्रश्न यह है कि लच्छीराम को इस कम्बे में आये हुए पन्द्रह साल हुए हैं, उस समय सरोज की उम्र दो-तीन साल की होगी—तो इससे पूर्व यह लोग कहाँ थे ? अवश्य इन बातों का ज्ञान 'बाबा' के होगा, किन्तु दुःख है कि उन पर इस चालाक तथा राक्षस अनूप का ऐसा आतंक छाया हुआ है कि उनसे कुछ अच्छी मालूमात करना सम्भव नहीं । और हाँ, यह विचित्र बात है कि मैंने एक रात ग्यारह बजे के करीब अनूपसिंह को लच्छीराम के मकान में से निकलते हुए देखा था । तो आखिर वह वहाँ क्या करने गये थे ? लच्छीराम जैसे एक साधारण परिस्थिति के आदमी के यहाँ ज़मींदार और मजिस्ट्रेट अनूपसिंह यों चोरी-छिपे जायँ ? यह सब क्या ? क्यों ?

अब तो इन रहस्य के पदों को चार-चौर डालना मेरा कर्तव्य हो गया है । अब तो मैं सरोज के हितार्थ कड़ी-कड़ी से टक्कर लूँगा—उत्तम सरोज, तेरे रूप की जिस नन्ही-सी झलक को मैंने फ़ोटो में देखा, उसका पूर्ण विकास तूने मुझे आज रात को दिखाकर पागल बना दिया है...

और आँखों में ही रात डूब गई । मधुर-मधुर रङ्गीन कल्पनाओं में

ही भोर हो गया—तो रात को जागरण के चिह्न तो उसके मुख पर स्पष्ट थे किन्तु थकान का कहीं आभास नहीं मिलता था । ग्यारह बजे तक उसने खाना खाया—फिर जो सोया तो चार बजे की खबर लाया । उठा तो उसकी तबियत बहुत प्रसन्न थी । मस्तिष्क हाज़िर था और प्राणों में एक तत्परता—सी थी । झट-झट कपड़े पहने और 'बाबा' के यहाँ उपस्थित हुआ । प्रणाम किया और—

बाबा ने कहा—'कौन हो तुम—वही, जो उस दिन आये थे ?'

'जी हाँ, बाबा ।'

'जाओ यहाँ से—जाओ बाबा । क्यों मेरी जान के लागू हुए हो ?'

'बाबा, यदि सरोज मिल जाय तो क्या आपको भा खुशी होगी ?'

'कैसी ? कुछ —किन्तु उसका पता मिलना कठिन है ।'

'क्या आप जानते हैं कि वह किसकी बेटी है ?'

'मुझे मालूम नहीं ।'

'देखिए बाबा, आठ मूठ बोल रहे हैं । आपको ज़रूर उसके माता-पिता का नाम मालूम होगा ।'

'कह तो दिया मिस्टर, मैं कुछ नहीं जानता । तुम क्यों मुझे परेशान करने आ जाते हो ?'

'खैर आप न बताइए । मैं ही, यदि ईश्वर ने चाहा तो थोड़े से दिनों में सब खोज निकाल लूँगा ।'

'बेटा, तुम किस झगड़े में पड़े हो, अपने घर की राह लो । बुड़्डे

की नभीहत याद रखो—जिस राह पर तुम जा रहे हो, वह बड़ी खतरनाक है, इसमें तुम्हारी जान का खतरा है ।’

‘जान ? मेरी जान यदि दूसरों के काम आ जाय तो मैं सच वाक्य, यही समझूँगा कि भगवान् के दिए हुए इस हाड़-मांस के चेतन शरीर को भर पाया ।’

बाबा चुप हो गया ।

‘अच्छा तो आप कुछ नहीं बतायेगे ?’

‘कुछ जानता हूँ तो बताऊँ । क्या बताऊँ ?’

‘आपको मर कर ईश्वर को मुँह दिखाना है । याद रखिए, आप एक ‘मन्य’ को छिपाकर बहुत बड़ा पाप कर रहे हैं । अच्छा मैं जाता हूँ— ईश्वर आपका भला करे ।’ और शेखर चल दिया ।

बाबा सुन्न बैठ रहा था—मानो अब तक जा वह भीतर ही भीतर अपने से लड़ रहा था, वह लड़ाई अब बन्द हो गई थी ।...

ॐ

ॐ

ॐ

वापसी में शेखर कूप की ओर से निकला तो ज़रा ठिठका, सोचा कि चलो लड़कियों को ‘मानवता’ की थोड़ी-सी शिक्षा और दे आऊँ । आगे बढ़ा और भीतर प्रवेश किया ।

‘अहा, मिस्टर शेखर नमस्ते । आइए-आइए ।’ शीला ने लँवाते हुए उसकी ओर आते हुए कहा ।

‘खेरियत ? यह लँघा कैसे रही हैं ?’

‘ज़रा पैर में चोट आ गई है । बैठिए न, खेलेंगे आप ?’

‘नहीं, इस समय मुझे बहुत से काम हैं ।’ फिर बोला—‘ओहो आज तो हरबन्स और मिस शोभा बहुत बढ़-बढ़ कर हाथ चला रही हैं ।’

इनकी जो फिर शेखर पर नज़र पड़ी तो कोर्ट में से ही बगले से ‘नमस्ते’ किया और फिर खेल में व्यस्त हो गई ।

‘अच्छा, कुछ देर तो बैठिए । कहिए, आपकी सरोज का कुछ पता चला ?’

‘मेरी किम तरह ?’

‘जब तक किसी को किसी से लगन न हो उस समय तक वह उसकी धुन में दीवाना नहीं बन सकता है ।’

‘तुम कैसे जानती हो कि मुझ पर उसकी धुन सवार है ?’

‘आपकी सूरत में स्पष्ट है, और फिर आपकी लम्बी अनुपस्थिति इसका सबूत है । हमारा तो यह अनुभव है कि जो आदमी यहाँ एक बार झूठ-मूठ आ गया तो वह फिर बार-बार आने के लिए सौ बहाने ढूँढ़ने पर विवश हो जाता है ।’

‘अर्थात्—?’

‘अर्थात् यह कि मिस्टर राजीव जो फॉरेन्स आक्रिसर साहब के सुपुत्र हैं यहाँ से दूर रहने के उपरान्त भी हफ्ते में एक बार तो आ ही टपकते हैं ।’

‘और तुम लोग उनके आने पर उन्हें प्रोत्साहित करती हो, उनका मुस्कराकर स्वागत करती हो । उनके जैसे कई मन चले युवकों का खामखाँ अपना प्रदर्शन करके उनकी ‘श्रद्धा’ पाने की कोशिश करती हो—
‘भयान परमन्’ नितलियों की भाँति... क्यों न ?’

‘पर क्या कारण कि रोके ? मज़ेदार आदमी हैं—दिलचस्प ।’

‘दिलचस्प—हूँ ।’ शेखर शृणित हँसी हँसा, बोला—‘शीला, अपनी जिन्दगी को ‘कहानी’ बनाने की कोशिश न करो—नुकसान उठाओगी ।’

‘ओह, यह बुजुर्गों के से आदेश - वाक्य ? आपके मुँह से कुछ अच्छे मालूम नहीं होते ।’

‘मेरी उपस्थिति में शायद न मालूम हों किन्तु जब इन पर विचार करोगी या कटु अनुभवों से दो-चार होओगी तो इनका मूल्य तुम्हें मालूम होगा ।’

‘शेखर साहब, आपके जीवन का आखिर ध्येय क्या है ?’

‘गोई हुई लड़कियों की तलाश और राहच्युत लड़कियों को राह पर लाना ।’

‘तो कदाचित आप सरोज को भी राह दिखा रहे हैं ?’

‘प्रभी तो तलाश और यदि उसको भी मैंने तुम जैसा पाया तो फिर ‘गाइड’ भी मुझे बनना पड़ेगा ।’

‘क्या आप मुझे विश्वास दिला सकते हैं कि आप सरोज की ओर आकर्षित नहीं ?’

‘बड़ा निरर्थक-सा प्रश्न है तुम्हारा । केवल बकवास ही कहूँगा मैं इसे । यदि कल सन्देहवश हरबन्स या आशा या शोभा मुझसे पूछने लगे कि क्या आप शीला की ओर आकर्षित हैं, तो बताओ मेरा क्या जवाब हो सकता है ?’

‘यदि वास्तव में आप आकर्षित हैं तो आपका स्वीकार कर लेना चाहिए और यदि नहीं तो ‘न’ में जवाब ।’

‘यानी स्वीकार करके बदनाम कर दूँ और ‘न’ करके अपमान ?’

‘उफ़, आप कितने गहरे हैं ? बड़े मज़े से मेरे सवाल को बेकार कर दिया ।’

‘अच्छा भाई, अब चल दिये ।’

‘बैठिए, ऐसी क्या जल्दी है ?’

‘सरोज को डेंटना है ।’

कल मिस्टर राजीव आयेंगे, आप भी आइए । परिचय करायेंगे आपका ।’

‘मुझे ऐसे मामूली लोगों से मिलने का अवकाश कहाँ ?’ शेखर ने शीला की चुटकी वापस करने हुए कहा ।

‘मामूली आदमी ? अजी साहब, फॉरेस्ट ऑफिसर का बेटा है— फॉरेस्ट ऑफिसर का जिसे छेड़ हजार मिलते हैं ।’

‘तब तो वह बहुत ही मामूली आदमी होगा । अवसम्पत्ति, तुम्हारी दृष्टि में यद है बड़प्पन का माप-दण्ड ?’

‘और क्या आम्मान पर पहुँच कर होता है आदमी बड़ा ?’

‘बेशक । बड़प्पन यही है कि आदमी शिक्षा में, व्यवहार में और मानवता में बड़ा हो । इसलिए तो कहता हूँ शीला कि तुम अभी बहुत कच्ची हो ।’

‘तो हमें पक्का कर दीजिए न ?’

‘तुम्हें बड़ी तेज़ आँच की ज़रूरत है ।’ शेखर ने इस लड़की शीला को करुण दृष्टि से देखते हुए कहा । अक्रसोस, नई शिक्षा और घर की स्वतन्त्र और उच्छृङ्खल ‘ट्रेनिङ्ग’ के वातावरण ने उसमें सभ्यता, शिष्टता और सच्चरित्रता का सही माहौल पैदा ही न होने दिया था । यही कारण था कि उसे प्रत्येक बहुरूपियानुमा आदमी ‘हीरो’ नज़र आने लगता था ।...

‘शेखर साहब, आपके विचार तो बहुत ही विचित्र हैं। आपकी युक्तियाँ परिमार्जित और भाषा प्राच्य के समुत्त मेरी रङ्गीन भावनाएँ आकर थम जाती हैं। मेरी प्रकृति के प्रतिकूल आपको पाकर भी जी यही चाहता है कि आपकी दार्शनिकता से भरी बातें सुनती जाऊँ...।’

शेखर को खुशी थी कि गीला शुद्ध हिन्दी की शरण लेने का सफल प्रयास कर रही थी। फिर भी दृढ़ स्वर में बोला मानो कोई बड़ा-बूढ़ा किमी नटखट बालक को संकेत से डाँट रहा हो—‘बस-बस शीला, भावना भावना है। उनकी रङ्गीनी को ज्यादा मित्र न बनाओ। तुम्हारा नन्हा-सा कोमल दिल यदि किमी रङ्गीन और सुखद विचार में लज्जन अनुभव करता है तो यह विश्वास न कर लो कि वह कल्पना, वह विचार निरपराध, मासूम और सुखदायक ही है। जीवन उस खट्टी डकार की भाँति है जो लज्जत को पेट में बदहजमी की सीमा तक भर देने के पश्चात् मतला पैदा कर देती है।’

‘आफ़ो, डाक्टर साहब, सरोज जब आपकी इन अंग्रेजी बातों को सुनेगी तो उम्मीद यदि जीवन की ज़रा भी रङ्गीन भावनाओं और दुष्कामनाओं से सराबोर होने की अभिलाषा हुई तो वह आपको बढ़ा भाई समझने पर विवश हो जायगी।’

‘काश, तुम भी मुझे ऐसा ही समझो और मेरे इन ‘गीता के श्लोकों’ पर विश्वास और श्रद्धा ले आओ।’ शेखर ने हँसते हुए कहा।

‘जी—धर्मावतार—मैं तो आपको अभी कुछ भी नहीं समझती हूँ। हाँ, इतना अनुमान अवश्य लगा पाई हूँ कि तुम्हारे अन्दर भी ‘हिन्दु’ बनने की खूबियाँ हैं।’

‘तुमने अच्छा किया कि ‘आप’ को ‘तुम’ से बदल दिया और केवल बेतकदलुकी गाँठने के लिए मुझे ‘हिन्दु’ बना दिया। तो सुनो, मैं ईश्वर की ‘शान’ को देखकर प्राणियों की कमजोरियों का अनुमान लगाता हूँ जिसमें मेरे भी अनेक कुकर्म सम्मिलित हैं और उसी मेरे पथ-च्युत होने ने तो मुझे सावधान कर दिया है कि भविष्य में सज़ा के कई कोड़ों से बचने के लिए स्वयं भी सँभला हुआ रहता हूँ और जहाँ तक धन पड़ता है, औरों को भी जो ठोकर खाने वाले होते हैं, उस ओर से सचेत करता रहता हूँ। क्या अब भी तुम मेरी स्वयं की पाली हुई नेकी करने की पसन्द या चुनाव से अपनी ‘यारी उमङ्गों’ को टकराना पसन्द करोगी ?’

‘राम, कितना सुन्दर और ठोस भाषण है। मेरी समझ में खाक भी नहीं आया। मिस्टर राजीव भी यदि तुम्हारे इस छोटो-से किन्तु फँजे हुए ‘लेक्चर’ को सुनते तो आश्चर्य से तुम्हारा मुँह तकने लगते। क्या आप लड़कियों की सोसायटी में इस प्रकार की बातें करने के अभ्यस्त हैं ?’

‘लड़कियों की सोसायटी मुझे बहुत कम मिली है, यही कारण कि मैं उनका सोसायटी में बैठने योग्य साबित नहीं होता। शायद दुर्भाग्य से ऐसी बहुत कम लड़कियाँ होंगी जो मेरी गौरव बातों और अनश्वर सोसायटी में आनन्द प्राप्त कर सकें।’

‘मुझे डर है कि आप सरोज को जीत लेने के लिए प्रत्येक दृष्टिकोण से योग्य सिद्ध होंगे और वह लाख प्रयत्न करने पर भी आपसे टूटकर न निकल सकेगी—यद्यपि मैं उससे परिचित नहीं हूँ फिर भी मुझे विश्वास दिलाया गया है कि कम अथवा ज्यादा—वह भी आपके विचारों की एक भिन्नकृती हुई अनुयायी है।’

‘मैंने देखा है कि तुम्हारे हर दूसरे-तीसरे क्रिकेट के बाद सरोज या

मिस्टर राजीव का नाम जरूर आ जाता है । ईश्वर जाने तुम इन दोनों 'गायत्री के मंत्रों' से मेरे अन्दर कौन-सा डर फूट देना चाहती हो, कौन सी चीज़ मुझमें भर देना चाहती हो और मुझसे क्या पाने की इच्छुक हो ?' शेखर ने मुस्कराकर कहा ।

शेखर ने अनुमान लगाया कि यह शीला नाम की लड़की समझदार और प्रखर बुद्धि की है, शिक्षा भी अच्छी मालूम होती है—केवल एक अच्छे पथ-प्रदर्शक की मोहताज है । 'काश, प्रत्येक युवक प्रत्येक युवती को देखते ही 'इशक' करने के लिए टूट पड़ने की जमह उसके चरित्र को सँवारने की चेष्टा करना अपना कर्तव्य और उद्देश्य बना ले ।

शेखर ने मुस्कराकर कहा—'शीला, बातचीत करने के लिए तुम बहुत अच्छी और उपयुक्त लड़की हो ।'

'किस प्रकार की बातचीत ? शुष्क अथवा रङ्गीन ?'

'रङ्गीन का तो मुझे अनुभव नहीं हुआ और न कदाचित् होगा किन्तु हाँ, इस प्रकार की बातचीत जैसी हम अभी कर रहे थे और जिसको तुम अपने संदेह के कारण शुष्क कर रही हो, तुम्हारे साथ बड़ा आनन्द देती है ।'

'यदि तुम मेरी राय भी मालूम करना चाहते हो तो मुझे भी मज़ा तुम ही से दिमाग खाली करने में आता है लेकिन मैं तुमसे कहे देती हूँ कि अगली मुलाकात में मेरे सामने 'दर्शन-शास्त्र' न हो, कोई 'कविता' हो ।'

'आगे की मुलाकातों की उम्मीद न बाँधो । मैं बहुत ब्बस्त हूँ, इसके अतिरिक्त राजीव का हक भी छीनना नहीं चाहता ।' शेखर ने मुस्कराकर व्यङ्ग्य किया ।

शीला के गालों पर हल्की-सी लाली दौड़ गई । मुख आरक्त और पलके अवनत—फिर सँभल कर बोली—‘आपको अधिकारों के विभाजन की अनुमति किसने दी है ?’

‘फिर तुमने ‘आप’ कहा ?’ अच्छा, भई शीला, अब हम चल दिये । किन्तु हमारी इस नसीहत को न भूलना कि जिधर तुम देखें, इस विचार से देखो मानो दुनिया विचारों के जाल की एक लम्बी परिधि हैं और तुम उस परिधि की सुमहरी कढ़ी हो, बाकी कड़ियाँ जड़ खाई हुई ।’

—

‘बहुत-बहुत धन्यवाद—अभी न जाओ ।’ शीला ने उसकी आम्तिन पकड़ने हुए कहा ।

‘तुमने श्रीगणेश ही गन्त किया अर्थात् मेरे आदेशों के प्रतिकूल प्रदर्शन करने लगीं !’

‘गुरु जी, भूल हुई ।’

‘तो तुम मान गईं मुझे गुरु ?’

‘और उपाय ही क्या था ?’

‘अच्छा, लो अब जाने दो ।’

‘अच्छा, अब फिर कब आओगे ?’

‘गुरु मे ऐसा नटखट सवाल ?’

‘सारी गुरुता मेरी नन्ही सी जान पर ही न खत्म करो । वायदा करना पड़ेगा ।’

‘शीला, बादों के चक्कर में न पड़ो । इन सब प्रकार की उलझनों से शून्य होकर जीवन व्यतीत करो ।’

‘शीला, यह अभी जाने न पायें । बस, हमारा यह ‘सैट’

‘अत्म ही हुआ चाहता है ।’ हरबन्स ने कोट में से ही बिल्ला चर कहा ।

‘नहीं, अब इनको जाना चाहिए । अच्छा, नमस्ते ।’ शीला बोली और फिर मुक गया ।

न जाने तब शेखर को कैसा लगा । एक बार उसने दृष्टि उठाकर शीला की ओर देखा और फिर चल दिया । शेखर...शीला...शीला-सरोज...! हूँ, सरोज...! और शेखर चला जा रहा था ।



शाम हो चुकी थी और चारों ओर रात का अंधेरा फैलने लगा था । शेखर ने अनुपमिह की हवेली का खूब किया । वहाँ जाकर प्रहरियों से मालूम हुआ कि वह अभी-अभी कहीं बाहर गये हैं और अभी आ जायेंगे । शेखर राह देखने लगा । फिर पाँच-एक मिनट पश्चात् अन्दर एक कमरे में जाकर बैठ गया ।

थोड़ी देर बाद नौकरानी जब पानी लाई तो उसने उससे पूछा—
‘क्या तुम भी यहीं रहती हो ?’

‘जी हाँ ! हमी खानदान की रोटियों से पली हूँ । यहीं जवान हुई और यहीं बूढ़ा हुई । भगवान् से प्रार्थना है कि अब यहाँ से मेरी अर्थी भी निकले...।’

‘ओह... कितने आदमी होंगे इस मकान में ?’

‘बहुत कम । एक मालिक हैं, तीन नौकर और एक मैं ।’

‘और कोई नहीं रहता है यहाँ ?’

शेखर के इस प्रश्न पर नौकरानी ने उसे अर्थभरी दृष्टि से देखा । ‘न’ में सिर हिला दिया और चली गई ।

कुछ देर बाद फाटक खुलने की आवाज़ आई और अनूपसिंह ने 'हॉल' में प्रवेश किया और शेखर का देखते ही बोले—'ओहो, मिस्टर शेखर ! भई बड़ी खुशी हुई आपको देखकर । आपसे मिलने को बड़ा जी चाह रहा था ।' यह कह कर उन्होंने शेखर को बड़े ध्यान से देखा ।

शेखर को लगा जैसे अनूपसिंह की तीव्र दृष्टि उसकी आत्मा की गहराइयों में उतर कर उसका रहस्य खसोट रही है । उसका मुकाबला बड़े सख्त आदमी से था ।

'मैं बड़ा शर्मिन्दा हूँ कि आपको पूर्व से सूचना दिये बिना यहाँ आ धमका ।'

'नहीं-नहीं साहब, आपने भली फ़िक्र की । मैं तो खुद आपसे मिलने का इच्छुक था । आइए दूसरे कमरे में । बज़रङ्गा, रोशनी कर दो और आध घण्टे बाद मेज़ पर खाना ले आओ । यह साहब भी हमारे साथ यहीं खाना खायेंगे ।'

'आप व्यर्थ ही क्यों कष्ट कर रहे हैं ? मैं....'

किन्तु अनूपसिंह ने उसकी एक न चलने दी । प्यार से हाथ पकड़ कर दूसरे कमरे में ले गये ।

'सिगरेट से शौक क्रममाते हैं आप ? मैं तो हुक्का या सीगार पीता हूँ । हाँ, मेहमानों के लिए थोड़े से सिगरेट सदैव रखता हूँ ।' यह कह कर उन्होंने आलमारी में से सिगरेट का टिन निकालकर शेखर के सामने रख दिया ।

'धन्यवाद ! शेखर ने एक सिगरेट निकालते हुए कहा ।

अनूपसिंह के बातचीत के ढङ्ग, आवभगत के तौर-तरीके तथा सुन्दर

बुद्धि के परिचय को पाकर शेखर कुछ क्षण के लिए प्रभावित-सा हो गया किन्तु शीघ्र ही उसने अपने को संभाल लिया ।

‘संयोग की बात है कि मैं इस कम्बे में विशुद्ध मनोरञ्जन के लिए आता हूँ किन्तु परिस्थितियाँ मेरे उद्देश्य को कुछ से कुछ बना देती हैं और मुझ जैसा एक एकान्त-प्रिय तथा मस्त प्राणी एक अपरिचित तथा असम्बन्धित लड़की की खोज में इतना आत्म-विस्मृत हो जाता है कि अपनी सारी जीवन-मज़ी और प्रिय मनोरञ्जन की सामग्रियों को खर्च कर देने में एक आनन्द-सा अनुभव करने लगता है ।’ शेखर ने प्रसङ्ग छेड़ते हुए कहा ।

‘मैं खुद इस पर हैरान हूँ कि, जैसा आपने अभी मुझे बताया, एक एकान्त-प्रिय और ऐसी उलझनों के प्रति उदासीन आदमी आखिर क्यों एक अपरिचित और असम्बन्धित लड़की की तलाश में एक आचारा की तरह यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहाँ मारा-मारा भटकता फिरता है ?’

‘बात वास्तव में यह है...’ शेखर ने तर्क पेश करते हुए कहा—‘कि गुप्त रहस्य के पर्दों को देखकर प्राणी में चटख पैदा हो ही जाती है । उसके सम्मुख अच्छी से अच्छी चीज़ को आप उसके सम्मुख एक विचित्र रहस्य की शक्त में रख देंगे तो स्वभावतः वह उस ढँके हुए रहस्य की तह तक पहुँचकर उसको मालूम करने अथवा जानने की कोशिश करेगा । यह मानव स्वभाव है और यही उसकी जिज्ञासा ।’

अनूपसिंह शेखर की बुद्धि का कायल होते हुए, असंयत से स्वर में बोला—‘यह सत्य है । यदि ईश्वर अप्रकट न होता तो धर्म और संसर्ग, पाप और पुण्य; आदर्श और संस्कृति का नाम-निशान ही न होता । किन्तु मेरा विचार है कि बेकार नवयुवकों को अपनी बुद्धि का व्यर्थ-अपव्यय किसी सुन्दर कार्य में करना चाहिए ।’

‘बेकारी तो केवल एक मोटा-सा शब्द है, एक बनावटी शब्द जिसके अर्थ और आकार से मैं नहीं डरता क्योंकि मैं जानता हूँ कि इन्सान अपने शरीर अथवा अपनी बुद्धि को किसी भी कार्य में लगा दे—परेशानी व बेकारी नाम की चीज़ का अपने आप खात्मा हो जाता है ।’

‘उस लड़की का गायब हो जाना है वास्तव में एक विचित्र रहस्य ।’ अनूपमिह ने प्रसन्न बदलते हुए, अब सरोज के बारे में अधिक विस्तार पूर्वक बातें करनी चाहीं ।

‘जी, ऐसा रहस्य जिसने आपको और हम सबको परेशानी में डाल रखा है ।’ शेखर मुस्कराया ।

अनूपमिह के हाँठों पर अब तक जो मुस्कराहट थी, शेखर की आकस्मिक मुस्कराहट को देख ठिठक-सी गई । पर उमने उसे अधिक महत्व न देकर कहा—‘मैंने जिन जासूस का जिक्र किया था न, वह आ गया है और बड़ी सुन्दर खोज है उसकी—बड़ी भ्रमरगर्मी से काम चर रहा है ।’

‘क्या विचार है उसका ?’

‘अब तक तो उसकी छोटी सी राय यह है कि वह लड़की शायद किसी दुष्टभावश नदी में गिर पड़ी है लेकिन मैं उसके नहीं मानता ।’

‘आपका अन्दाज़ा क्या कहता है ?’

‘बिल्कुल गुम है । समझ काम नहीं करती ।’

शेखर अनूपमिह की दुष्टता और चालाकी पर हैरान था, आखिर उसने एक सवाल किया—‘मेरा विचार है कि आप इस वास्तविकता से तो अनभिज्ञ न होंगे कि सरोज लच्छीराम की लड़की नहीं है ?’ शेखर ने

देखा कि इस प्रश्न पर अनूपसिंह चौंक उठे किन्तु उन्होंने तुरन्त जवाब दिया—‘मैं ठीक तरह नहीं कह सकता । सम्भव है, आपका विचार सही हो ।’

‘मेरा भी एक खयाल ही खयाल है, कारण यह है कि मैं उस नडकी में लच्छीराम तथा उसकी स्त्री में कोई समानता नहीं पाता हूँ ।’

‘पाता मैं भी नहीं हूँ किन्तु हम केवल खयालों पर और सन्देह पर ही तो सही राय कायम नहीं कर सकते हैं और न इन सन्देहों को दिमाग से दूर ही कर सकते हैं ।’

शेखर ने अपने प्रत्येक वार को खाली जाने देखा । उसके कुछ हण श्वात् दोनों खाने के लिए उठ खड़े हुए ।

‘खाना खाकर मैं आपको अपने मकान की सँर कराऊँगा । इस मकान के सम्बन्ध में कहा जाता है कि यह भूत-प्रेत इत्यादि का विवास स्थान है । मैंने भी इसके सुन्सान और खाली पड़े हिस्से में ये विचित्र-विचित्र आवाजें आती हुई सुनी हैं ।’

खाना इत्यादि खा-पीकर अनूपसिंह ने और शेखर ने कुछ तङ्ग और अंधरी कोठरियों और कमरों को देखा । शेखर इस लम्बे मकान को अन्दर से देखकर काँप उठा । थोड़ी देर के बाद वह वहाँ से चल दिया और अनूपसिंह के अनुरोध पर दो-तीन दिन बाद फिर आने का वादा कर गया ।

काफ़ी रात जा चुकी थी । वापसी में वह नदी की सँर करता हुआ गाँव में जाना चाहता था कि राह में धीरेन्द्र से मुठभेड़ हो गई ।

‘कहिप, किधर से आ रहे हैं आप ?’ उसने पूछा ।

‘वही सरोज की तलाश ।’

‘मेरी समझ में नहीं आता कि आप आखिर क्यों उसकी तलाश में मरे जा रहे हैं ?’

‘क्या दोस्त वीरेन्द्र मेरी कोशिशें इन्हीं शब्दों द्वारा विभूषित की जायेंगी ?’ शेखर ने चाल चली ।

‘समा चाहता हूँ, किन्तु प्रेम में हजार शङ्काएँ तथा सन्देह स्वाभाविक ही है ? आप तलाश कीजिए, भगवान् आप को सफलता प्रदान करे और मुझे मेरी सरोज...।’

‘वीरेन्द्र, तुम्हें सरोज वापस मिल जाने पर मुझे भी बड़ी खुशी होगी ।’

‘धन्यवाद ! धन्यवाद !’ वह प्रसन्नचित्त एक ओर मुड़ गया और शेखर दिन भर का थका-माँदा अपनी धर्मशाला में चला आया ।

१०

चन्द्रहास ने जो नाले को पार किया तो तीस-चालीस मील दूर जाकर एक गाँव में दम लिया । दिन के दस बजे होंगे । चारों ओर बादल मँडरा रहे थे और अब भी हल्की-हल्की फुहारें पड़ रही थीं । कभी-कभी बादलों की हल्की-सी चादर में से सूर्य भी वर्षा के कामों का निरीक्षण करने के लिए अपना चेहरा निकाल कर झाँकने लगता था । थोड़ी देर बाद बादल छूट गये और सूर्य अपने पूर्ण तेज सहित निकल आया ।

चन्द्रहास ने गाँव के बाहर, एक टूटे-फूटे मकान के पास कार रोक दी। दोनों ने उतर कर एक तालाब पर मेह हाथ धोये और फिर इस तरह मोटर में आकर बैठ गये मानो किसी होटल में से किसी अत्यन्त स्वादिष्ट खाने की प्रतीक्षा कर रहे हों।

‘क्या खाओगी नयन?’

‘आप अपनी तो कहिए?’

‘अपना तो नाश्ता तैयार है।’

‘कहाँ?’ नयन ने बिस्मित होकर पूछा।

‘तुम भूल गई रात वाली बात?’

‘किसी और को बराइए, अब दिन है। सब ढर मिट गया।’

‘अच्छा तो खा जाऊँ तुमको?’

‘खा जाइए यदि आप खा सकते हैं!’

‘देखो, फिर यह न कहना कि हमें खबर न हुई।’

‘खाये जाने के बाद कौन कहने आयगा?’

‘खा तो जाऊँ तुमको, लेकिन फिर तुम्हारे कर्मी न मिलने का दुःख कैसे सँभाल पाऊँगा?’

‘क्या?’

‘यही कि यदि हमारा-तुम्हारा मामला निश्चित हो गया तो तुम्हें कहाँ पाऊँगा?’

‘अपने पेट में।’

‘यदि तुम इस बात का वादा करो कि एक सख्त खाना बनकर एक युग तक आराम से मेरे पेट में बैठी रहोगी तो खा लेता हूँ।’

‘भूख तो अब हमको भी लग रही है ।’

‘अच्छा, तुम यहाँ बैठी रहो । मैं गाँव में जाता हूँ । ईश्वर करे कुछ मिल जाय । यदि आटा मिल नाय तो ले आऊँ ? तुम रोटी बना लोगी ?’

‘बनाऊँगी किस पर ? तवा कहाँ है ? और सूखी लकड़ियाँ ?’

‘हत्तेरे की ! ज़रा-सी टिकियों के लिए इतनी व्यवस्था ?’

‘जी !’

‘अच्छा, कुछ भुने हुए चनों के बारे में क्या विचार है ?’

‘क्या कहने !’

‘और यदि मँग की ढाल का ढलुवा, मावे की मिठाई, गुलकन्द, आम का अचार और गर्म-गर्म धूरियाँ मिल जायें तो वह भी खेता आऊँ ?’

‘मेरा विचार है, इतनी चीज़ों का क्या काजिएगा ? इतने बड़े शहर में तो इन चीज़ों की क्या कमी हो सकती है...इसलिए आप तो केवल चने ही ले आइए, किन्तु सुनिए तो...आप न जाइए । मुझे अकेले में डर लगेगा ।’

‘क्या तुम यही शब्द उस समय भी मुँह से निकाल सकोगी जब अपने मकान के किसी कोने में अकेली बैठी हुई होगी ?’

‘देखिए, वह गाँव में से एक आदमी आ रहा है । उससे कुछ कहिए न लाने को ।’

कुछ क्षण पश्चात् जब वह गाँव वाला पास आया तो चन्द्रहास ने उसे आवाज़ देकर पास बुलाया । उसने पास आकर चन्द्रहास को देखा, मोटर को देखा और फिर सुन्दर नयनतारा को घूरने लगा ।

‘देखना भाई, जिस लड़की को तुम इतने प्यार से घूर रहे हो न, उसे बड़े ज़ार की भूख लग रही है । क्या तुम उसके लिए गाँव में से कुछ खाने को ला सकते हो ?’

गंवार हँसा, बोला—‘मालिक, यहाँ तो कुछ नहीं ।’

‘तुम्हारे यहाँ आटा और दाल तो होगी ?’

‘जाके देखूँ हूँ...’

‘देखो, बात सुनो । यदि तुम्हारे यहाँ आटा-दाल निकल आया तो जल्दी से पकवा लाओ । एक रुपया दूँगे तुमको । पर हमसे कह जाना कि तुम पकवा रहे हो—अच्छा ?’ चन्द्रहास ने कहा ।

गाँव वाले ने चलते समय एक नज़र फिर नयन पर डाली और इस बात में स्वीकृति सूचक सिर हिलाकर जल्दी से चला गया ।

‘यदि उसके यहाँ कुछ नहीं निकला तो ?’ नयन ने कुछ चिन्तित होकर कहा ।

‘भगवान् रोटी देने वाला है, सबका रक्षक है, किन्तु मुझे एक और मन्त्र दिखाई देता है नयन ।’

‘क्या ?’

‘जब एक गाँव वाला तुमको इस प्रकार उत्सुक नेत्रों से देख सकता है तो शहर वाला तो तुम्हें आँखों से ही मार जायगा ।’

‘तो हमसे मेरा क्या कसूर है ?’

‘मरामर तुम्हारा कसूर है । ऐसी सूरत लेकर क्यों पैदा हुई हो कि हर आदमी तुम्हें खाने को दौड़े ?? खैर मैं इसका उपाय करता हूँ, शर्त यह है कि तुम प्रस्तुत हो ।’

‘कौन उपाय ?’

‘मेरे बिस्तर में सफ़ेद चादर है, उसे ओढ़ लो । एक तो आपका यह -बारीक धानी रङ्ग का बमरसी दुपट्टा और फिर उसी से मिलता-जुलता हुआ आपका रङ्ग व्यर्थ में काटने को दौड़ता है ।’

‘मेरे पास और कोई दूसरा वस्त्र भी तो नहीं है जो बदल सकती ।’

‘और अपनी चूचा का क्या करतीं ?’

‘अच्छा लाइए—चादर निकालिए ।’

चन्द्रहास ने होलडॉल खोला और बर्पाटकर चादर निकाली और ढ़ाले से नयन के कन्धों पर उसे ढाल दी ।

‘अभी क्या ज़रूरत है ?’

‘क्यों, क्या मेरी आँखें नहीं हैं ।’

‘क्या सबकी जैसी ?’

‘सन्देह की कोई बात नहीं—आँखें तो हैं ही ।’

इतने में गाँववाला आ गया और खाना बनाये जाने का शुभ संवाद सुना गया ।

‘नयन, मेरे सामने एक और बड़ा ख़तरा है ।’

‘जैसे...?’

‘यदि तुम्हारे माता-पिता ने पुलिस में रिपोर्ट कर दी हो कि चन्द्रहास नामक एक गुण्डा उनकी बेटी को उड़ा ले गया है तो बड़ी बुरी रहेगी ।’

‘क्या होगा ?’ नयन ने घबराकर पूछा ।

‘मुझे एक लम्बी अवधि के लिए एक बहुत ही विशाल और शानदार इमारत में ले जाया जायगा जहाँ और भी मुझ जैसे नेक काम करने वाले मौजूद होंगे ।’

‘मैं नहीं समझी ।’

‘अच्छा है, न समझो किन्तु दुःख इस बात का होगा कि लम्बे समय तक तुमको न देख सकूँगा और सम्भव है कि फिर तुमसे आँखें मिलाने योग्य भी न रह सकूँगा ।’

‘आपका अभिप्राय जेल से तो नहीं है ? ईश्वर वह समय न दिखाये ।’

‘वह समय तो जरूर आयगा किन्तु तुम चाहोगी तो टख भी जायगा ।’

‘कैसे ?’

‘यदि तुम किसी मजिस्ट्रेट के सामने यह बयान दे दो कि मैंने तुमको उड़ाया नहीं है किन्तु तुम—तुम स्वेच्छा से मेरे साथ हो गई हो और मेरे ही साथ रहोगी तो विश्वास करो मेरा कुछ भी बिगाड़ न हो सकेगा ।’

‘यह मुझसे न हो सकेगा कि निर्लज्जतापूर्वक ऐसा बयान दे दूँ । इंग्रजों अतिरिक्त माँ और पिता जी क्या कहेंगे ?’

‘तुम्हारे दृष्टिकोण से तुम्हारा विचार सही है । मुझे अधिकार भी नहीं है कि अपनी रक्षा के हितार्थ तुम्हें बदनाम होने पर विवश करूँ । मैंने तो केवल तुम्हारे सम्मुख वास्तविकता रखी है ।...’ फिर कुछ रुककर गम्भीर स्वर में बोला—‘ईश्वर न करे, दुनिया तुम पर उँगलियाँ उठाये । मैं जेल की अपमानजनक ज़िन्दगी के बाद कहीं मुँह छिपा लूँगा...। लो, वह हमारा दोस्त खाना ले आया । तुमने ऐसा खाना आज तक न खाया होगा ।’

गाँव वाला एक मैले थैंगोले में लपेट कर खाना ले आया । चन्द्रहास

ने उसके हाथ पर दो रुपये रख दिये । तो वह 'सलाम' करता हुआ चल दिया ।

'राम, किस कदर मोटी रोटियाँ हैं, कैसे हजम होंगी ? यह इस मिट्टी के बर्तन में क्या है—अच्छा, दाल होगी ।' नयन बोली ।

'अच्छा—'हरिहर' करो ।...वाह, कितना मजेदार खाना है ।' चन्द्रहास ने दाल में कौर भिगोते हुए कहा ।

नयन ने भी उसकी 'कॉपी' की । नयन से बड़ी कठिनाई पूर्वक कहीं एक रोटि खाई गई किन्तु उधर चन्द्रहास ढाई टिकड़ चट कर गया ।

चन्द्रहास ने सिगरेट सुलगाई और पिछली सीट पर जा लेटा । नयन ने भी हाथ-पैर सीधे किये । फिर चलने से पूर्व चन्द्रहास ने एंजिन की देखा-भाला की, पेट्रोल डाला और कार चल पड़ी । कार चल रही थी । चन्द्रहास प्रसन्नचित्त था किन्तु न जाने क्यों नयनतारा कुछ उदास सी हो गई थी ।



शेखर अन्नूपसिंह को भेट के पाँचवे-छठे दिन डाकखाने गया । जैसे खत्म हो रहे थे इसलिए खर्च के लिए खाची की सेवा में फिर से अर्जी पेश करनी थी । उसने वही ब्रेटकर दो-तीन पत्र लिखे । पोस्ट मान्डर साहब के पास कुछ काम न था, मजे से बैठे हुए कोई उपन्यास पढ़ रहे थे । शेखर को देखकर बोले—'कहिण बाबू जी, लड़ाई की क्या खबरें हैं ?'

'भाई मेरा नज़र से तो एक युग से कोई अखबार ही नहीं निकला है । मालूम नहीं दुनिया में क्या हो रहा है ।'

‘सुना है कि पाकिस्तान भी लड़ाई में कूट पड़ा है।’

‘अच्छा तो अब तक कौन लड़ रहा था?’

‘अब तक तो हैदराबाद लड़ रहा था।’

‘खूब ! कौन से अखबार की खबर है?’ शेखर मुस्कराया।

‘यह देखिए, इसमें लिखा है।’ यह कहकर उन्होंने एक पुराना-सा अखबार शेखर के सामने कर दिया।

शेखर ने एक समसरी दृष्टि अखबार पर डाली किन्तु... एक शीर्षक पर वह चौंक पड़ा। शीर्षक था—‘एक सम्मानित कुल की लड़की प्रसार :।’ उसके नीचे लिखा हुआ था—‘कम्पा मुर्शीदाबाद में सचन’। मिला है कि किम्पा विवाह के उत्सव में से एक युवक चन्द्रहास (पिता का नाम कुलदीपसिंह) ने दुबेको इन्स्पेक्टर मिस्टर राजितसिंह की युवा लड़की नयनतारा को प्रसार कर दिया (प्रसार कर दिया की एक ही रही) अब तक न तो चन्द्रहास का पता है और न नयनतारा का हा। पुलिस ढूँढ़ने में व्यस्त है और अपराधी की गिरफ्तारी का वारण्ट भी निकल चुका है...।’

‘चन्द्रहास ! चन्द्रहास ! मेरा दोस्त चन्द्रहास !’ शेखर ने आश्चर्य से पढ़ते हुए कहा। उसके नेत्रों के सममुख अँधेरा-सा आ गया। उरु, चन्द्रहास तेरा यह पतन ? नाकाम इन्सान, तूने यह क्या किया ? बाप-दादा की इज्जत को बट्टा लगाया ? अब क्या होगा चन्द्रहास ?—शेखर सिर पकड़कर सोचने लगा।

‘भ्या हुआ बाबू जी ?’ पोस्ट मान्टर ने हैरान होकर पूछा।

‘कुछ नहीं मान्टर साहब। यह अखबार तो आपके क्या काम का होगा ? यदि आज्ञा दे तो ले जाऊँ। इसकी लीजिए इकलौती।’

‘अजी, इसमें क्या जरूरत है। ले जाइए वैसे ही।’ उन्होंने कहा।

शेखर 'धन्यवाद' देकर और अखबार जेब में रखकर अपने घर आ गया। उसने अखबार की तारीख देखी। सारी खबर को दुबारा पढ़ा और दुःख में सिर पकड़ कर बैठ गया।

वह शाम तक परेशान और व्यथित रहा और इसी 'व्यथा' के कारण वह आज कहीं न निकल सका। खाना खाया और किताब लेकर पलङ्ग पर पड़ गया। ग्यारह का समय होने आया था किन्तु आज भी न जाने कहाँ उसकी नौद भाग गई थी। आखिर वह उठ बैठा। दिल में सोचने लगा कि चलो अनूप के मकान का चक्कर ही लगा लूँ। यदि जाग रहे होंगे तो मिल लूँगा नहीं तो फिर उसी बुर्जी का ही चक्कर लगा आऊँगा जिसमें मेरी सरोज छिपी हुई है। किन्तु कहीं ऐसा न हो कि मेरी लगातार मुलाकातों से अनूप को कुछ सन्देह हो जाय। वह कुछ तो सदिग्ध दृष्टि से देखने लग गये हैं अब।

किन्तु उसने निश्चय कर लिया—एक बार अवश्य उस बुर्जी तक वह जायगा, चाहे कुछ भी हो। जब यह रहस्य मेरे ऊपर छाया हुआ है तो मैं उसकी तह में मे सरोज को निकालकर चैन का साँस लेगा। अपनी निरर्थक ज़िन्दगी के मृत्यु में सरोज बहुत मस्ती है—बहुत सन्ती। और यही सोच, शेखर मकान से निकल खड़ा हुआ।

चन्दा मुस्करा रहा था और चाँदनी निमार थी। आज उमरात का-मा अन्धकार न था इसलिए उसके हवेली तक पहुँचने में बड़ा चक्कर काटना पड़ा। घण्टा भर चलने के उपरान्त वह छिपता-छिपता किसी प्रकार उस बरगद के वृक्ष के नीचे जा पहुँचा। चाँद की हल्की-सी चाँदनी में पास की प्रत्येक वस्तु धुंधली नज़र आ रही थी किन्तु उस घन और लम्बे-चौड़े वृक्ष के नीचे वैसा ही अँधेरा था, और आज भी छिमगादहें शोर मचा रही थीं और शेखर के सिर पर सं हवा की भाँति निकल जाती थीं किन्तु आज उल्लू की हूक सुनाई नहीं दे रही थी किन्तु उसके स्थान पर

दूर—तालाब के किनारे पर मारस की कर्णप्रिय आवाज़ आ रही थी ।...

बारह बजे होंगे । शेखर धैर्यपूर्वक बरगद के सुदृढ तने से लगा हुआ खड़ा था ।...यह क्या हुआ ? वह चमक पड़ा । क्या उसने बुर्ज़ों की खिड़की के मोखों में से रोशनी निकलती हुई देखी थी ?...नहीं-नहीं यह भ्रम है—भ्रम । उसने विश्वास नहीं किया ।

एक सेकेंड के पश्चात् ही सहसा नीचे की एक खिड़की खुली—विलकुल उसके सामने दाली, उसकी सीध में ! खटका हुआ और एक प्रकाश-रेखा तमतमाती हुई बाहर बिखर गई । शेखर धक् से रह गया । वह बहुत आद्विस्ता अपने स्थान में हटा और आगे बढ़कर उसने चुपचाप खिड़की के भीतर झाँका—उसने देखा कि एक लड़की मेज़ पर फैले हुए कागज़ों को बहुत ध्यान से देख रही है । अभी उसकी शेखर की ओर पीठ है, कि तभी उसने मिर उठाकर इवर देखा । उफ़, सरोज ! ..

वही अंगूरी शराब थामे हुए दो जाम, वही कानिज भवे, वही घुवरू डाले हुए बाल ..वही...वही ..सरोज । उफ़...वहा जिसने उस परदेशी और गरीब नवयुवक को बुरी तरह लूट लिया था । शेखर आत्म-विस्मृत-सा उस 'परी' का देख रहा था—जो उसके निकट, अनूपमिह के निकट, सारे कस्बे के निकट और पागल वीरेन्द्र के निकट एक खोई हुई 'हस्ती' बनकर रह गई थी । कुछ-एक दिन पूर्व खुद शेखर के लिए वह लापता थी और उसने उसकी खोज में रात-दिन बराबर कर दिये थे पर भाग्य ने...

जिधर वह देख रही थी, ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो उधर जान पड़ गई हों, प्रत्येक वस्तु मानो संह से बोल रही हैं । उसकी वह कटोरे सी बड़ी-बड़ी आँखें जिनमें प्रेम और अभिलाषाओं का एक स्रोत-सा

उमड़ रहा था, मानो दुनिया से एक कहानी कह रही थी—ऐसी कहानी जिसके एक-एक बोल में अतीत की रङ्गीन क्रीड़ाएँ और भविष्य की भिन्नकृती हुई उमंगें गुंथी हुई थी।

सहसा वह उठी। शोखर ने उस इकहरे बदन और लम्बे कद और पीठ के नीचे तक लहराते हुए घने बालों की बलाये ली। राम, क्या कद था, क्या शरीर था—मानो एक युवा टहनी थी जिसमें लचक भी थी और उठान भी। वस्त्र जितने सादे थे उतने ही रूप का और अधिक विकसित करने वाले। सीने में मानो उसके नन्हा-सा, मामूली दिल स्पन्दन कर रहा था और गुदाज बाहों में हूँ-हूँ की बनावट चिपकी हुई थी। और शोखर नशे की-सी अवस्था में सोच रहा था—क्या 'नारा' ऐसी ही अद्वितीय कला के पुञ्जाभूत की 'संज्ञा' है। शोखर के अंधरे और उजड़े हुए एकाकी जीवन में मानो चाँदनी दिखर गई। शोखर न जाने कब तक वहाँ खड़ा रहा—खोया हुआ, जातशून्य, चेतना विहीन।

अचानक 'लैम्प' धीमा हुआ तो वह चौंका—उसने अनुभव किया जैसे अब वह जाने वाला है। उसके जान में अब उसने अपने चारा और अंधेरा फैलता हुआ अनुभव किया। क्या सरोज यही कंद है ? नहीं—नहीं। बन्दी इस प्रकार स्वतन्त्र कब होता है ? इसके अतिरिक्त इसे यहाँ से निकल भागने का अवसर सदा प्राप्त था। नहीं, यह कंद नहीं है, कंद नहीं हो सकती बल्कि अपनी स्वेच्छा से इस भूत-भुलैया की कोठी में आ छिपी है। किन्तु वह यहाँ आकर क्यों छिपी है ? क्या इसका उद्देश्य दुनिया की नज़रों से छिपकर रङ्ग-रेलियाँ मनाना था ? हे भगवान्, यदि क्रिश्चन और हूँ पाप कर सकती हैं तो सरोज भी किसी पाप के योग्य हो सकती है। तो फिर ? फिर ? यह इस कस्बे में पत्नी, बही हुई और इसी से छिप गई है। क्यों ?

यह एक जवर्दस्त रहस्य था और यह भेद जितना वजनी था, उतना ही शेखर उसे मुलभाने के लिए अपने को उद्यत पा रहा था। बुद्धि के दृष्टिकोण से यह सब कुछ कोई साधारण अथवा व्यर्थ की घटना न थी। उसकी तह में अत्यन्त कोई भारी भेद है। सरोज के सम्मुख अवश्य कोई जवर्दस्त 'मिशन' है जिसको पूर्ण करने के लिए उसने इस भयानक मकान में शरण ली है। वह क्या 'मिशन' है—मिना सरोज के और उसके भगवान के कोई नहीं जानता। किन्तु यह अत्यन्त है कि उसका मिशन गन्दा हो। इसके सम्मुख अवश्य मौन और जिन्दगी, हृज्जत और आबरु की कोई समस्या आ गई है जिसने इसकी युवा आत्मा पर, अरमानों पर, चेतना और प्राणा पर कब्जा कर रखा है। और जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए इसने कर्म उठाया है, उसके लिए यह अपने को 'ठीक' समझती है। जिस काम को पूरा करना चाहती है, उस काम को अपना अधिकार और कर्तव्य लेकर मानती है। शेखर अपने से उलझ रहा था और भीतर ही भीतर मानो किसी से लड़ रहा था।

हाँ तो, इस बार भी वह चौंकी। और एक सेकेण्ड में ओथेरा हो गया। और खिड़की बन्द। शेखर का आन्तरिक हन्ह भी सहसा बन्द हो गया।

११

चन्द्रहास ने सारे रास्ते नयन को हसी की बातों में लगाना चाहा किन्तु वह ऐसी चुप हुई थी कि न हसी, न बोली और विचित्र रूप से चुप ही घनी रही।

चन्द्रहास और शेखर के चरित्र में यह अन्तर था कि एक लड़कियों की सोसायटी से परहेज़ रखता था और जब फँस जाता था तो अपने चरित्र के प्रकाश से स्त्रियों के अंधेरे दिलों को आलोकित करके उठता था किन्तु दूसरा सोसायटी को खोजता था फिर अपनी भावनाओं पर संयम रखते हुए उन नाजुक हृदयों की प्रकृति के मनन में प्रसन्नता अनुभव करता था। 'सैक्स' को लेकर दोनों में अन्तर था, जैसे चन्द्रहास सदा प्रसन्नचित्त रहने वाला और बेतकल्लुफ़-सा प्राणी था। लड़कियाँ उसके किसी प्रकार नुकसान न पहुँचाने वाले विचित्र 'कैरेक्टर' को आसानी से पट नहीं सकती थीं क्योंकि वह कभी धार्मिक पुरुष था तो कभी छैला, मजनुँ, रसिक।

नयन को बहुत ही चुप देख, चन्द्रहास ने बात द्वाँड़ी—'यह हमारी सरकार को खाना खाने के बाद चुप क्यों लग गई है?' फिर बोला—'ओहो, मैं समझ गया! उस गाँव वाले का तार शायद कोमल दिल में लग गया है।'

'बकवास न कीजिए।' नयन ने चिड़ते हुए कहा।

'तो कदाचित्त इस अपराधी के सम्बन्ध में 'ए' क्लाम, 'बी' क्लाम, 'सी' क्लाम और 'डी' क्लाम के बारे में विचार किया जा रहा है?'

'यह क्लामें क्या बला हैं?'

'नहीं जानती? जेल की क्लामें—।'

'ईश्वर के लिए मेरे सामने जेल का नाम न लीजिए।'

'तो फिर तुम बातचीत का क्रम किसी प्रकार आरम्भ भी करो।'

'जी नहीं चाहता। मुझे सुपचाप बँटी रहने दीजिए।'

‘यह अपने नियम के विरुद्ध बात है। माना कि तुम नाजुक दिमाग हो पर मैं अपनी प्रकृति का क्या करूँ ?’

‘अच्छा मैं ज़रा उतरूँगी, मोटर रोकिए।’

‘भाग तो नहीं जाओगी इस बहाने से ?’

‘भाग कर जाऊँगी कहाँ ? आपके वश में हूँ।’

‘नयन, तुम्हें भ्रम हुआ है, तुम भूल पर हो। तुम किसी के वश में नहीं—किन्तु पूर्ण तथा स्वतन्त्र हो। मेरी हेमियन तो एक चौकीदार की-सी है। यदि तुम मेरी इतनी हेमियन को भी पृथिवी दृष्टि से देखती हो तो जल्दी से बताओ तुम्हें कहाँ उतार दूँ ?’ चन्द्रहास का स्वर दृढ़ था और कुछ व्यथित।

‘आप मुझे कहाँ ले जा रहे हैं ?’

‘अपनी जन्मभूमि—लेकिन मैं स्वयं नहीं जानता कि इस समय किस ज़िले में है। कोई बड़ा-सा क़स्बा आये तो मालूम करूँ कि शामगढ कहाँ है, किस ओर है और कितनी दूर है ?’—चन्द्रहास ने मोटर रोक ली। कुछ देर बाद जब नयन वापस आकर बैठी तो चन्द्रहास से बोली—‘एक प्रश्न करती हूँ। बुरा तो नहीं मानेंगे आप ?’

‘किसी बात का बुरा मानना तो अपनी प्रकृति में है ही नहीं।’

‘मुर्शिदाबाद में क्या यह चीज़ आपके इरादे में सम्मिलित थी कि आप मुझे वहाँ से लेकर चल दें ?’

‘ओह ! बहुत ही हल्का-सा प्रश्न है जिसका उत्तर, मेरे विचारानुसार, तम स्वयं दे सकती हो—। कि कितन परिस्थितियोंविशेष तुम मेरी कार में आकर बैठी थी—?’

‘यह तो वास्तव में संयोग था।’

‘केवल संयोग ?’ चन्द्रहास हँसा—‘मैं तो मोटर में पड़ा सो रहा

था कि तुम्हारी अपनी सभी के साथ लुमर-कुमर से मेरी आँख खुल गई । फिर यह भी सोचो कि तुम्हारे स्थान पर यदि तुम्हारी सहेली बैठ जाती तो इस समय वह मेरे साथ होती और तुम अपने ठिकाने । सज़ा तो मुझे ऐसी भी होगी और पैसों भी होती ।’

‘बात तो सच मालूम होती है । अच्छा तो आपको बिल्कुल पता न था कि मैं कौन हूँ ?’

‘ईश्वर सारी है ।’

नयन के नेत्रों में एक अपूर्व आभा रह गई । सुन्दराकर बोली—
‘अजीब संयोग है ।’

‘हैं, यह क्या कम सुन्दर संयोग है कि मैं आपके साथ हूँ । कोई दूसरा होता तो भगवान् जाने तुम्हारा क्या होता ? चिन्तु तुम चन्द्रहाम को वहाँ से ले भागने के कारण अपराधी समझ सकती हो ।’

‘पूछ ली आपसे यह बात तो क्या गुनाह कर दिया ? दिल साफ़ हो गया ।’ नयन ने सुन्दर जवाब दिया ।

‘तुम्हारा दिल भी चन्द्रहाम की ओर से मैला हो सकता था ।’

‘तो चन्द्रहाम कोई क्रिस्ता तो है नहीं ।’ नयन ने आँखें नचाते हुए कहा ।

‘मैं तो इस गरीब को ऐसा ही समझता था और मेरा खयाल है कि तुमने भी उसे वैसा ही पाया ।’

‘दुनिया को इसका किस प्रकार विश्वास दिलाया जायगा ?’

‘तुम इस दुनिया को विश्वास दिलाना चाहती हो जिसका अन्याय अपनी विजय और सफलता पर खिलखिलाता है और जिसका न्याय अपनी असफलता पर चुप-चुप रोता है—उस दुनिया को जिसने सदैव

ज़ालिमों की हिमायत की है, उनका पक्ष लिया है और मामूम, निरपराधों का विरोध किया है, उनका गला घोंटा है ? तुम गलती पर हो नयन । यदि तम उजले वस्त्रों में हो तो तुम्हें औरों को मैला कहने का अधिकार नहीं है ।' चन्द्रहास कुछ गर्भीर हो चला था ।

‘अच्छा, अब मोटर कुछ और तेज़ कीजिए, चार बजने वाले हैं । ईश्वर करे आज तो रात किसी अच्छे-से कबड़े में गुज़ार दें । अभी तीन घण्टे दिन बाकी हैं । यदि साठ मील की रफ्तार से हम चले तो एक सौ अस्सी मील की मुसाफ़री में तो किसी अच्छी-सी बस्ती का पता चल सकता है ।’

‘हम हमारे भी तेज़ चल सकते हैं और ऐसी बस्ती में पहुँच सकते हैं जहाँ जाकर न मुझे गिरफ्तारी का ही कोई भय रहेगा और न तुम्हें बदनामी की शंका । किन्तु वहाँ पहुँचकर न जाने कब-कब के हमारे कम्बो का हिमाय भी तो शुरू हो जायगा । क्यों नयन ?’

‘जी !’

‘मैंने कहा, यह हम दोनों का पहला और अन्तिम सफ़र क्या बहुत ही अरुचिपूर्ण है नयन ?’

‘नहीं तो । हम खतरे में लिपटे हुए न जाने कहाँ उड़ें चले जा रहे हैं ।’

‘खतरे तो ज़िन्दगी का ही दूसरा नाम है । मैं इस समय अपने सीने में कुछ ऐसी अभिलाषा पा रहा हूँ—ऐसी अभिलाषा कि यहाँ मोटर ‘किसी’ से टकराकर चूर-चूर हो जाय और यहीं मेरी चिता बन जाय और तुम—? तुम कुशलपूर्वक किसी सहृदय तथा रहम दिल आदमी द्वारा अपने मकान पर पहुँचा दी जाओ ।’

‘यह कोई दूसरे प्रकार का दौरा मालूम होता है ?’

‘जी हाँ । आसार कुछ ऐसे ही हैं ।’

चन्द्रहास इस समय इस सुन्सान सड़क पर लगभग सत्तर मील की रफतार से कार चला रहा था। नयन ने विनती भी की किन्तु वास्तव में इस समय इसकी तबियत खुद से कुछ विद्रोही-सी हो गई थी। पाँच बजे होंगे। सूर्य पीला पड़ गया था। बादल के टुकड़ों ने क्षितिज पर एकत्र होकर मेह बरसाने का पड्यंत्र शुरू कर दिया था। हवा में ठंड की मात्रा बढ़ गई थी। तेज़ हवा के खुरगंटों ने नयनतारा की चादर और दुपट्टे को निर्दयतापूर्वक घसीटना शुरू कर दिया था। चन्द्रहास के बाल अस्त-व्यस्त होकर उसके मिर से अलग होकर मचल रहे थे। उसकी आँखों से पागलपन और आशंका के चिह्न दृष्टिगोचर हो रहे थे। जब 'औरत' खुली हुई भावनाओं में गवन करने लगती है तो 'आदमी' सादगी से चाखने लगता है। यह चन्द्रहास की स्वामेश चीख थी जिसे वह स्वयं नहीं सुन रहा था।

'देखिए—देखिए ! दाहिनी ओर सड़क पर मुड़ जाइए। उस ओर किसी बड़ी बस्ती के आसार नज़र आते हैं।' नयनतारा ने हवा के थपड़ों में बड़ी कठिनाई से आवाज़ निकाल कर कहा।

सहसा मुई गिरी और मोटर की रफतार तीस मील पर आ गई। चन्द्रहास ने दाहिनी ओर कार मोड़ दी और आध घण्टे में पापलगाँव कच्चे में पहुँच गया।

ॐ

ॐ

ॐ

शेखर फिर से 'बाबा' के दर्शनार्थ कच्चे में बाहर जा रहा था कि एक ओर से किसी ने उसका नाम लेकर उसे आवाज़ दी। उसने हैरान होकर उस ओर देखा तो काँचड़ और धूल में अड़ी हुई एक सुन्दर कार को खड़े हुए पाया। दूसरे ही क्षण दरवाजा खुला और चन्द्रहास हाथ फैलाये लपकता हुआ आया।

‘कौन ? अरे चन्द्रहास ! तुम कहाँ ?’

‘और तुम कहाँ ?’ चन्द्रहास ने भी वैसा ही आश्चर्य उँडेलते हुए पूछा ।

‘मैं तो बहुत दिनों से यहाँ हूँ । मनोरञ्जन के लिए आया था कि कुछ ‘भेद’ के कामों में फँस गया— यों समझ लो कि भाग्य में यहीं रुक जाना लिखा था— लेकिन हा, तुम कैसे आ टपके बिना खबर ?’

‘कुरसत में सुताऊँगा । तुम कहाँ रहते हुए हो ? जल्द चलो अपने मकान पर । हमारा मारे भूख के दम निकल रहा है ।’

‘आओ, मैं तो धर्मशाला के ही एक कमरे में रहता हुआ हूँ—वही मेरा मकान है; किन्तु मेरा खयाल है कि तुम वहाँ आराम से रह सकते हो ।’

शेखर ने अभी जान-बूझ पर चन्द्रहास की गिरफ्तारी का जिक्र न किया था । जब वह कार के समीप पहुँचा तो उसने अन्दर किमी और के भी चादर में लिपटे बैठे देखा ।

‘नयन, तू हम बच गये । ईश्वर की दया से मेरा अभिन्न और एक मात्र अन्तरङ्ग मित्र शेखर यहाँ अकस्मात् मिल गया । जरा तुम पिछली सीट पर चली जाओ । जाओ शेखर—।’

धामे से शेखर बोला वान मे- ‘चन्द्र, क्या यह वह महोदय है जिनसे एक बार तुम्हारी सगाई टूट चुकी है ?’

चन्द्रहास ने मुस्कराकर स्वीकृति-सचक मिर हिला दिया ।

‘अच्छा, तुम इनको लेकर गायब हुए हो ?’

‘हूँ—तुम्हें कैसे मालम हो गया ?’

‘बताऊँगा फिर—।’

नयनतारा ने भी शेखर को साश्चर्य देखा और निराशा के इन चरणों में उसके मिल जाने से उसे बड़ी तसल्ली हुई ।

कुछ देर में वह धर्मशाला में पहुँच गये । शेखर ने ठाकुर और उसकी पत्नी को सुसंवाद सुनाया कि उसके भैया-भाभी आये हैं । बहुत जल्द चाय तैयार कराई जाय और तीन आदमियों का अच्छा सा खाना भी ।

चन्द्रहास और नयनतारा दोनों नहाए । नयन ने नहाकर अपने फिर वहीं कपड़े पहने किन्तु चन्द्रहास ने नया सूट पहना । दोनों ने ढट कर चाय और शाम के दिन खोलकर खाना खाया । इसके पश्चात् चन्द्रहास ने अपनी कहानी और शेखर ने वहीं तुरी खबर सुनाई । चन्द्रहास इसके लिए पहले से ही तैयार था । नयन पलङ्ग पर और यह दोनों क्रश पर लेट गये । एक छोटो-सी 'कॉनफ्रेंस' की गई ।

'नयन, तुमको मालूम हो गया न । वहीं हुआ जिसकी मैंने भविष्य-वाणी की थी ।' चन्द्रहास बोला ।

'अब क्या होगा ?' नयनतारा ने परेशान होकर पूछा ।

'कुछ नहीं । मैं तुमसे वादा कर चुका हूँ कि तुम्हारी और खानदान की इज्जत बचाने के प्रत्येक त्याग के लिए प्रमत्त हूँ ।'

'क्या भाभी, तुम यह पसन्द करोगी कि चन्द्रहास जैसा नक आदमी जेल में सड़ता रहे ?' शेखर ने नयन से कहा । नयन 'भाभी' संबोधन पर बहुत चौंकी—बहुत चौंकी, और चन्द्रहास मन्द-मन्द मुस्कराया ।

'देखो शेखर, मुझे यह 'कनवेंसिंग' की-सी बातचीत बिल्कुल पसन्द नहीं ।' चन्द्रहास बोला ।

फिर कुछ गम्भीर होकर बोला—‘मैं तुम्हारे द्वारा नयन को किसी प्रकार निवश नहीं करना चाहता—नयन स्वयं सभी घटनाओं में भली भाँति परिचित है । इनमें अब कुछ न कहो । तुमको एक काम करना होगा, मैं तो सुबह अपने को पुलिस के हवाले कर दूँगा और तुम नयन को किसी प्रकार सुरक्षित इन के घर पहुँचा दना ।...’

शेखर चिढ़ गया—‘चन्द्र, तुम बड़े बेवकूफ हो । क्या तुम नयन को इतना स्वार्थ लोलुप समझते हो कि उसे अपने स्वार्थ और हित के सम्मुख तुम्हारे मान-अपमान का ध्यान न आयेगा ?’

‘नहीं शेखर, मैं तुम्हें नयन की भावनाओं में ‘अपीत’ करने की आज्ञा न दूँगा । मेरी यह निरपराध और निष्कलङ्क यात्रा यदि मेरे जीवन के कुछ वर्ष तबाह करने का इरादा कर चुकी है तो मैं भी अपने को तैयार कर चुका हूँ किन्तु यह अन्याय एक पवित्र आत्मा का कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा—मैं जैसा हूँ वैसा ही रहूँगा ।’

शेखर डाँटते हुए बोला—‘प्रत्येक चीज़ का काँड़े सीमा होती है मूल । समय बहुत कम है और मुझे बहुत से काम करने हैं । हमें अति शीघ्र किसी निर्यात पर पहुँच कर फसला कर लेना चाहिए कि क्या कर ?... तुम्हारे विचारों का मैं समर्थन नहीं कर सकता ।’

‘शेखर, आप ही बताइए, मैं क्या करूँ ?’ नयन ने बातचीत से दिक आकर शेखर से कहा ।

‘भाभी, बात बिल्कुल स्पष्ट है और चन्द्र के कथनानुसार इसमें दबाव का प्रश्न भी नहीं उठता । तुम्हारे सामने इस समय अपनी और चन्द्र की इज्जत का प्रश्न है । इसकी गिरफ्तारी का वारण्ट निकल चुका है । पुलिस का सूचना मिलने की देर है, इसके बाद वह इसे कम से कम सात साल के लिए हज़त उतार देने वाले मकान में घसीट कर ले

जायगी । किन्तु जहाँ यह ठोस और निर्दय वास्तविकता हमारे सामने मौजूद है वहाँ कठिनाइयों को हल करने की सामग्री भी हमारे साथ है । यदि तुममें तनिक भी मानवता है, यदि तुम्हारी देह में भावनाओं की प्रबल आत्मा सो नहीं गई है, यदि तुम्हारा दिल कष्टना, चमा और स्नेह से शून्य नहीं है और यदि तुम प्रेम, अहसान और वेदना का किसी प्रकार भी अनुभव करना जानती हो तो तुम्हें अपने दो-चार अकष्टकारक शब्दों द्वारा चन्द्रहास का भविष्य अन्धकारपूर्ण और भयानक होने से बचा लेना चाहिए । तुम्हें अभी मजिस्ट्रेट के सामने चलकर स्वतन्त्रता पूर्वक और निःसंकोच होकर अपना बयान लिखवा देना चाहिए... कि चन्द्र ने मुझे न धोखा दिया है, न मुझ पर किसी प्रकार का कोई दबाव डाला है । न धमकाया है, न डराया है और न फुसलाया है बल्कि मैं अपनी इच्छा से खुशी-खुशी इसके साथ हुई हूँ । मेरा न पीछा किया गया है और न मैं भागा हूँ । यदि हमारे इस इच्छित आचरण के विरुद्ध हमारे आत्मीय यदि कोई कानूनी कार्यवाही करे तो उसकी ओर तनिक भी ध्यान न दिया जाय । मुझे किसी ने न फुसलाया है न बधकाया है - मैं बालिग हूँ और अपना भविष्य चन्द्रहास के हाथों में सौंपती हूँ ।'

'बस-बस शेखर, ईश्वर के लिए चुप रहो ।' चन्द्रहास मानो तिजमिजा उठा ।

'चुप रहो चन्द्र, वरना गला दबा दूँगा तुम्हारा ।'

'हे भगवान्, यहाँ तो मार-काट होने लगी । सुनो शेखर... यदि मैं अपनी इस कानूनी लिखावट में स अन्तिम पंक्ति निकाल दूँ तो—?' नयन घबराती-सी बोली ।

'धन्यवाद भाभी ! तुम मेरी व्यवस्था से सहमत तो हुई ।'

‘नयन, तुम शेखर के इन जादू से भरे वयानों के बहकाव में न आना, तुम्हें सांगन्ध है—तुम वहीं करो जो तुम्हारी आत्मा कहती है ।’ चन्द्रहास ने कहा ।

‘आप चुप रहिए वरना शेखर से कट कर आपका गला दबवा दूँगी ।’ नयन मुस्कराकर बोली ।

‘तो फिर या तो तुम्हें शेखर की पूरी बात लिखवानी पड़ेगी या उसमें बिल्कुल सहमत न होना होगा ।’ चन्द्रहास हठ स्वर में बोला ।

‘शेखर, देखी आपने इनकी ज़बर्दस्ती ?’

‘यह तो मूर्ख है भाभी । अच्छा तो अब मैं मजिस्ट्रेट के पास जाता हूँ, वह मेरे आत्मीय ही होत हैं । तुम्हें याद रहेगा न, जो मैंने कहा है ?’

‘जी हाँ । एक-एक शब्द ।’

‘और देख, ओ बेवकूफ इन्सान ! यदि मेरे जाने के बाद किसी प्रकार मामले को बिगाड़ने की चेष्टा की तो मुझसे लुरा न होगा । उम्र भर सूरत न देखूँगा ।’ शेखर ने चन्द्रहास को चेतावनी दी ।

‘अच्छा...अच्छा...’ बाबा, अब आप तशरीफ़ ले जाइए यहाँ से—काश, नयन अपनी स्वेच्छा से सब वयान देती, तुम्हारी ‘टिक्टेर शिप’ को इसमें दखल न होता ।’ चन्द्रहास कुसमुसना रह गया ।

शेखर लण भर को चौंका, बोला—‘भाभी, यह वयान तुम्हारी ही ओर स हैं न ?’

‘हाँ-हाँ शेखर ! क्या विश्वास नहीं आता आपको ?’ नयन परिष्कृत हँसी से हँसकर बोली ।

शेखर के मन का बोझ जैसे उतर गया । तत्पर हो बोला — ‘अरे, साढ़े-पाँच बज रहे हैं । ईश्वर करे अनूपसिंह घर पर ही मिल जाय । ए— तुम्हारी मोटर ले जा रहा हूँ ।’ और शेखर झपट कर कमरे से बाहर हो गया ।

उड़ता हुआ वह अनूपसिंह की हवेली पर जा पहुँचा । मोटर से उतरा ही था कि फाटक से निकलने हुए पेशकार साहब मिल गये । उसने उनसे पूछा—‘क्या मजिस्ट्रेट साहब अन्दर हैं ?’

‘जी—हाकिम साहब ? वह तो आज सुबह से एक सप्ताह की कुर्ती पर बाहर गये हुए हैं ।’

‘हैं ! गजब हो गया ! हफ्ते के लिए ? उफ़-उफ़... !’

‘क्यों, कुशल तो हैं ? क्या हुआ साहब ?’ मुन्शी जी ने पूछा ।

‘अरे साहब, गज़ब हो गया । एक बहुत ज़रूरी काम था उनसे । उनकी जगह कौन काम करेगा अब ?’

‘तहसीलदार साहब करेंगे । किन्तु साहब... कहाँ हमारे हाकिम साहब और कहाँ यह मोटे तहसीलदार साहब ?’

‘तहसीलदार साहब... ? अच्छा-अच्छा... ।’ शेखर मुस्कराया । कोई खयाल आया । लपक कर कार में बैठा और ‘लेडीज़ क्लब’ की ओर कार का मुँह कर दिया ।

मुन्शी जी हतप्रभ खड़े देखने रह गये ।

शेखर जब टेनिस-कोर्ट में पहुँचा तो शीला बड़े उत्साह से टेनिस खेल रही थी । शेखर को देखते ही बल्ला फेंक कर उसके पास आ गई ।

शोभा को गुस्सा आ गया, उसका 'सैट' अधूरा रह गया । वहीं से चीख कर बोली—'हूँ...मिस्टर राजीव आये तो लाडो ने खेल तक बन्द नहीं किया और अब इनके आते ही मेरा खेल बिगाड़ करके फुर्र से उड़ गई ? देख, अब कैसा खिलाती हूँ तुम्हें आने साथ । संडी कहीं की—। आओ हरबन्स, तुम आ जाओ । मरने दो मुरदार को —।'।

'ओहो—शेखर ! अरे आज आप यह परेशान-से क्यों दिखाई दे रहे हैं ? क्या सरोज ने निराश कर दिया है ?' शीला शेखर के निकट आ गई थी ।

'शीला, चमा करना । मैं बड़े बेमौके आया । आज तुम्हारी हमदर्दी का अनुचित किन्तु उचित लाभ उठाने आया हूँ ।'

'अनुचित किन्तु उचित लाभ कैसा होता है ?' हँसकर शीला ने पूछा ।

'बताता हूँ । पहले तो मेरी ओर से इस बात की बधाई स्वीकार करो कि तुम्हारे पिता आज कल मजिस्ट्रेट साहब का काम कर रहे हैं ।'

'खूब ! वह तो बीसियों बार कर चुके हैं । यह क्या निकम्मी बधाई ?'

शेखर सकपकाया कुछ, किन्तु सँभलकर बोला—‘ओह... खैर हाँ, इस समय मुझे तुम्हारी कितनी ज़रूरत है, तुम नहीं जानतीं शीला—तुम नहीं जानतीं...’ उसने रुमाल से शीता पर पट्टा-सा करना शुरू कर दिया ।

शीला मन ही मन हँसी, बोली—अच्छा, अब इस खुशामद को तो रहने दो, जल्दी से बताओ कि हमारी सेवा में कैसे उपस्थित हुए हो ?’

‘अच्छा...तो तुम एक दम गम्भीर बन जाओ । बड़ा ज़रूरी काम है । शाबाश, मेरी शिष्या...आज तुम्हारे आज्ञापालन की परीक्षा है ।...’

‘अब कुछ कहिए भी ?’

‘वादा करो कि तुम मेरे और मेरी सांसायटी के प्रति कोई बुरी धारणा कायम न करोगी ।’

‘यदि कहना है जो जल्दी से छोड़ देना मैं यह चली ।’

‘अच्छा-अच्छा तो सुनो...’ शेखर ने अपने को संभाला और फिर बहुत ही सुन्दर और आकर्षक ढङ्ग से चन्द्रहास का सारा हाल थोड़े से शब्दों में उसने उसे सुना दिया । सुनाकर, अधीर-सा शांता के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा ।

शीला हँसी, फिर शब्दों को हँसाती हुई सी बोली—‘बहुत सुन्दर—बड़ा आकर्षक ‘रोमान्स’ है...हाँ-हाँ, शौक से अपनी बहन को ले चलींगी मैं पिता जी के पास । मेरे पिता से तुम नहीं मिले हो शेखर...यह हँसमुख और विनोद-प्रिय आदमी हैं ।’

‘हैं, नहीं मिल सका शीला—इसका मुझे खेद है । हाँ देखो तो, तुम्हें एक काम और करना होगा शीला । बेचारी नयन के पास एक

सत्वार और दुपट्टे के कुछ नहीं हैं । तुम्हें अपने कपड़े भी उधार देने होंगे ।’

‘ईश्वर की सौगन्ध, उनके मिनने का कितना सुन्दर अवसर है ! अच्छा, मैं मकान पर जाती हूँ, भेट में देने को कुछ ग्राहियाँ लाती हूँ और भोजन भी भी व्यवस्था कराती हूँ ।’

‘नही-नही, खाने-पाने की गलत बात है, हम लोग तो खा चुके हैं ।’

‘एक दौर फिर होगा—और जरूर होगा । अरे, यह कार किसकी उधार लाए ?’

‘चन्द्र की ही है ।’

‘आ फिर ऐसा कीजिए, मुझे इसमें बिठाकर हमारे घर चलिए । कार को ज़रा दूरी पर रोक दीजिए । मैं कपड़े लेकर और पिता जी से मिलकर फिर तत्काल आपके पास आ जाऊँगी । फिर वहाँ से आपके यहाँ चलेगी ।’

शेखर ने इस ‘प्रोग्राम’ को बहुत ही पसन्द किया, बोला—‘एक शर्त पर चलता हूँ तुम्हारे साथ—वह यह कि तुम पिछली सीट पर छिप कर बैठोगी ।’

शाला का कुछ बुरा लग गया । उसने उपालंभ से भरी आँखों को शेखर ने नमम चेहरे पर टोक दिया । शेखर ने विवश हो सिर झुका लिया । क्षण भर दोनों मौन, मूक और हतप्रभ—से खड़े रहे—और फिर जैसा शेखर ने कहा—था, उसी का अनुकरण किया गया ।

शेखर शाला के मकान से कुछ दूर कार रोककर उसकी प्रतीक्षा करने लगा । करीब बीस-पचास मिनट में शाला वापस आ गई । उसका भरा-भरा बदन कासनी रङ्ग की साड़ी में लिपटा हुआ था जिसकी सुन्दर

बंदिश को शेखर ने सराहनीय दृष्टि से देखा, और कहा—‘शीला, सच—रूप को तुम पर गर्व है । इस साड़ी में तुम कितनी भली दीख पड़ रही हो !’

शीला के कपोल रक्त रंजित हो उठे । हँसे-बोली—‘क्यों शर्मिन्दा करते हैं ? मेरी कम पहुँच का इससे अधिक और क्या अपमान हो सकता है कि घटनाओं के आवरण में आपने मुझे देखना आरम्भ कर दिया है ।’

‘यह घटनाओं का आवरण कैसा होता है शीला ?’

‘वही जो इस समय हमारे ऊपर पड़ रहा है...खैर, अब जल्दी चलिए । आपके यहाँ भी तो कुछ समय लगेगा अभी ।’

‘पर शीला, यह प्यारा-प्यारा नया चाँद मुझे निमन्त्रण दे रहा है कि तुम मेरे पास—और मैं भी तुम्हें मीलों दूर कहीं ले जाऊँ—कही । फिर बर्सा मजिस्ट्रेट के सामने तुम भी वही बयान दो जो आज नथन देने वाली है ।’

शीला का संपूर्ण ध्येयत्व एक बारगी हिल उठा—उसे लगा जैसे समस्त संसार एक भ्रम बनकर उसके यौवन में—यौवन की उमङ्ग में डूबना चाहता है और जैसे विश्व के साथ ही प्रकृति प्रलोभन-से सजी है । उसे रोमांच हो आया । वस्त्रस्थल में और कपोलों पर स्वेद हो गये । किन्तु यह भावना थी—भावना । सँभलकर बोली—‘मुँह धो रखिए शेखर दादू ! मैं आपसे जेल की हवा खिलाए बिना न रहूँगी—अच्छा’ अब चलिए ।’

न जाने क्यों शेखर मचल गया—‘तो फिर मेरे बराबर वाली सीट पर बैठो ।’

शीला कठोर हो गई—‘नहीं । पिछली सीट पर ।’

‘वाह रे दुर्भाग्य ! मैंने यह प्रवृत्त ही क्यों लेई ?’ और फिर अन्त में कुछ अनुनय-विनय के पश्चात् शीला को अपने निकट बैठने पर प्रसन्न कर लिया । और थोड़ी देर बाद वह धर्मशाला में पहुँच गये ।

कमरे में पहुँचने पर चन्द्रहास शीला को देखकर खड़ा हो गया । और विस्मित-सा, कौतूहल से भरा कभी शोखर को और कभी शीला को देखने लगा ।

शोखर ने शीला को अपनी अतिप्रिय शिष्या कड़कर सबसे परिचित कराया, और आपस में एक-दूसरे ने ‘नमस्ते’ कर मिलने की प्रवृत्ति प्रकट की । जब परिचय समाप्त हो गया तो शोखर ने कहा—‘ईश्वर सबका बेड़ा पार लगाता है । अनूप का न मिलना अच्छा ही हुआ । मैं वास्तव में उनकी कृपा का भार अपने ऊपर चाहता भी न था क्योंकि उनके और मेरे बीच अब एक भीषण लड़ाई होने वाली है । वह छुट्टी पर गये हुए हैं और उनके स्थान पर शीला के पिता ही मजिस्ट्रेट की काम करेंगे । हम अभी नयन के बयान के लिए शीला के मकान पर चल रहे हैं ।’

इधर शोखर अपनी बके जा रहा था और उधर शीला और नयन इस प्रकार गले मिल रही थीं मामो प्रकृति की बिछड़ी हुई दो बहने हों । इसके बाद शीला ने कपड़ों का उपहार नयन को भेंट करते हुए कहा—‘बहन, यह न समझना कि मैं तुम्हारी इस घटना-जन्य निर्बल तथा शोचनीय अवस्था का उपहास कर रही हूँ । मुझे अपनी बहन के पास कुछ लेकर आना था पर खेद है, अद्य-समय और शीघ्रता के कारण तुम्हारे योग्य कोई सुन्दर उपहार न ला सकी—फिर भी यह तुच्छ भेंट है, इसे स्वीकार कीजिए ।’ यह कह उज्ज्वल हँसी हँसने लगी ।

नयन ने सस्नेह उसे अपने समीप खींचकर कहा—‘बहन, इन चीजों की क्या जरूरत थी ? तुम तो स्वयं एक बहुमूल्य उपहार हो जो प्रकृति ने मुझे अनायास ही प्रदान किया है ।’

शेखर ने कृतज्ञ भाव से शीला को देखते हुए कहा—‘शीला, वास्तव में तुम्हारी सहृदयता और तुम्हारे उज्ज्वल स्नेह की दाद दिए बिना नहीं रह सकता । तुम वास्तव में एक ऐसा उपहार हो जिसे सहज ही दैवी प्रकार से बहन के रूप में प्राप्त कर कोई भी नयन के प्रति ईर्ष्यालु हो सकता है ।’

‘आज आपने तो प्रशंसा का ऐसा जामा पहना है कि बस, क्या कहने !’ किसी प्रकार शीला बोली ।

‘नहीं, वास्तविकता तो यही है कि आप जैसी देवियाँ बड़ी दुर्लभ होती हैं ।’ चन्द्रहास ने कहा ।

‘ओह ! आप भी आखिर हैं तो मिस्टर शेखर के दोस्त ही न । असर क्यों न आयगा ?’ शीला ने कहा ।

‘अच्छा, अब ज्यादा न बनो । झटपट नयन से कुछ घुसुर-फुसुर कर लो जैसी कि तुम लोगों की आदत होती है । इतने में चन्द्रहाम से बाने करता हूँ ।’ यह कहकर चन्द्रहाम और शेखर बरामटे में आ गये ।

‘लड़की तो खूब है ! शेखर, यह कहाँ से उड़ाई ?’ चन्द्रहास ने मुस्कराकर पूछा ।

‘अफ़सोस चन्द्र—इसको मैं अपनी नहीं कह सकता । कह तो देता यदि यह ‘घटना’ के कुछ दिन पूर्व मुझे मिल जाती ।’

‘अरे रहने भी दे अब—हमारे सामने ‘मौरेलिस्ट’ अधिक न बन ।’

‘अक्रसोस दोस्त, तेरा मन सदा काला रहा ।’

‘तो क्या—कोई और—?’

‘यह अवकाश की बातें हैं । मेरे परेशान दोस्त, तुम्हें अभी मेरे विचित्र सौदे का ज्ञान नहीं ।’

‘तुम्हारी नीरवता को देखकर तो मुझे किसी सौदे की आशा नहीं होती ।’

‘अच्छा छोड़ो । चलो, अन्दर चलो । हमें जल्दी करनी चाहिए । शीला ने सब काम ठीक कर लिया होगा ।’

जब उन्होंने कमरे में प्रवेश किया तो नयन शीला के अनुरोध से सुन्दर माड़ी में लिपट कर बिजली कौंधा रही था । चन्द्रदास आवाक् देखता रह गया ।

शेखर ने कहा—‘भाभी, हमें शीला के यहाँ खाना भी खाना है ।’

‘अब खाना कौन से पेट में खाया जायगा ? जगह तो ज़रा भी नहीं ।’

‘यहाँ का पानी बड़ा हाज़मे वाला है, वह स्वयं जगह कर देगा ।’ तपाक् से शीला बोली ।

‘खैर, अब कार्यक्रम यह है कि हम सब चल्कर शीला के पिता के सम्मुख हमारा यह ‘मामला’ रखें, उस सम्बन्ध में बातचीत करें । अधिक से अधिक आध घण्टा लगेगा । उसके बाद खाने का समय हो जायगा—क्यों शीला ?’ शेखर ने कहा ।

शीला विहँसती-सी बोली—‘जी हाँ ! मैंने हरबन्स, शोभा इत्यादि को भी निमन्त्रित कर लिया है, वह भी आ जायँगी । बड़ा मज़ा रहेगा । दावत के बाद आप अपनी राह लेना—भाई चन्द्रहास और बहन नयन-तारा सुनहले स्वन देखेंगे और हम सब तमाशा ।’ और यह कह, खिल-खिला पड़ी ।

‘तुम भी, ईश्वर ने चाहा तो बहुत शीघ्र एक तमाशा बनने वाली हो ।’ शेखर ने विनोद किया । शीला लजाती हुई बोली—‘सुन लिया बहन, इन लोगों की बड़वास ?’

‘सुझसे क्या कहती हो बहन ? सुझे तो कई दिन हो गये इस दो अर्थ वाली बाँग को सुनते-सुनते ।’

शीला शरारत से भर कर बोली—‘अच्छा, क्या सारी रात चन्द्र भाई इसी प्रकार की ‘सदा’ लगाते आए हैं ?’

शेखर और चन्द्र ने कहकहा लगाया और नयन लजा गई ।

शेखर ने कहा—‘शीला, तुमने एक भूल की । मिस्टर राजीव को आज निमन्त्रित नहीं किया ।’

‘यह मिस्टर राजीव कौन महानुभाव हैं ?’ चन्द्रहास ने जिज्ञासा प्रकट करते हुए कहा ।

‘शीला से पूछो ।’ शेखर ने मुस्कराकर कहा ।

‘एक साहब हैं हाँ, उन्हें सूचना देने का ध्यान ही न रहा ।’ शीला भद्देपन से बोली ।

‘उफ़—यह तो प्रेम-पालन के अनुकूल बात नहीं है शिष्या...’ । शेखर ने परिहास किया ।

‘अच्छा-अच्छा—अब चलिए गुरु जी !’ शीला ने दिक-आकर कहा ।

और फिर चारों कार में लद कर शीला के मकान पर पहुँचे । आठ बज गये थे । नया चाँद अपनी सुन्दर उम्र के आठ दिन गुजारने के बाद नीले आकाश की छत से लगा हुआ खड़ा था—अडिग, अविचल और एकाग्र । जब यह सब मोटर से उतर कर 'हाल' के दरवाज़े पर पहुँचे तो तहसीलदार साहब मोटर की आवाज़ सुनकर पहले से ही आतिथ्य-सत्कार के लिए प्रस्तुत थे ।

उनकी उम्र पचास से ऊपर की न होगी । गोल-मोल से आदमी । गंजे सिर ने ललाट व सिर की सीमा में कोई अन्तर न छोड़ा था । दाढ़ी मूँछ साफ़, चमकदार जीवित आँखें, होंठों की बनावट स्वाभाविकतया हँसी से सराबोर । गर्दन और विशाल कन्धे सिद्ध कर रहे थे कि वह जीवन के आघात-प्रत्याघात तथा कड़वाहट पीछे छोड़कर सामने चित्त की प्रसन्नता और हृदय की उत्कृष्टता को स्थिर बनाए रखने के अभ्यस्त थे । इनका उद्देश्य हँसो और मोटे होओ था । क्योंकि देह पर और अधिक गोशत की गुञ्जाइश न थी इससे खुशियाँ खून में पेश्वत होकर इनको लाल बनाये जा रही थीं ।

उन्होंने बिना परिचय और बिना तकलुफ़ सबसे भेंट कर डाली । और नयन के मिर पर प्यार से हाथ फेरा जिसमे उसकी साड़ी का छोर माथे पर से खिसककर कन्धों पर जा पड़ा । इसके पश्चात् अपने अतिथियों को लेकर 'हाल' में आ गये । कमरा पश्चिमी ढङ्ग पर सुशोभित था । कालीन और नई दरियाँ बिछी हुई थी । पंक्ति-बद्ध सोफ़े पड़े थे । कोने में बड़े-बड़े पीतल के गमले रखे हुए थे और बाँच में एक चमचमाती मेज़ पर बहुत सुन्दर गुलदान रखा हुआ था । कमरे में एक दो तहसील के 'ग्रुप' की तस्वीरें थीं और एक स्वयं उनकी युवावस्था के समय की जो अब केवल इतना ही अन्तर स्पष्ट कर रही थी कि पहले मिर पर बालों का गुच्छा था और देह फबती हुई भरी-भरी थी और अब प्रत्येक वस्तु साधारण अवस्था से आगे निकल चुकी थी ।

एक सोफे पर बैठते हुए, उन्होंने मुस्कराकर कहा—‘मुझे आप साहबान से मिलकर बड़ी खुशी हुई ।’

‘यह मेरा दुर्भाग्य है कि पूरे पन्द्रह दिन से यहाँ कस्बे में पड़े हुए होने के उपरान्त भी मैं अपने को आपकी सेवा में उपस्थित न कर सका और न आप के दर्शन-लाभ ही - किन्तु न शीला महोदया से आकस्मिक भेंट हो और न मुझे आपके दर्शन.....’ शेखर कहने को तो शीला की मुलाकान की बात कह गया किन्तु बाद में कुछ परेशान-सा हो गया ।

तहसीलदार साहब ने अपनी गर्वीली मुस्कराहट में पूछा—‘शीला की आपसे किम अकस्मात से भेंट हुई ?’

शेखर कुछ घबरा-सा गया ।

शीला अपने पिता के समीप ही बैठी थी । लाइ से इनके और निकट बिस्मक आई और अपने कोमल हाथों को गोद में रखकर लजाती-सी बोली—‘पिता जी... यह भूल से हमारे ‘क्लब’ में आ चुके थे । मैं समझी मिस्टर राजीव हैं, पर निकले यह... फिर इन्होंने आते ही हम सबको ‘चैलेंज’ दिया और सब तो यह है कि इन्होंने किसी को एक सैंट भी जीतने नहीं दिया ।’ कहकर शीला कनखियों से हँसने लगी ।

शेखर के मन का बोझ मानो ‘हल्का’ हो गया । उसने सुन्न की एक साँस ली ।

‘आएलो ! खूब ! खूब ! आप टेनिस के खिलाड़ी हैं ? आपको इस लम्बे कद का भी तो लाभ प्राप्त है ।’ तहसीलदार साहब ने मुस्कराकर कहा ।

‘अरे साहब, यह अपने से कई इञ्च ऊँचे देवों को टेनिस में पछाड़ चुके हैं ।’ चन्द्रहास ने कहा ।

‘खूब ! खूब ! आप भी टेनिस खेलते हैं ?’ तहसीलदार साहब ने पूछा ।

‘जी, मामूली-सा । मेरे प्रिय खेल हॉकी और फुटबॉल हैं ।’

‘ओह ! अच्छा, तो आप अधिकमर्दाना हैं ?’ तहसीलदार साहब ने अपनी समझ में अत्यंत परिहास पूर्ण वाक्य कहा—और फिर इतने हँसे कि मुख गीर बहूटी की भाँति लाल हो गया ।

‘अपनी मर्दानगी का सबूत तो चन्द्र इस वारदात से ही दे चुके हैं जो आपके सामने अभी उपस्थित की जायगी ।’ शेखर ने उन्हें प्रसन्न-चित्त देख हास-परिहास में सम्मिलित होने हुए कहा ।

‘ओह ! वारदात ... कितना अपराधपूर्ण और वज्रनी शब्द है । मुझे आश्चर्य है कि यह मिस्टर चन्द्रहास से कैसे उठा होगा ।’ उन्होंने फिर हँसकर सोफे पर पीठ टेक दी ।

‘आपकी प्रदान की हुई मर्दानगी से ।’ चन्द्रहास ने परिहास को चालू रखते हुए कहा ।

‘अख्खाह ! बहुत योग्य, बहुत सुन्दर—मुझी ने बहुत पागलपन से वारदात का जिक्र किया था ।’

‘मुझी ? मुझी कौन ?’ शेखर और चन्द्र ने साश्चर्य पूछा ।

‘यह बैठी हैं न बिल्ली ।’ शीला के मुँह को प्यार से मसलकर वह बोले और फिर खूब हँसे । फिर कहा—‘अरे भाई, यह साड़ी में दुबकी हुई ‘बेटी’ तो बिल्कुल दुल्हन बनी बैठी है । शीला, जाओ तुम उससे बात करो ।’

शीला बोली—‘अभी वह खुद आपसे बात करेंगी ।’

तहसीलदार साहब बोले—‘कितना अच्छा मालूम हो रहा है मेरा कमरा तुम लोगों से । मेरी चञ्चल शीला, दो सुन्दर-सुन्दर युवक, एक प्यारी-प्यारी लजीली बच्ची ।’

‘पिता जी, कैमरा लाऊँ?’ शीला ने मुस्कराकर पूछा ।

‘चिश—यह तस्वीर आँखों में रहेगी बिटियाँ !’ उन्होंने जल्दी-जल्दी साँस लेते हुए कहा ।

‘तो श्रीमान्, आप यदि आज्ञा दें तो अब खास मामले को पेश करूँ?’ शेखर ने लरजते हुए स्वर में कहा ।

‘खास मामला ? पेश ? खास है ?—यही कि मिस्टर चन्द्रहास इस प्यारी बच्ची को इसके माता-पिता की बिना अनुमति के ले आए हैं अर्थात् उन्होंने एक छोटा-सा डाका मारा है ? यही मामला है न?’

‘जी—ऐसा ही । हुआ यह कि चन्द्र बिना किसी चेष्टा अथवा विचार के नयन को अपनी कार में बिठाकर चल दिये और रास्ता भूल जाने के कारण कई रोज़ इधर उधर भटकते रहे । इस बीच नयन के रिश्तेदारों ने चन्द्र की गिरफ्तारी का वारण्ट निकलवा दिया । अब संपूर्ण घटना आप चन्द्र के मुँह से सुनिए ।’ शेखर ने कहा ।

‘नहीं, नयन के मुँह से । केवल नयन की भाषा और लिखावट चन्द्र को बचायगी । इसके अच्छी तरह पढ़ी ता पढ़ा ही है न मिस्टर चन्द्र?’ उन्होंने फिर जोर से हँसते हुए कहा ।

‘जी नहीं । मुझे किसी ने बहकाया नहीं है ।’ नयन ने पहली बार हँस दिजाये । उसके पश्चात् अपने उन्हीं शब्दों में जो शेखर ने उसकी

स्मृति में जमा दिए थे, अपना बयान लिखा दिया। बयान की वह अंतिम पंक्ति उसने हटा दी थी।

‘वाह, वाह ! बढ़ी अच्छी, बहुत अच्छी ! किन्तु यह तो अधूरी कहानी होगी। इस कहानी का परिणाम क्या होगा, अन्त क्या होगा ?’ तहसीलदार साहब ने मुस्कराकर पूछा।

‘नयन इसके यहीं तक रखना चाहती हैं। इनके विचारानुसार इसका अन्त इनके अधिकार में नहीं है।’ चन्द्रहास ने बताया।

‘पगली—इनके बयान में स्वेच्छापूर्ण बदम का अत्यंत मूर्खता सहित भी यदि अर्थ समझने का प्रयास किया जाय तो सिर के सबसे प्रथम भाग में यही अर्थ आयगा कि भविष्य से विवाह दूर नहीं है।’ यह कहकर वह सोफे से लगकर खूब हँसे...खूब हँसे—‘पगली...दीवानी !’

‘किन्तु...सरकार, विश्वास क्रूरिशतें और भगवान् पर तो लाया जा सकता है किन्तु छाया की भाँति बहुत ही निकट चन्द्र पर नहीं लाया जा सकता।’ चन्द्रहास ने कहा।

‘बहुत सुन्दर—बहुत सुन्दर !’ तहसीलदार साहब ने प्रशंसनीय दृष्टि से चन्द्रहास को देखा।

‘विश्वास की तो यह है कि विश्वास तो गया।’ चन्द्रहास फिर बोला।

शीला बीच ही में बोली—‘विश्वास तो जाने की चीज़ नहीं है किन्तु वर्षा के बादलों की भाँति उमड़ कर आने वाली चीज़ है।’

शेखर भी तपाक् से बोला—‘जहाँ मनुष्य के नेत्र नहीं जाते, जहाँ उसकी बुद्धि नहीं जाती—वहाँ वह आन्तरिक, आत्मिक तथा इन्द्रिय जन्म (ज्ञानेन्द्रियों द्वारा उत्पन्न होने वाला) अनुभव की ही शरण लेता है और उसी ‘अनुभव’ को ‘विश्वास’ की संज्ञा दी गई है। वहाँ तर्क नहीं

चलता, प्रश्न नहीं उठने, जिज्ञासाएँ मेह नहीं खोजतीं । क्योंकि तर्क बुद्धिगम्य विचारों तक सीमित हैं और वस्तु-स्थिति का विचारों द्वारा विश्लेषण ही तर्क है—किन्तु एक अवस्था, एक सीमा ऐसी आती है जहाँ बुद्धि नहीं जाती—कुण्ठित हो जाती है और केवल एक 'निश्चित दिशा' की ओर संकेत मात्र कर देती है, वहाँ प्रार्थना—समाज अपने को विश्वास पर अवलंबित करता है । उस करना पड़ता है क्योंकि उसे एक 'सूत्र' की आवश्यकता है जो उन्हें परस्पर एकत्र कर सके । तर्क ही तर्क पर तो सब कुछ नहीं है, वहाँ प्रार्थना—मानविक सङ्गठन तथा धर्म के लिए विश्वास अनिवार्य होकर रह गया है । विश्वास का कंक्रियत कुछ उस बन्द दरिया की सी है जिसमें बहाव लहरों की शक्त में एक हृद पर आकर किनारे से टकराता है और फिर झकोले खाता वापस लौट जाता है ।'

'बहुत सुन्दर ! बहुत सुन्दर !' तहसीलदार साहब ने अपनी मोटी-मोटी धथेलियों का खुरी में मलते हुए कहा ।

चन्द्रहास बोला—'नयन की भावनाएँ वास्तव में बहाव ही बहाव हैं, अभी इनमें रोक पैदा नहीं हुई है । यही कारण है कि विश्वास की प्रेरणा इस तूफान के थपेड़े खाती चली जाती है ।'

'दोनों युवक बुद्धिमान हैं । मिस्टर राजीव ऐसी बातें नहीं किया करते । उसका भी आदमी बनाओ, यह बातें सिखाओ ।' तहसीलदार साहब ने कहा ।

शेखर ने कहा—'मनुष्य के चरित्र का निर्माण कुछ एक बातों पर निर्भर करता है किन्तु उनमें से सबसे सुहृद साधन अपनी वेगवान तथा प्रबल भावनाओं को अपने अर्धानस्थ कर लेना ही है, न कि वासनाओं की स्वयं को कठपुतली बना देना । किन्तु इसमें 'स्त्री' का सहयोग उतना ही आवश्यक है क्योंकि 'नारी' पुरुष की शिक्षिका है । यदि वह सच्चे

अर्थ में नारी है तो घर छोड़कर घर की रक्षा के निमित्त कन्धे पर बन्दूक धरने के लिए आह्वान पाने पर तथा पुरुष का प्रोत्साहन पाने के लिए लालायित न रहकर सोते, बैठते—जागते, प्रतिपल उसे यही सोचना है कि वह 'नारी' है जो पुरुष को पुनर्जन्म देती है तथा उसकी रचना पुनः करती है। वह विलास की सामग्री नहीं है, कोई खिलौना नहीं है और न कोई पदार्थ ही—ऐसा कुछ सोचकर उसे समाज की नींव पर कदम उठाने हैं—ऐसा कुछ सोचकर कि वह संसार के प्राचीनतम उन्नत देश भारतवर्ष के सादे, आदर्शपूर्ण नारी जीवन में सदा पूर्ण सुशीलता से गृह-प्रबन्ध को अपने कर्तव्यों पर संभाल, अपनी बुद्धिपूर्ण मंत्रणा से पुरुष के बाहरी जीवन में जनित थकान तथा कष्टों को मिटाकर अपना अद्भुतगिनी नाम सार्थक करना है न कि अपने इस गौरवपूर्ण आदर्श को धलपित पाश्चात्य आदर्श से बदलकर मेहगा सौदा करना है—स्वयं को गड़हं में गिराना है और साथ ही पुरुष को पतन की राह पर डकेल देना है।' शेखर भावातिरेक में हाँफने लगा था।

'बहुत बुलंद ! बहुत बुलंद किन्तु बात पूर्णतया हमारी समझ में न आई।' तहसीलदार साहब ने कहा।

'साफ़ शब्दों में अर्थ यह है कि इन्सान अपनी जिन्दगी में एक स्थान ऐसा अवश्य बना ले जहाँ पहुँचकर वह अपनी पूरी-दूरी पराजय को स्वीकार करने पर विवश हो जाय।' चन्द्रहास बोला।

'यानी थोड़ा सा 'उत्पलन' और थोड़ी सी 'गधा-प्रवृत्ति' कम करके सुथरी-सुथरी मानवता से भर ले।' नयन ने प्रथम बार परिहास में भाग लेते हुए कहा। वह चाहकर भी यह फ़िकर न रोक सकी—

'ओ—बेहद सुन्दर !' तहसीलदार साहब ने हसते हुए सोफ़े पर लुढ़क कर कहा—'कितनी सुन्दर सोसायटी है—काँच से भी अधिक साफ़, स्वच्छ !'

‘किन्तु मेरी बहन नयन का भविष्य अभी तक चरित्र-निर्माण, समुद्र का बाँध, तूफान, बहाव और उल्लू-गधे की सीमा से आगे नहीं बढ़ सका है ।’ शीला ने हँसते हुए कहा ।

‘भई, अगर चन्द्रहास में लड़कियों को उबाने की आदत पुरानी और स्थायी नहीं है तो इनसे अधिक उपयुक्त और अच्छा ‘वर’ नन्ही-सी नयन के लिए नहीं मिल सकता है ।’ तहसीलदार साहब ने कहा और फिर इतने हँसे कि चेहरा अङ्गारा हो गया ।

‘श्रद्धेय, इस सुनहरे अनुभव के पश्चात् मेरे साथ प्रत्येक गर्वीली लड़की से आशा तो नहीं की जा सकती कि आप जैसे अच्छे मजिस्ट्रेट के सम्मुख जाकर परिष्कृत तथा निष्कपट हृदय नयन की भाँति जेल बचाव का बयान दे सकती ।’ चन्द्रहास ने कहा ।

‘ओह...हाँ, इस बयान को सुरुचिपूर्ण ढङ्ग से रजिस्टर करके ऑफिस में रखवा दिया जायगा और इसकी प्रतिलिपि हमारे हस्ताक्षर से आपको मिल जायगी ।’ तहसीलदार साहब ने कहा ।

‘अनेक-अनेक धन्यवाद !’ चन्द्र और शेखर ने बहुत ही कृतज्ञ होकर कहा ।

‘और अपनी अच्छी बहन की ओर से मैं अपने अच्छे पिता को धन्यवाद देती हूँ ।’ सुसाराकर शीला ने कहा ।

‘बहुत पूर्णता-सी आती जाती है तुझमें शीला--अच्छा, अब खाने का समय हो गया है, तुम लोगों की ‘ग्राँड’ बातों ने हमारी भूख को बहुत तीव्र कर दिया है । अरे लेकिन शीला, यह तुम्हारी सहेलियाँ कहाँ हैं ? उनके भी तो बुलाया था न तुमने ?’ तहसीलदार साहब ने कहा ।

‘जी हाँ ! नौ बजे आयेंगी, अभी तो दस मिनट हैं ।’

‘अच्छा, जाकर मेज़ पर खाना लगवाओ, वह भी आती ही होंगी—
भागो-भागो, मेरा पैर कुचल दिया ।’

कुछ देर बाद शोभा, हरबन्स, जुवेदा, आशा और रक्त आ गईं ।
सबने तहसीलदार साहब को प्रणाम दिया । जुवेदा और रक्त ने
सलाम ... और आदरपूर्वक एक जगह बैठ गईं । जुवेदा और रक्त बुर्के में
थीं और शोभा, हरबन्स आज़ाद ।

‘ओफफो’ ‘बच्चियो, तुमने बड़ी राह दिखाई । आओ, मैं तुम्हारा
परिचय अपने नये मेहमानों से कराऊँ । अरे रक्त, तू अपने बुर्के में से
भी हँसती हुई नज़र आ रही है । इस लड़की की हँसी कभी बन्द होती
ही नहीं ।’

परिचय का कार्य समाप्त हुआ । सब मेज़ पर यथा-स्थान बैठने को
ही थे कि शीला हाँफती हुई आई और बोली—‘राम-राम, सब
मज़ा किरकिरा हो गया ! दो बुर्के और... खाने का मज़ा नहीं आने
का पिता जी !’

‘तो तुम लोग उधर दूसरी मेज़ पर बैठ जाओ । अब यह दोनों युवक
बुर्के और साक्षियों को देखेंगे या खाना खायेंगे ?’ तहसीलदार साहब
ने कहा ।

‘मैं चन्द्रहास के सम्बन्ध में तो कुछ कह नहीं सकता । हाँ, अपने
बारे में विश्वास दिला सकता हूँ कि किसी को नहीं देखूँगा । वैसे शोभा
और हरबन्स तो मेरी देखी हुई हैं ही ।’ शेखर ने कहा ।

‘और न मैं किसी को निचाले में लपेट कर खाने की कोशिश ही
करूँगा ।’ चन्द्रहास बोला ।

खैर दो मेज़ें लगा दी गईं । एक ओर लड़कियाँ और दूसरी ओर
‘मर्द’ बैठ गये ।

नवन बोली—‘हाँ, वह निवाले में खा जायँगे। शेखर, इन्होंने सफ़र में अपने आदमियों के खाने के क्रिस्ते सुनाकर मुझे कितना डराने की कोशिश की थी।’

सब हँस पड़े।

चन्द्रहास बोला—‘भूल में सब उचित है किन्तु ऐसे खाने की मौजूदगी में, मेरे खयाल से किरा को डराने का ज़रूरत नहीं है।’

फिर खिलखिल हुई !

तहसीलदार साहब ने खीर में रोटी का एक कौर डुबोते हुए कहा—‘बेटी आशा, तू बहुत मोटी होती जा रही है। तेरा बाप तो डाक्टर है, उससे यह कहकर दुबले होने की दवा क्यों नहीं खाती?’

आशा मुँह ही मुँह में कुछ फुसफुसा कर रह गई।

‘चाचा जी, यह कह रही है कि इनके वालिद ने दुबले होने की तमाम दवाएँ आपके लिए उठा रखी हैं, किसी को देने ही नहीं।’ जुबेदा ने अपनी ओर से घबकर कहा।

सब हँस पड़े !

‘यह मुझसे मज़ाक ? सँभालूँ डंडा ?’ तहसीलदार साहब ने हँसकर कहा। फिर बोले—‘अरे, यह रफ़त बेटी चुप-चुप क्यों हँसे जा रही है?’

‘चाचा जी, यह इन साहब को देखकर हँस रही है जिनकी नाक की एक टिड्डी इतनी देर से ‘परकम्मा’-सी कर रहा है।’ शोभा ने शेखर की ओर संकेत करके कहा।

‘ओह अच्छा !’ और फिर सबने कहकहा लगाया।

चन्द्रहास बोला—‘नयन, क्या हम उस दिन उस विचित्र-से खाने को खाने के बाद यह आशा कर सकते थे कि भगवान् हमको जल्दी ही इतना सुन्दर और स्वादिष्ट खाना खिलायेगा ?’ और यह कह, उसने बादाम के हलुए में चर्मच डुबो दी ।

‘वह विचित्र खाना कैसा था ?’ पूरी को मूँग की बर्फी में लपेटते हुए शीजा ने पूछा ।

‘कम से कम एक इंच मोटी होगी और दुश्मन के खून से पतली दाल ।’ चन्द्रहास ने कहा ।

‘कैसे खाया गया होगा आपसे यह खाना ?’ तहसीलदार साहब ने आलू का साग खाते हुए कहा ।

‘मैं तो दाढ़ पीकर खड़ा हो गया था । रोटियाँ सारी नयन ने खाई ।’ चन्द्रहास बोला ।

‘तब ही भूख की कुश्ती आप हम समय अच्छी लड़ रहे हैं—और कुश्ती का लंगर यों बेजिम्मी से उठा दिया ।’ रफ़्त ने आम के अचार को निर्दयता से दाँतों के बीच खींचते हुए कहा ।

‘जो भाई, हमारे विरुद्ध फ़ौज तैयार हो रही है । तुम कहते हो शेखर कि इन सबको तुम टेनिस में पीट चुके हो, आज मैं इन लोगों को खाने में पछाड़ता हूँ ।’ चन्द्रहास पानी पीता हुआ बोला ।

‘हममें तो कोई भी आपका मुकाबला करने वाला है नहीं । निश्चिन्त रहिए—चाचा जी की ओर से ही हमें तो कुछ-कुछ आशा है ।’ शोभा ने फटाक किया ।

‘पियेगी यह छोकरी अब मेरे हाथ से ।’ तहसीलदार साहब ने खीर पीते हुए कहा ।

चन्द्रहास बोला—‘रहने भी दीजिए सरकार ! इन हड्डियों को पीट कर क्या कीजिएगा—भिनभिनाने दीजिए इनको भी टेबुल पर । देखिए अब किस ओर से ‘ग्याऊँ’ शुरू होती है ?’

खिलखिल ! खिलखिल ! कितनी मधुर और सङ्गीतमय ध्वनि ।

तहसीलदार साहब सहसा प्रसङ्ग बदलते हुए बोले—‘शेखर, सुना है कि तुम भी सरोज की ढूँढ में दुबले हुए जा रहे हो ?’

‘जी-जी हाँ—लेकिन—’ शेखर इसके लिए प्रस्तुत न था, उसे स्वप्न में भी आशा नहीं थी कि सरोज उनके परिहास का विषय बन जायगी ।

चन्द्रहास ने अधीर हो शेखर से पूछा—‘यह सरोज कौन पहेली है ?’

‘लड़कियों के गायब होने की घटनाएँ शहरों तक ही सीमित नहीं हैं, यहाँ से भी एक लड़की गायब हो गई है ।’ शेखर चाहता था कि सरोज का जिक्र आगे न बड़े, इसलिए उसने तहसीलदार साहब की बात को यहीं समाप्त करते हुए फिर विनोद का रवैया धारण किया । और मज़ाक होने लगे, कटाक्ष और व्यङ्ग्य हुए, खिल-खिल हुई, कहकहे लगे । खाने में मज़ा आ गया । चार आदमी बैठ कर खाते हैं और वह भी हँसी-मज़ाक के साथ तो मज़ा आ जाता है । खाया भी जाता है खूब और खून भी बढ़ता है खूब । अस्तु खाया भी गया भर पेट और खून भी बढ़ा ढेर-सा । ढेर सा पितना, यह कोई रासायनिक ही बता सकता है ।

१३

खाने के पश्चात् लड़कियाँ अलग सोफ़ों पर जा बैठीं और छेड़-छाड़, हँस हँसादि करने लगीं । इधर शेखर, तहसीलदार साहब और चन्द्रहास

बहुत देर तक जाने' करते रहे। आखिर तहसीलदार साहब को जँनाइयाँ आने लगीं। एक बार बाकायदा मुँह फाड़ कर बोले—'मैंने कोई पार्टी ऐसी 'ऐनजोय' नहीं की जैसी आज की है। मैं आप लोगों को बहुत-बहुत धन्यवाद देता हूँ और आशा है मुझे कि आप प्रायः मिलते रहा करेंगे। अच्छा, अब हमें तो भाई बड़ी ज़ोर की नींद आ रही है, आप लोग आनन्द से त्रिज इत्यादि में जाँ बहलाइए। अच्छा, शुभ रात्रि....।'

तहसीलदार साहब के चले जाने के पश्चात् चन्द्रहास ने शेखर से अपनी 'आप-बीती' सुनाने का अनुरोध किया। तो शेखर ने उसे सरोज के संपूर्ण हालात, उसका गायब होना, वीरेन्द्र की हालत और सरोज के 'दर्शन' का सारा हाल सुना दिया। फिर बोला—'यही कारण है कि मैं शीला को प्राप्त करने में असमर्थ हूँ। चन्द्र, सरोज मेरे समस्त प्राणों पर छा गई है।'

'किन्तु उसने अनूपसिंह के यहाँ क्यों शरण ली है और वहाँ पहुँच कर, छिपकर वह कितने कागज़ों का अध्ययन किया करती है? मालूम ऐसा होता है कि अनूप की डायरी उसे अपने माता-पिता को ढूँढ़ने में सहायक सिद्ध हो रही होगी—वरना कोई कारण नज़र नहीं आता कि वह ऐसे भयानक मकान में अपने को कैद करके रखे। उसके अतिरिक्त मैं तुम्हें यह भी विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि अनूप की नौकरानी सरोज से मिली हुई है और वही उसके खाने-पाने की व्यवस्था करता है।' चन्द्रहास बोला।

'बिल्कुल यही बात है। मेरा दिल गवाही दे रहा है कि अनूप की अनुपस्थिति से आज की रात वह अवश्य लाभ उठायेगी और उस भयानक बन्दी-गृह से निकल कर कुछ सण को ताज़ा हवा खाने बाहर निकलेगी। ग्यारह बजने वाले हैं। उस सुनसान मकान के आस-पास,

दूर-दूर तक किसी सौँस लेने वाली 'जान' के आसार नज़र नहीं आते होंगे। यह रात मेरे जीवन की सबसे भारी रात है। मैं आज अपनी सरोज को अपने सामने पाऊँगा। अच्छा... अब मैं चलता हूँ। तुम थोड़ी देर बाद नयन को लेकर धर्मशाला पहुँच जाना और मेरी राह न देखना, पता नहीं—मुझे वहाँ कितनी देर लगे और कौन सी परिस्थितियाँ मेरे सम्मुख आयँ जिनका मुझे सामना करना पड़े। कुछ कह नहीं सकता—कुछ बता नहीं सकता।' शेखर विचलित-सा नज़र आ रहा था। उसके मुख पर आशा और आशङ्का, भिन्न और आह्लाद, तड़प और बेकली का विचित्र-सा समावेश अङ्कित हो रहा था। उसके प्राण सरोज की एक झलक मात्र-को देख लेने के लिए पागल हो रहे थे... वह विचित्र रूप से कुसमुदा रहा था।

चन्द्रहास बोला—'शेखर, क्या तुम अपने विचार में बिल्कुल सुरक्षित हो और तुम्हें किसी साथी की ज़रूरत नहीं?'

'हाँ, बिल्कुल नहीं। मैं अकेला ही कुछ काम कर सकता हूँ और अभी मुझे किसी प्रकार का कोई भय नज़र नहीं आता।'

'कन्तु वह पागल वीरेन्द्र?'

'उसकी ओर से भी अभी कोई खतरा नहीं है।' यह कह कर शेखर ठठ खड़ा हुआ।

'हैं—कहाँ चल दिए?' शीला ने उसके पास आकर पूछा।

'शीला, अब मैं आशा चाहता हूँ। दो-तीन बहुत आवश्यक काम हैं और इसी वक्त करने के हैं। आज जो कुछ भी तुमने मेरे लिए किया है, उसे मैं जीवन-पर्यन्त नहीं भुला सकूँगा।'

शीला चुप।

और शेखर चलने लगा।

तो शीला से न रहा गया, पूछा—‘अब कब आइएगा ?’

‘ओह, मेरी अच्छी शीला, तुमने फिर वही वादे लेने आरम्भ कर दिए। खैर, अच्छा, हाँ सुनो। अच्छा होगा यदि राजीव तुम्हारे हाथ से न निकलने पाये। उसे, मुझे पूर्ण आशा है, तुम्हारा होशियार दिमाग ‘आदमी’ बनाने में असफल न होगा।’ और शेखर चल दिया।

राजीव ! राजीव ! राजीव ! शीला के दिल के मानो यह शेखर टुकड़े-टुकड़े कर गया।

जब देखो तब राजीव—आखिर यह शेखर... इतना निष्ठुर, इतना निर्मम क्यों ?

शेखर सदैव अनूप के मकान का चक्कर काट कर जाता करता था जिससे किसी को सन्देह न हो। अभी वह नदी की ओर मुड़ा ही था कि वीरेन्द्र से मुठभेड़ हो गई। उसे देखकर वीरेन्द्र बोला—‘ओहो, शेखर—किधर ?’

‘कोई खास बात नहीं। आज तहसीलदार साहब के यहाँ दावत थी। खाना कुछ ज्यादा खाने में आ गया तो सोचा ज़रा टहल आऊँ—।’

हूँ, देखो शेखर, अपने को सँभाले रहो। वीरेन्द्र के अतिरिक्त प्रत्येक दूसरा आदमी जिसके सिर में सरोज का सौदा है, कुचल दिया जायगा। समझे ?’

‘वीरेन्द्र, कभी-कभी तो तुम बिल्कुल पागलों की सी बातें करने लगते हो।’ शेखर हँसा।

‘हाँ, मैं पागल हूँ, मैं सौदाई हूँ और किसी को सौदाई देखना पसन्द नहीं करता।’

‘बहुत अच्छा विचार है, प्रेमियों के यही तौर होते हैं । अच्छा, मैं ज़रा टहल आऊँ । फिर मिलेंगे ।’ और यह कह कर शेखर चला दिया ।

जहाँ तक शारीरिक तथा बाह्य शक्ति का सम्बन्ध है, वीरेन्द्र पहाड़ था किन्तु बुद्धिमत्ता में शेखर के सम्मुख न पिही था, न पिही का शोरबा । यह शरीर और दिमाग का द्वन्द्व था, जोड़ थी - ।

शेखर पेड़ों की छाया में से गुज़रता हुआ चला जा रहा था । कभी-कभी मैदान में चाँद की हल्की-सी रोशनी दिखाई दे जाती थी वरना चारों ओर काले-काले भीमकाय पहाड़ों की छाया और पेड़ों की छाया एकाकार होकर वीभत्स रूप धारण कर रही थीं । शेखर का हृदय तीव्र वेग से स्पन्दन कर रहा था । क्या वास्तव में वह उस रूप-सी सरोज के मग्न अग्नि को पा सकेगा ? या यह केवल कल्पना मात्र है—केवल एक स्वप्न ? एक मृग-मरीचिका .. ?

फाटक के पास पहुँच कर उसने धीमे से बगीचे के तारों को छलंगा और पेड़ों की छाया में छिपता हुआ इवेली की पूर्वीय दिशा की ओर पहुँचा । चारों ओर मृत्यु का-सा सन्नाटा छाया हुआ था । शेखर आँखियों को ओट में खड़ा होकर सोचने लगा कि वह बुर्ज़ा की ओर जाय अथवा बर्गाचे की ओर । सोच ही रहा था कि उसने चाहरदीवारी के पीछे कुछ कुन्कुसाहट-सी सुनी । वह काँप उठा और अच्छी तरह छिप कर खड़ा हो गया । कुछ ही देर में चाहरदीवारी का गुप्त द्वार धीमे से खुला और उसमें से एक स्त्री शाल कन्धे पर ढाले धीमे से निकल कर बिल्कुल उस झाड़ी के पास से निकलकर गुज़री जहाँ शेखर खड़ा था छिपा हुआ, दुबका हुआ । वह बगीचे के दूसरे भाग में जाकर एक कोने में न जाने कहाँ बिलीन हो गई ।

अब शेखर ने साँस लिया—अब तक साँस रुका हुआ था ।

वह कुछ देर वैसे ही दुबका हुआ खड़ा रहा... फिर बहुत सँभलकर छिपी हुई जगह से निकलकर बगीचे के पश्चिमी भाग में प्रवेश किया । अभी उसकी ढूँढ़ने वाली उत्सुक आँखों किसी को देख न पाई थीं कि धीमे स्वर में गाने की आवाज़ उसके कानों के पर्दों से टकराई । जैसे कोई प्राणी अपने अन्तर की समस्त वेदना, समस्त विवशता को वातावरण में घोलने का प्रयास कर रहा था—उसने एकस्थ और एकनिष्ठ भाव से सुना, हृदय में पार होने वाले स्वर में वेदना झड़ रही थी ।

‘पड़ी हुई जो राज मार्ग पर अवहेलित चरणों की रेल ।

उसे उठाने के उपक्रम में धूलि धूसरित करो न देव...!’

शेखर आत्म-विस्मृत-सा हो गया । फिर—बहुत ही दबे-दबे पैरों से आगे बढ़ा । चाँद की रोशनी में, एक खुले से चौक में, जिसके चारों ओर अनार के पेड़ खड़े थे, चाँद की ओर मुँह किए... वह बैठी धीमे-धीमे गा रही थी । शेखर ने एक ही दृष्टि में पहचान लिया, वह सरोज थी—सरोज, उसके स्वप्नों की मलका । शेखर रेंगता हुआ चौक के निकट पहुँचा और किसी प्रकार अपनी वाणी पर अधिकार पा, हँसे-से बोला—‘सरोज ! सरोज ! सरोज !’

सरोज पर मानो बिजली-सी गिर पड़ी । एक दम चौंक कर भयभीत दृष्टि से उसने इधर-उधर देखा, मानो हिरणी की भाँति छलाङ्ग मार कर विलीन हो जाना चाहती है । उसके पश्चात् उसने शेखर को देखा—सीधी नज़रों से साधारणतया और... ।

‘सरोज ! सरोज महोदया नमस्ते...!’ शेखर का स्वर लड़खड़ा रहा था ।

‘आप कौन हैं ?’ उसने क्रुद्ध दृष्टि से शेखर को देखते हुए पूछा ।

‘सिर्फ एक मुसाफिर...।’ किसी प्रकार बोल पाया शेखर ।

‘लेकिन...लेकिन...।’

‘कुछ नहीं । एक मुसाफिर के अतिरिक्त और कुछ नहीं हूँ । कुछ दिनों से आपके कस्बे में आया हुआ हूँ ।’

‘तो आप—शेखर—आप ही हैं ?’

‘आपका खयाल ठीक है । मेरा अनुमान यदि भूल नहीं करता है तो मेरा नाम आपको नौकरानी ने बताया होगा ?’ शेखर अब प्रकृतिस्थ हो गया था ।

किन्तु शेखर के इस प्रकार अनायास आकर विघ्न डालने ने सरोज को क्रोधित कर दिया था । उसकी सुन्दर और मदभरी आँखों में भय, निराशा और क्रोध के भाव स्पष्ट दिखाई दे रहे थे । वह सबसे अधिक इस बात से डरी हुई थी कि अब उसकी मारी ‘स्कीमे’ मिट्टी में मिला जायँगी ।

वह हड़ स्वर में बोली—‘तो फिर आपके यहाँ आने का तात्पर्य क्या है ?’

‘जो तात्पर्य आप बना दे ।’

‘क्या—किसी को कस्बे में यह सन्देह है कि मैं यहाँ...।’ और सहसा वह रुक गई ।

‘जी, ज़रा भी नहीं, बिल्कुल नहीं । सिवा मेरे और कोई नहीं जानता ।’ और तब शेखर ने देखा कि सहसा उसके मुख पर संतोष और हल्का-सा सुख नाच उठा । तनी हुई भवें कुछ ढीली पड़ गई ।

‘मैंने कैसी मूर्खता की है । मैं बाहर क्यों निकल पड़ी ? आह—मैं अपने ही हाथों बनाई हुई उस कैद से कितनी तज़्ज़ुब आ गई थी ।’ और

सहसा वह फिर रुक गई और ऐसा प्रतीत हुआ जैसे आगे वह और कुछ नहीं कहना चाहती ।

‘यदि मैं नहीं निकलती तो आपको भी मेरा पता न चलता ।’ वह जैसे पछता-पछता कर बोल रही थी ।

शेखर संयत स्वर में बोला—‘किन्तु मुझे जरूर पता चल जाता ।’

‘किस तरह ?’

‘मेरे पास अनेक साधन हैं ।’

‘जैसे ? जल्द बताइए ?’

‘सबसे पहला तो यह कि मैं आपका चित्र लच्छीराम जी के यहाँ देख चुका हूँ ।’

‘यह तो ऐसी कोई खास बात नहीं है ।’

‘इसी की तो सहायता से मैंने आपको जब आप बुर्गी की खिड़की में से दो-तीन दिन हुए बाहर की ओर भाँक रही थीं, पहचाना है ।’

‘क्या—?’

‘हाँ, दो-तीन दिन हुए मैं आपको रात को देख चुका हूँ ।’

‘अच्छा ! कहाँ से ?’

‘ठीक—आपकी खिड़की के नीचे मैं छिपा खड़ा था ।’

‘लेकिन आपने यह कैसे मान लिया कि वह मैं ही थी, सम्भव है नौकरानी हो ?’

‘जी ! वह ऐसी बेसुध बनाने वाले ‘नैनो’ की मालिक कब है—उसका मुख इतना दीप्त कहाँ—इतना आँखों को चँधिया देने वाला

भड़कीला और प्रकाशमान, दैदीप्यमान कहाँ ? उसमें इतना सुवास, इतना सौरभ, इतना सौंदर्य कहाँ—? वह सरोज कब ? वह तो खुशबू की स्मृति है—ताज़गी का अवशेष मात्र और रूप का शव । वह डलती हुई धूप है—और यह ‘‘ मैं आपका चित्र देख चुका हूँ जिसको विस्मृत कर देना अब सम्भव नहीं रहा । ’

वह क्षण-भर कुछ खो-सी गई । आवाज़, हतप्रभ खड़ी रह गई । यह ‘‘ यह ‘‘ अपरिचित—क्या कह रहा है ? क्या ? सुख आरक्त हो गया और प्राणों में सनसनी-सी । सहसा ध्यान आया कि वह एक अपरिचित के सम्मुख है—अपरिचित के । तो झट से, साड़ी को माथे पर आगे तक घसीट लिया । और शाल से अपनी सफ़ेद-सफ़ेद चमचमाती हाथों की अँगुलियों को ढँक लिया ।

शेखर को न जाने कैसा लगा ।

वह संभलकर फिर बोला—‘निरसंदेह मैं एक अपरिचित ही हूँ किन्तु आपके हालात से कुछ-कुछ परिचित हूँ इसलिए यदि संकोच हटाकर मैं यह निवेदन करूँ कि हम एक दूसरे से इतने अपरिचित नहीं हैं • तो • • • तो मेरी समझ में अत्युक्ति न होगी । अब जो घटनाएँ हमारे सामने आने वाली हैं, उनको देखते हुए यह किम्भक, यह संकोच और यह लज्जा हम दोनों के लिए—सच, बड़ी कष्टप्रद सिद्ध होगी ।’ शेखर को पता नहीं था, कि वह क्या कहे जा रहा है ।

‘क्या घटनाएँ हमारे सामने आने वाली हैं ?’ उसने सगर्व पूछा ।

‘यही कि • • • मैं अपने आपको आपकी सेवा के योग्य बना सकूँ ।’

‘लेकिन मैंने तो अब तक आपसे इस प्रकार की कोई प्रार्थना नहीं की है ।’

‘बिल्कुल सही है, किन्तु मैं तो अपने कर्तव्य को भूल नहीं सकता ।’

‘कर्तव्य ? किम दृष्टिकोण से ? और क्यों ?’

‘मानवीय सहृदयता के दृष्टिकोण से ।’

‘किन्तु आपकी कठिनाइयाँ, उनके हल करने के साधन और आपका कोमल गात--नाज़ों में पला हुआ आपका कोमल गात--यह सब मुझे आपकी सेवा के लिए निमंत्रित कर रहे हैं ।’

‘मेरा यह प्रश्न निरर्थक न होगा यदि मैं आपसे यह कहूँ कि आप मेरे मामलात में व्यर्थ क्यों सिर खपा रहे हैं ? उनसे आपको क्या दिलचस्पी है ? आप जानते हैं कि मेरी तलाश कितनी कठिन थी--यह बात किसी की कल्पना में भी न आ सकती थी कि मैं यहाँ छिपी हुई हूँ -- फिर आपको इतनी चिन्ता क्यों ?’

‘निस्सन्देह कोई सन्देह न कर सकता था कि आप यहाँ हैं; किन्तु क्या आप मेरी दिलचस्पी के रहस्य को जानना चाहती हैं ? खेद है, मैं स्वयं इसे नहीं जानता -- केवल इतना कह सकता हूँ कि आपकी तस्वीर लच्छीराम (जो कदापि आपके पिता नहीं हैं) के यहाँ देखकर मुझे आप--आपके मामलात से दिलचस्पी पैदा हो गई है ।’

‘अच्छा-अच्छा !’ सरोज ने हेरानी से शाल कन्धे से खिसकाते हुए विक्रिपित स्वर में कहा । फिर बोली--‘आपको यह भी मालूम हो गया कि लच्छीराम और उनकी पत्नी मेरे माता-पिता नहीं हैं ?’

‘जी हाँ ! इसके अतिरिक्त मैं उन अन्धे बाबा से भी मिल चुका हूँ ।’

‘अच्छा--?’ यह सरोज पर हेरानी का दूसरा दौरा था । किसी प्रकार सँभल कर बोली--‘फिर उनसे आपको क्या मालूम हुआ ?’

‘खेद है, कुछ नहीं। जो मैंने निर्णय निकाला है, केवल अपने विचारों के सहारे ही निकाला है।’

सरोज कुछ क्षण बिल्कुल चुप हो गई—मानो वह कुछ सोच रही हो, मानो वह भीतर ही भीतर स्वयं से लड़ रही हो, मानो... मानो...।

और शेखर भी विचित्र रूप से खामोश हो गया था। ऐसा प्रतीत होता था जैसे रात्रि की नीरव घड़ियों में दो झुलसे हुए प्राणी जीवन का वह सुख ढूँढ़ने का प्रयत्न कर रहे थे जो किसी अदृश्य, क्रूर दानव ने छीन लिया था। दो निराह, आकुल और वेदनाग्रस्त प्राणी—जीवन का सुख--और अदृश्य के क्रूर पन्जे...।

१४

‘सुनिश्च, मैं आपकी एक कृपा की इच्छुक हूँ।’ सरोज ने निस्तब्धता भङ्ग करते हुए कहा।

‘यदि आप मुझे इस योग्य समझती हैं तो अवश्य कहिए।’ शेखर ने मुस्कराकर कहा। फिर कुछ रुक कर बोला--‘लेकिन इससे पूर्व मैं आपसे यह प्रार्थना करूँगा कि यदि यहाँ से, मेरा तात्पर्य है कि इस चौक से कुछ दूर आप चली चलीं तो अच्छा होगा। माना कि यह हवेली बिल्कुल खाली है फिर भी मैं नहीं चाहता कि आपके लिए किसी खतरे का मौका रहने दिया जाय।’

‘तो क्या आप मेरे रहस्य को रहस्य रखेंगे?’

‘अपने प्रश्न पर पुनः ध्यान दीजिए, यदि मेरी इच्छा रहस्य खोलने की होती तो मैं आपको खतरों से दूर चलने की अभी प्रार्थना न करता ।’

‘सच है, सच है ! निस्सन्देह आप कस्बे के लोगों से और अनूपसिंह से सब कुछ मेरे सम्बन्ध में कह सकते थे—यदि आपकी नीयन भेद खोल देने की ही होती ।...’ और यह कह, वह शेखर के साथ आगे बढ़ गई । कुछ भिन्नकी और आगे बढ़ गई ।

शेखर ने प्रसन्न हो पूछा—‘क्या आप अनूपसिंह से डरती हैं ?’

‘नहीं, यहाँ डर का सवाल नहीं है किन्तु...’

‘अच्छा-अच्छा, मैं समझ गया । यदि अनूप को ज़रा भी सन्देह होता तो वह आपको आसानी से पकड़ सकते थे ।’

‘कैसे ?’

जब आप ‘लैग्प’ जलाकर उनकी डायरी पढ़ रही थीं तो आपका पकड़ा जाना कोई कठिन न था ।’

‘अच्छा तो आप मुझे उस अवस्था में भी देख चुके हैं ? इससे यह प्रतीत होता है कि आप रात-दिन मेरी तलाश में लगे रहते थे--?’

शेखर चुप ही रह गया ।

इतनी देर में वह टहलते-टहलते कुछ दूर आगे निकल आये और एक सुरक्षित-से स्थान पर पहुँच गये । शेखर के अङ्ग-अङ्ग से आह्लाद फटा पड़ रहा था । उसे स्वप्न में भी आशा नहीं कि सरोज से इतनी जल्दी भेंट हो जायगी और वह उसकी सङ्गीतमय, मधुर वाणी और दमदमाते यौवन का इतने निकट से रस ले सकेगा । भाग्य की यह उस पर कितनी असीम कृपा थी कि वह लड़की जिसकी खोज में एक ‘नई बस्ती’ को छोड़ कस्बे

का बच्चा-बच्चा व्यस्त और चिन्तित था केवल इसको नज़र आ गई । और आज वह उससे वर्तलाप कर जीवन का सबसे बड़ा आनन्द उपभोग कर रहा था ।

सरोज ने शेखर के जीवन का रुख बदल दिया था । यदि वीरेन्द्र को इसके विचार ने प्रत्येक कुकर्म और 'पाप' से 'तोबा' करा दी थी तो सरोज की सीधी-सादी स्वच्छ प्रकृति और समस्त प्राणों में हलचल की चिनगारियाँ भर दी थीं और इन चिनगारियों में बहुत सी ऐसी थीं जो बिना धुँआ छोड़े इसकी हस्ती की तह तक बैठती चली गई थीं । आज वह उसके इतने निकट थी कि वह अपनी और उसकी आत्मा में कोई अधिक अन्तर अनुभव नहीं कर रहा था ।

स्वतरे दोनों के सामने थे बल्कि शेखर इस बेपनाह सुन्दर सरोज के कारण बहुत ज्यादा खतरों में पड़ चुका था । इसके चारों ओर ज्यादा आक्रांतें थीं लेकिन वह सरोज को पा लेने के पश्चात् अपने आपका प्रत्येक भय व शङ्का से मुक्त अनुभव कर रहा था । कायरतापूर्ण घटना विहीन सौ वर्ष के जीवन से बहादुरी की मौत कहीं अधिक श्रेयस्कर और सुन्दर है । सरोज की एक-एक हरकत, उसकी एक-एक अदा शेखर को दिल की राज की बातें सुना रही थीं । सरोज की आँखें उसे न समझने वाली कोई कहानी सुनाए जा रही थीं—ऐसी कहानी जो प्रेम से अतिरंजित थी, स्नेह से परिलुप्त, आदर से आद्र थीं—सबको मिलाकर उनमें एक आत्मीयता थी, हृदय की वेदना थी, और आँखों का आँसू था । सरोज जैसे कोई रहस्य-पुञ्ज था—उसका समस्त व्यक्तित्व एक पहेली बना हुआ था किन्तु उसकी भरपूर जिन्दगी किसी कलुषित रहस्य की 'साथिन' नज़र नहीं आती थी । जिन्दगी के बुरे खेल खेलने वालों की सूरतें इतनी प्यारी कब रहती हैं ? सरोज का अङ्ग-अङ्ग दहाड़ कर यह घोषित कर रहा था कि उसने किसी भी व्यसन की एक मामूली-सी

आँढ़ाई भी आज तक न ली थी । वह औरत थी—संसार में सर्वथा अकेली, एकाकी, निराश्रय—जिन्दगी की कड़वी चोटों से निबटने के लिए बिल्कुल अकेली । वास्तविकता यह है कि वह साथ देने वाली हस्तियों से रिक्त थी, वंचित थी । वह जानती थी कि कोई किसी के काम नहीं आ सकता है—कोई उसके भी काम आ सकता है ?

और शेखर ? उसके हृदय में वहाँ—तृप्ति थी, किन्तु उस तृप्ति को स्थिर रखने के लिए लालच का अन्त न था । अन्त न था...सरोज के कुन्तल-स्तवक से सौरभ-उठ-उठ कर उसकी नासिका में प्रवेश कर, उसे बेपुछ-मा बना रहा था । परिष्कृत रूप और रूप की ताजगी से उसका युवा और चञ्चल हृदय उन्मत्त हो लबलड़ा रहा था ।

सहसा उसने सुना, सरोज कह रही थी—‘देखिए, आप यहाँ बिल्कुल अपरिचित हैं । मैं जिस कृपा की आपसे इच्छुक हूँ—वह यह है कि—खैर वह फिर बताऊँगी—अच्छा आप सुन ही लीजिए ।’ आप बिल्कुल अपरिचित हैं, कलकत्ते से केवल मनोरञ्जन के उद्देश्य से यहाँ आये हैं और कस्बे वालों के अनुरोध पर मेरी तलाश में रुचि लेने लगे हैं । क्या आप कृपा कर इन मामलों से जिनका सम्बन्ध मेरे जीवन से है और जो आपके लिए तनिक भी प्रिय नहीं होने चाहिए, अपने को एक दम दूर कर देंगे ? मैं आपसे इसी कृपा की इच्छुक हूँ कि आप कृपा कर मुझे अपनी राह पर स्वतन्त्र छोड़ देंगे ? मैं आपसे किसी अन्य बड़ी कृपा की इच्छुक नहीं, केवल यही चाहती हूँ कि अपने नेत्रों के समुख जो भी उद्देश्य है उसे पूरा करने में बिना किसी विघ्न अथवा रोक-टोक के दौड़ती रहूँ । आप मेरे व्यक्तिगत प्रश्नों से हाथ खेचकर मेरे अन्दर दिलचस्पी लेना बिल्कुल बन्द कर दीजिए । क्या मेरी यह इच्छा, मेरी यह ‘चाह’ अनुचित है ?’ सरोज ने आवेश में शाल कन्धे पर फिर खिसका लिया और शेखर को सिर से पैर तक जाबरवाही से देखने लगी ।

‘मुझे दुःख है, आपकी चाह को पूरा करना मेरे वश में नहीं है ।’

शेखर ने यह कह, आँखें नीची कर लीं । सरोज की आँखें शोले बरसा रही थीं ।

‘आप मेरी इस अभिलाषा को पूरी नहीं करेंगे ?’ उसने कष्ट और तीव्र स्वर में पूछा ।’

‘नहीं ।’

‘आप मेरे दुश्मन हैं ।’

‘नहीं ।’

‘निस्सन्देह आप मेरे दुश्मन हैं—आपके ।’

‘सुनो सरोज....!’ शेखर ने संभलकर कहना शुरू किया—‘मेरा विचार है कि आपके प्रश्नों का इस निर्ममता से उत्तर देने से आपको मेरे सम्बन्ध में गलतफ़हमी हुई । आपका रहस्य मैं कभी प्रकट नहीं करूँगा । वह रहस्य पृथ्वी व आकाश में—किसी से न कहूँगा, कि तुम कहाँ हो । मेरे इस अशिष्ट वार्तालाप करने के ढङ्ग को क्षमा करना । मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि तुम्हारा ‘रहस्य’ सदा मेरी छाती में सोता रहेगा, यदि किसी ने मुझसे छीनने की कोशिश की तो उसे सर्व प्रथम मेरी छाती को चीरना होगा....’ तब कहीं जाकर वह रहस्य उसके हाथों में पड़ सकेगा....’ और शेखर भावातिरेक में काँपने-सा लगा । किन्तु मुख पर उसके एक अपूर्व आभा रँग गई ।

‘धन्यवाद !’ सरोज ने किसी तरह मुलायम पड़ते हुए कहा ।

‘इसके साथ मैं तुमसे यह वादा करने पर भी विवश हूँ कि तुम्हारे अन्दर दिलचस्पी लेना छोड़ दूँ ।’

‘क्यों ?’ उसने साश्चर्य पूछा ।

‘इसके कई कारण हैं; किन्तु दो विशेष हैं । पहला यह कि दिलचस्पी नहीं लेने का फ़र्ज़ अब मेरे बिल्कुल अधीन न रहा और दूसरा यह कि—यह अत्यंत कायरतापूर्ण बात है ।’

‘लेकिन आखिर क्यों ?’

‘क्योंकि तुमको एक दोस्त की, एक हमदर्द साथी की बहुत जरूरत है ।’

‘नहीं । बिल्कुल नहीं । मेरी ज़िन्दगी साथियों से बिल्कुल खाली रही है और न अब मैं उनकी कोई आवश्यकता ही अनुभव करती हूँ ।’

‘सरोज—यह मेरा दुर्भाग्य है कि तुम इतनी निकट होने के बाद भी मेरी पहुँच से बहुत दूर हो । क्या मैं इस योग्य भी नहीं हूँ कि तुम्हारी कोई सेवा कर सकूँ । खुशनसीब है वीरेन्द्र—’

‘जी !’ सरोज ने शेखर की बात का काटते हुए कहा—‘आपको भ्रम हुआ है—ज़बर्दस्त भ्रम ! मैं उसे केवल नाम से जानती हूँ, मेरी कभी उससे बात तक न हुई । सुनती हूँ कि वह मुझे—मेरे पाँछे पड़ा हुआ है । विश्वास कीजिए मैंने उससे आज तक एक पल भी बात नहीं की है ।’

‘किन्तु वह तो तुम्हारे लिए अपनी जान तक न्योछावर करने को प्रस्तुत है ।’

‘मैं इसे केवल ‘अति’-पसन्दी कहूँगी या फिर पागलपन—कुछ भी हो, मेरा उम्मेद कोई सम्बन्ध नहीं ।’

‘खैर, कुछ ही सही । तुम्हें जरूरत एक दोस्त की निस्सन्देह है । तुम्हारे को लेकर जो वीरेन्द्र ने अपने जीवन का ‘नाश’ कर लिया है और केवल एक तुम्हें, तुम्हारी स्मृति को लेकर जीवित है—तो ऐसा आदमी निःसंकोच भाव से ‘दोस्त’ कहा जाने योग्य है ।’

‘आखिर क्यों ?’

‘क्योंकि—छमा करना, वह तुम पर—’ वह उस समय तक चुप न बैठेगा जब तक कि तुम्हारा पता न लगा लेगा । यदि वह अपनी तलाश में सफल हो गया तो निस्सन्देह उसकी वह पागल मोहब्बत तुम्हें खतरे में डाल देगी ।’

‘किस तरह ?’

‘क्योंकि जिस उद्देश्य के पीछे तुम पड़ी हो, वह वीरेन्द्र के प्रेम से साराबोर दिल को सम्मिलित कर देगा, उसका यह ‘पागलपन’ रुकने वाला नहीं ।

‘मैं आपका आशय बिल्कुल नहीं समझ सकी हूँ ।’

‘मैं इस कस्बे में आकर तुम्हारे बारे में सुनता हूँ और इसमें न जाने क्यों दिलचस्पी महसूस करने लगता हूँ । नतीजा यह होता है कि मेरा दिमाग तुम्हारी कल्पना का केन्द्रस्थल बन जाता है और अब जो आदमी तुम्हें देखने से पूर्व ही तुम्हारे में दिलचस्पी लेने लगा था—क्या वह तुम्हें पाने के बाद अपने को एक विश्वस्त ‘मित्र’ की हँसियत से उपस्थित करने में अपना कर्तव्य पूरा नहीं कर रहा ?’

‘लेकिन आप मेरे लिए चिन्तित न हों । मैं अपनी हिराजत की सारी व्यवस्था पहले ही कर चुकी हूँ ।’

‘तुम्हें मालूम होना चाहिए कि अनूप बहुत ही चालाक और होशियार आदमी है । यदि उसे ज़रा भी सन्देह हो गया कि तुम उसके मकान में छिपी हुई हो और ऐसी कारवाइयाँ कर रही हो, तो वह तुम्हारा अहित कर सकता है । वह तुम्हारा दुश्मन हो सकता है, दुश्मन...’ क्योंकि तुम उसका नुकसान चाह रही हो ।’

‘आप किये तरह कह लकते हैं कि मेरा कोई कदम उनके नुकसान के लिए उठ रहा है ?’ सरोज ने उसकी बात काटते हुए कहा ।

‘सरोज, मुझसे तुम्हारी कोई बात छिपी हुई नहीं है । तुम जो अनूप के कागज़ और खरों हत्यादि छिप कर पढ़ती हो तो क्या तुम्हारा यह आचरण उसके लिए घृणा उत्पन्न नहीं करेगा ? क्या वह इस बात को जानकर तुम्हारी जान का दुश्मन नहीं बन जायगा ?... इसीलिए तो कहता हूँ सरोज, तुम्हें बहुत जल्द एक ‘रक्क’ अथवा ‘दोस्त’ की जरूरत है...।’

सरोज निरुत्तर-सी हो गई । शेखर फिर बोला—‘क्या तुम्हारे विचारानुसार तुम्हारी यह कार्रवाई अधिक दिनों तक चल सकती है ? वह एक घाघ है, उसे मालूम हुए बिना नहीं रह सकता । तुम्हारा पता लगाकर और साथ ही यह जानकर कि तुम उसके किसी ‘रहस्य’ से परिचित हो गई हो अथवा रहस्य जानने में लगी हुई हो—बताओ, वह तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार करेगा ? इसके अतिरिक्त तुम्हें यह भी न भुला देना चाहिए कि उसने एक ‘जासूस’ तुम्हारे पीछे लगा रखा है...।’

‘यह तो मुझे मालूम है ।’

‘फिर इन खतरों से बचने के लिए तुमने क्या किया ? रक्षा के लिए कुछ सामान एकत्र किया है ? जब मैं तुम्हारे पथ से इतनी दूर हूँ तो भी तुम्हारे सम्बन्ध में इतनी सूचनाएँ दे सकता हूँ तो क्या वह शख्स जिसके मकान में तुम चौबीस घण्टे छिपी रहती हो, मुझसे अधिक तुम्हारे उद्देश्यों के बारे में नहीं जानता होगा ?...मुझे तो डर है कि हम कहीं इस समय भी...।’

‘आह—ईश्वर के लिए मुझे न डराइए । मैं अपने उद्देश्य से नहीं हट सकती—उसको छोड़ नहीं सकती ।’

‘इसका तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम्हारा उद्देश्य बुरा न होगा किन्तु हम अपने कर्तव्यों को भी तो नहीं भुला सकते ।’

‘ईश्वर साक्षी है—जो मेरा उद्देश्य किसी को दुःख अथवा नुकसान पहुँचाने का हो । वह सर्वथा अकल्पित है, शुभ है । क्या आप मेरे रहस्य को तार-तार तो न कर देंगे ?’

‘मैं इसका उत्तर तुम्हें पहले ही दे चुका हूँ ।’

‘और क्या आप कृपा कर मेरे मामले में बाधा डालना भी छोड़ देंगे—खेद है, मैं आपसे वास्तविकता बयान नहीं कर सकती ।’

‘क्या तुम्हें मेरे कथन पर अब भी सन्देह है ? क्या तुम्हें मेरा विश्वास नहीं सरोज ?’

इस प्रश्न पर सरोज ने पलकें उठाकर शेखर को देखा—परमात्मा के वरदान के समान शीतल, शान्ति पूर्ण शेखर । और हृदय की लू कांचा के सदृश गर्म शेखर । सरोज के नेत्रों में चमक-सी पैदा हो गई ।

‘मैं तुम पर किसी प्रकार की कोई ज़बर्दस्ती नहीं कर रहा सरोज... निस्सन्देह मेरी हैसियत एक अपरिचित की-सी है और यह भी सच है कि इस कस्बे में मेरे पास तुम्हारा विश्वास प्राप्त करने की कोई खास सिकांरिश भी नहीं है; किन्तु अब तक की गई बातें निरर्थक न थीं, बकवास न थीं । तुम्हें निस्सन्देह एक दोस्त की ज़रूरत है । मेरी इस बार-बार की घोषणा को तुम मूर्खता अथवा अशिष्टता न समझो । मैं तुम्हारे कुछ काम आना चाहता हूँ— कुछ काम, दिल से...’

‘क्यों ?’ सरोज ने फिर मुड़कर पूछा ।

‘मुझे स्वयं नहीं मालूम ।’

‘आपको मेरे सम्बन्ध में कुछ भी मालूम नहीं है ?’

‘सिर्फ इतना ही और ऐसा ही जितना और जैसा कस्बे वालों की ज़बान से सुन चुका हूँ । वह सब तुम्हें प्रेम करते हैं और तुम्हारी इज्जत में मरे जा रहे हैं ।’

‘अच्छा, अब मुझे तुरन्त चल देना चाहिए । मैं इतनी देर बाहर नहीं रह सकती ।’

‘क्या—इस पर मैं विश्वास करूँ ?’

‘बिल्कुल—।’

‘और तुम मकान में से आसानी से आ सकती हो—बिना किसी की दृष्टि में पड़े ?’

‘जी !’

इसके पश्चात् कुछ क्षण के लिए वह बिल्कुल चुप हो गई । फिर जैसे चौंकर बोली—‘अच्छा, अब मैं चाजती हूँ । आप मेरे पीछे न आइए ’’।’

‘...।’

‘...।’

‘ओह...अच्छा...।’

सरोज ने चलने के लिए पैर उठाए—पर सहसा रुक गई और मुड़कर बोली—‘अब आप क्या करेंगे ?’

‘स्पष्ट है कि कुछ नहीं कर सकता ।’ व्यथित-से स्वर में शेखर बोला ।

कुछ क्षण सरोज सोचती सी खड़ी रही, फिर बोली—‘अच्छा तो एक काम यह कीजिए कि दूसरी बार हवेली पर न आइए । आप कहते हैं कि आप मेरे शुभचिन्तक हैं, तो कृपा कर मेरा कहना मानिए और अपने होठ बिल्कुल बन्द रखिए ।’

‘मैं इसका पहले ही वादा कर चुका हूँ ।’

‘आप मुझसे रुष्ट न हों । अक्रोश, आपको वास्तविकता का ज्ञान नहीं है और न मैं उसे बता ही सकती हूँ ।’

सरोज ने शेखर के मुँहाये हुए और क्लान्त चेहरे की ओर देखते हुए कहा । फिर कुछ रुक कर बोली—‘मैं यह मानती हूँ कि मैं खतरों से घिरी हुई हूँ किन्तु जिस काम को पूरा करने का बीड़ा मैंने उठाया है, उसको पूरा करके रहूँगी । मैं एक युग से इन्तज़ार में थी, ‘स्कीमें’ बनाती थी किन्तु अपनी विघ्नता तथा दुर्बलता के कारण कुछ न कर सकी । किन्तु अब मैं वास्तविकता की तलाश में निकल पड़ी हूँ, उसको ढूँढ़कर रहूँगी ।’

‘सुन्दर विचार है । मैं तुम्हारे रहस्य को छिपाए रखूँगा यद्यपि तुम मेरा विश्वास नहीं करतीं फिर भी मैं तुमको पवित्र आत्मा समझता हूँ

और मुझे पूर्ण विश्वास है कि जो कुछ तुम्हारा उद्देश्य है, वह पवित्र और बुलंद ही होगा । लाख तुमने मेरा दिल तोड़ दिया किन्तु यदि मैं ज़रा भी अपने को तुम्हारी सेवा के योग्य तथा हितकर समझूँगा तो उससे हरगिज़ पीछे नहीं हटूँगा । यदि कस्बे में किसी को भी तुम्हारे यहाँ होने का सन्देह होगा तो मैं लोगों के विचार का रुख दूसरी ओर मोड़ दूँगा । तुम तो मेरी मंत्री तथा सेवा को अस्वीकार कर चुकी हो किन्तु मेरे इस अपमान के पश्चात् भी तुम मुझे सदा अपना शुभचिन्तक ही पाओगी ।’

‘ओहो, आप तो अब तक नाराज़ हैं ? मैंने कुछ एक भयानक कारणों के आधार पर आपको कष्ट देना नहीं चाहा तो इसमें बुरा मानने की कौन सी बात थी ? फिर भी मैं आपको अनेक-अनेक धन्यवाद देती हूँ और मुझे खुशी है कि मेरे छिपने का जिसे ज्ञान है वह आप जैसा विश्वास के योग्य मनुष्य है ।’

‘क्या एक वादा करने की भी कृपा आप मुझ पर न करेंगी ?’

‘क्या वादा ?’

‘यही कि ज़रूरत के समय मुझे याद करोगी ।’

सरोज ने उत्तर में मुरझाई हुई सूरत से ‘न’ कर दी ।

‘खैर, आपकी मज़ी । मैं आपको विवश नहीं करता और न ज़बर्दस्ती अपना विश्वास आप पर थोपना चाहता हूँ । मैं तुम्हारे लिए सर्वथा अपरिचित हूँ और निस्सन्देह आपको मेरे सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञान नहीं किन्तु...महोदया, मैं मजबूर हूँ—मैं अपने को तुमसे अलहदा नहीं कर सकता, मैं तुम्हें मुसीबतों में फँसा हुआ देखने का कलज नहीं जा सकता ।’

‘हाय राम ! आखिर क्यों ?’

‘क्योंकि एक आकृत में फँसी दुःखी स्त्री की सहायता करना प्रत्येक पुरुष का धर्म है ।’

सरोज ने इस बार फिर शेखर को नज़र भर कर देखा । उसकी आँखों

में 'धन्यवाद' और 'कृतज्ञता' की भावनाएँ लहरें ले रही थीं किन्तु होट बन्द थे । आँखें कह रही थीं कि आप बहुत अच्छे आदमी हैं किन्तु स्वाभाविक लज्जा तथा आत्म सम्मान ने मुँह पर मोहर लगा दी थी— 'आप बड़े—अच्छे आदमी हैं ।' आखिर भावनाओं का तूफान होठों की राह फट पड़ा ।

'बिल्कुल नहीं—इसके विपरीत—शायद एक विश्वास के अयोग्य....'

'अच्छा, अब अपनी नाराज़गी दूर कर दीजिए । मैं आप पर विश्वास करूँगी—अर्थात् यदि मुझे कभी किसी के हाथ से कृपा की आवश्यकता हुई तो सबसे पहले इन्सान आप होंगे जिन्हें कष्ट दिया जायगा—'

'बहुत-बहुत धन्यवाद ! तुम आवश्यकता के समय तत्काल मुझे अपने निकट पाओगी और तुम्हारी रक्षा के लिए मैं अपने प्राणों से भी मोह न करूँगा ।'

उसने आखरी नज़र शेखर पर डाली और 'नमस्ते' कह चल दी । कुछ देर में नज़रों से ओझल हो गई लेकिन दिल के और पास आ गई ।

'फिर मेरी नज़रों से ओझल हो चली है कायेनात ।

हाँ, इसी रफ्तार से नजदीक आते जाइए ।'

१५

शेखर सुबह आठ बजे उठा । चन्द्र अभी पड़ा सो रहा था, सिर्फ़ नयन 'सन्ध्या' इत्यादि से निवृत्त हो कुछ पढ़ रहा था ।

'ओखलो, यह अब तक पड़ा सो रहा है नालायक ?' शेखर ने चन्द्रहाम के पलङ्ग की ओर जाते हुए कहा ।

'जी नहीं अन्धे साहब, जग रहा हूँ; किन्तु सोचता हूँ कि व्यर्थ जगत रहने से पड़े-पड़े करवटें लेना अधिक अच्छा है ।'

‘अरे तो अज्ञहदी, उठ ! आज तुझे सफ़र करना है । अब नयन को उसके घर पहुँचाओगे या यहीं अनधिकार चेष्टा स्वरूप बिठाए रहोगे ?’

‘नयन को लेकर—मैं जाऊँगा ? अगर धर लिया गया तो ?’ चन्द्रहास ने तकिया बगल में दबाते हुए कहा ।

‘तहसीलदार साहब वह ‘स्टेटमेंट’ आज भेज देंगे, फिर क्या डर है ?’

‘मेरा खयाल है कि एक-दो दिन तो हमको थाने की हवालात में आराम फ़रमाना ही पड़ेगा; क्योंकि पुलिस को ज़्यादा हमारे पहुँचने की सूचना मिलेगी, वह हमको आ दबोचेगी ।’

‘एक-दो दिन की जेल में क्या आपत्ति है ? आदमी को हर प्रकार के जीवन का अनुभव होना चाहिए ।’

‘तो फिर मैं तुम्हारा सिर ही क्यों न फाड़ दूँ ? उससे अनुभव हो जायगा—एक तो सिर फाड़ने का अभ्यास, दूसरा जेल का अनुभव ।’ चन्द्रहास ने कहा ।

‘हाँ, इसमें हर्ज ना नहीं है, केवल खराबी यह है कि इसमें तुम्हारे सिर के फटने का भी डर है और शायद जेल की ज़िन्दगी का अनुभव तुम्हारी जगह मुझे प्राप्त करना पड़े ।’

‘तो फिर मैं बताऊँ—नयन की आँख-वाँख फोड़ दूँ—यह ज्यादा आसान और सुरक्षित मामला है—वह विनिमय में मेरी आँखें फोड़ भी नहीं सकती ।’

‘लेकिन मैं तो अपनी भाभी की हिमायत में तुम्हारी दोनों आँखें निकाल सकता हूँ ।’ शेखर ने कहा ।

‘यह तुम्हारी ज़्यादती है ।’

वह दोनों इसी प्रकार की बेहूदा-सी बातें कर रहे थे कि ठाकुर की छोटी लड़की एक लिफ़ाफ़ा हाथ में लिये अन्दर आई और शेखर को

देकर चली गई । चन्द्रहास लपक कर शेखर के पलङ्ग पर आ कूदा—‘बया सरोज का पत्र है ?’ उसने अधीर होकर पूछा ।

शेखर ने लिफाफा खोला तो तहसीलदार साहब की लिखावट थी और उसके साथ ही नयन का बयान जिस पर मोहर लगी हुई थी—अदालत की मोहर थी । उन्होंने लिखा था कि नयन को आज ही यहाँ से चल देना चाहिए और उसको छोड़ने शेखर जाय । चन्द्रहास को दो-तीन दिन बाद पहुँचना चाहिए ।

‘मैं जाऊँ ? पर मैं कैसे जा सकता हूँ ?’ शेखर ने भरब्राते हुए कहा ।

‘हाँ बेटा, तुम ही जाओ । तहसीलदार साहब हमको दो-तीन दिन की जेल के अनुभव से वंचित रखना चाहते हैं ।’ चन्द्रहास हँसता हुआ बोला ।

‘पर भाई मैं कैसे जा सकता हूँ । उसके पश्चात् पीपलगाँव को कभी नहीं छोड़ सकता ।’ शेखर ने कहा ।

‘यदि तुम मेरे जीवन को बर्बाद करने का ही क़ैसला कर चुके हो तो मैं विवश नहीं करता ।’

‘हे भगवान्, मेरी जान कैसी मुसीबत में ? अगर उधर सरोज ने मुझे बुलाया और मैं न पहुँचा तो वह मेरी सारी बातों को केवल झूठ समझेगी और इधर तुम्हारा खयाल है—बताओ चन्द्र, क्या करूँ ?’

‘मुझे मार डालो, सब भगदा मिट जायगा ।’ चन्द्रहास ने कहा ।

‘तुम्हें मारने से मुझे क्या पुण्य होगा ? मर तो पहले ही रहे हो ।’

‘किस पर—?’ चन्द्रहास ने शरारत से पूछा ।

‘मुझे क्या मालूम ।’ नयन की ओर देख, शेखर ने सिर झुका लिया ।

‘यह मरने या जीने का किस्सा तो फिर होता रहेगा, अब मुझे जल्द यहाँ से ले चलिए शेखर—’ नयन ने कष्ट स्वर में कहा ।

‘मालूम होता है मेरी ‘स्कीम’ तबाह—खैर—जो भाग्य में है, होगा—चलो भाभी, तैयार हो जाओ। मोटर में पेट्रोल है चन्द्र?’

‘हाँ, होंगे ही तीन-एक टीन तो ! दस-ग्यारह लेकर चला पा।’

इसके बाद शेखर ने चन्द्र को कुछ आदेश दिए, नयन ने चन्द्र को ‘मुस्कराहट’ और चन्द्र ने नयन को विश्वास, आँसुओं के कुछ खारी बूँद—नहीं नहीं, अपना समस्त हृदय दे दिया—और तब शेखर नयन को लेकर शामगढ़ चल दिया।

वहाँ पहुँचते ही सबसे पहले शेखर ने मजिस्ट्रेट को नयन का बयान दिखाया और चन्द्रहास की गिरफ्तारी के वारंट को ‘कैन्सल’ कराया, उसके पश्चात् नयन को अपने घर लेकर पहुँचा।

सारी घटनाएँ अपनी चाची को सुनाई और सुना चुकने के पश्चात् चाची से प्रार्थना की कि वह नयन को उसके मकान पर छोड़ आए। सारे हाल उसके घर वालों को सुना दें ताकि वह इस पर किसी प्रकार का कोई जुल्म न करें।

किन्तु नयन की सूरत देखते ही नयन की माँ ने अपना सिर पीट लिया, भाइयों की आँखों में खून उतर आया और पिता उसको अपने हाथों फाँसी देने का रस्सी ढूँढ़ने लगे।

‘चाची, मुझे छोड़ दीजिए। अब आप जाइए। मैं देख लूँगी अब।’ और नयन सुबकने लगी।

‘नहीं बेटी, मैं तुझे अकेली कैसे छोड़ दूँ?’ और यह कह, शेखर की चाची नयन की माँ से बोली—‘बहन, यदि तुम्हारी सबकी दृष्टि में वह निरपराध लड़की ज्ञानदान पर ध्वजा नज़र आती है तो इसको मेरे हवाले करो। इसको धमकियाँ देने की अथवा मार-पीट करने की ज़रूरत नहीं। जिसको तुम ठुकरा रही हो, उसको मैं अपनी सन्तान की तरह पालने के लिए तैयार हूँ।’

‘क्यों जी, यदि तुम्हारी बेटी यह हरकत करती जो इस कलमेंही ने की है तो क्या तुम उसको घर में घुसने देती ?’ नयन की माँ ने सरोप कहा ।

‘इतनी सौगन्ध खाने के बाद मैं तो इसका विश्वास करके इसका अपराध क्षमा कर देती ।’

‘माँ, निकाल दो चुट्टेल को चुटिया पकड़ कर ।’ नयन के भाई ने लाल होकर कहा ।

‘हम इस कुलटा की शक्ति नहीं देखना चाहते ।’ उसने फिर चीखकर कहा ।

‘भाई साहब, ईश्वर से डरिए । एक निरपराध को कुलटा कहते हुए आपको लाज नहीं आती ?’ नयन ने अवरुद्ध कण्ठ से कहा ।

‘ज़वान चलाती है निर्लज्ज ? कच्चा चबा डालेंगा ।’ यह कहकर उसका भाई थप्पड़ लेकर दौड़ा; लेकिन नयन की माँ और शेखर की चाची बीच में आ गई ।

‘ठहर जाइए, आप लोगों को यों मुझ पर विश्वास न आयागा । (गीता हाथ में लेकर)—मैं इस पवित्र पुस्तक की सौगन्ध खाती हूँ कि मैं जैसी यहाँ से गई थी, वैसी ही वापस आई हूँ—अछूती और निष्कलंक—मैं बिल्कुल निरपराध हूँ, न मैं अपने हरादे से भागी थी और न चन्द्रहास ने हरादा करके मुझे भगाया ही था । इसकी गवाह मेरी सहेली सुरैया है ।’ नयन ने निःसंकोच भाव से कहा ।

‘कौन गवाह है—सुरैया ? मैं अभी उसको जाकर जाता हूँ ।’ उसके भाई ने फुफकारते हुए कहा ।

‘बस-बस उमा—हृद होती है बेधर्मी की । मेरी बच्ची गीता हाथ पर रखकर सौगन्ध खा रही है, मेरा दिल साफ़ हो गया ।’ नयन की माँ ने पहली बार उसको प्यार करके छाती से लगाते हुए कहा । और फिर माँ-बेटी का वह जोड़ा हू-हू रो पड़ा ।

लेकिन नयन का भाई तो सुरैया को पकड़ ही लाया । उसने भी आकर वही बयान दिया जो नयन दे चुकी थी । सब का नशा उड़ गया ।

‘तो वह साला चन्द्र है कहा ?’ उसके भाई ने उसी प्रकार गुस्से से लाल होकर पूछा ।

‘यह मैं आपको न बताऊँगी । इसके अतिरिक्त जब मेरा निर्दोष होना सिद्ध हो गया है तो वह भी स्वाभाविकतया बरी हो गये हैं, इसलिए अब उनसे कुछ कहना व्यर्थ ही भगड़ा बढ़ाना है ।’ नयन ने प्रकृतिस्थ होते हुए कहा ।

‘हाँ बेटे, जितनी बदनामी होनी थी, हो चुकी । अब बात बढ़ाने से क्या लाभ ?’ नयन की माँ ने कहा ।

और जब यहाँ सब कुछ तय हो गया तो शेखर की चाची भी सुश-सुश मकान पर आ गई और सारा हाल शेखर के आद्योपान्त सुना दिया । सुनकर शेखर ने भी सुख का साँस लिया ।

चाची आखें नचाती हुई बोलीं—‘अरे शेखर, तेरी तन्दुरुस्ती तो बढ़ी अच्छी हो गई—बहुत समझो जो तुम्हें पीपलगाँव की आवहवा माफ़िक आ गई—।’

‘हाँ चाची, इसीलिए तो मैं आज ही वहाँ वापस जा रहा हूँ ।’

‘आज ही ? क्या बकता है रे ? क्या एक दिन भी नहीं ठहरेंगा ?’

‘नहीं चाची, मेरे कन्धों पर एक ज़बर्दस्त कर्णव्य का बोझ ढाल दिया गया है—मुझे जाना ही होगा ।’

‘चलो, ईश्वर की कृपा से तुम्हें अब कर्णव्य-ज्ञान तो होने लगा ।’

दोपहर को उसने चाची को प्रणाम किया और तीसरे दिन पीपल-गाँव पहुँच गया ।



उसको यहाँ से गये चार दिन हो गये थे । आते ही चन्द्र से अधीर हो पूछा—‘क्या खबरें हैं ?’

‘ईश्वर की कृपा है, सब कुशल है । तुम समय पर आ गये । आज ही मुझे एक पत्र मिला है । किसी के हस्ताक्षर नहीं हैं उस पर—यह देखो—’

शेखर ने जल्दी से पत्र चन्द्र के हाथों में से छीन लिया और पढ़ा तो केवल एक पंक्ति थी—‘आज रात को बारह बजे मुझे फिर उसी जगह मिलिए ।’

‘मैं बड़ा चिन्तित था शेखर । यदि तुम न आते तो बड़ी मुसीबत हो जाती ।’ चन्द्रहास बोला ।

‘हाँ-हाँ, बड़ी बुरी रहती । सच—बड़ी बुरी रहती चन्द्र ।’ इस समय शेखर का रोम-रोम प्रसन्न दिखाई दे रहा था ।

उसके बाद शेखर ने नयन का हाल चन्द्र को आशोचन सुनाया—तो चन्द्र बड़ा खुश हुआ ।

शेखर की पीठ ठोकते हुए बोला—‘चलो, नयन ‘अपनों’ में पहुँच गई और उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया । अब वह चाहे मेरी हो न हो, उसे उसके माँ-बाप तो मिल गये ।’

‘चन्द्र, घबराओ नहीं । ईश्वर ने चाहा तो वह तुम्हारी ही होगी ।’

इसके बाद शेखर नहाया, कपड़े बदले, शयन का खाना खाया और समय व्यतीत करने को तहसीलदार साहब के यहाँ चला गया । वह उसे देखकर बहुत खुश हुए, शीला भी फूली न समाई । आज वहाँ मिस्टर,

राजीव भी मौजूद थे जिनको शीला बहुत सता रही थी और उसमें 'आदमियत' भरने की चेष्टा कर रही थी। चलते समय जब तहसीलदार साहब उसको दरवाज़े तक छोड़ने आए तो उसने नयन के हालात से उनको भी सूचित किया जिनको सुनकर तहसीलदार साहब बहुत ही प्रसन्न हुए। शीला भी राजीव को छोड़कर लपकी हुई आई—जब शेखर दरवाज़े में से निकल रहा था तो उसके कान में तहसीलदार साहब के यह शब्द आए—'राजीव, तुम्हें भी इस नवयुवक की भाँति उच्च विचारों का एक तुल्य आदमी देखना चाहता हूँ। केशिश करो बेटे, मानवता बाज़ार में नहीं बिकती है बल्कि अपने ही अन्दर उसकी परवरिश की जाती है।'

ग्यारह बज गये थे। शेखर को डर था कि आज कहीं फिर उस पागल प्रेमी वीरेन्द्र से मुठभेड़ न हो जाय। अभी वह दिल में यह सोच ही रहा था कि वह खतरा सामने आ गया।

'शेखर, मुझे बड़ा दुःख है कि जब भी मैं तुमसे मिला, बड़ा अशिश्ट सिद्ध हुआ। चमा करना भाई, मैं अपने होश में नहीं हूँ। तुम बुरा तो नहीं मानने हो मेरे कहने का?'

'नहीं वीरेन्द्र ! किन्तु तुमको यह सलाह देता हूँ कि अपने 'पागलपन' को कुछ कम करो। यदि सरोज भाग्य में होगी तो मिल जायगी।'

'यह न कहो शेखर... भाग्य क्या चीज़ है ? यदि वह मेरे भाग्य में न हुई तो मैं इस निरुत्तम भाग्य को ही बदल दालूँगा और उसको कहीं से भी ढूँढ़कर नकाल लूँगा। वह मेरी आराध्य देवी है, मैं उसका भक्त। यदि उसने मुझे छोड़ किसाँ और से प्रेम करना शुरू कर दिया तो—भगवान् की सौगन्ध—शेखर, मैं इस विचार मात्र को सहन नहीं कर सकता।'

'खैर, तुमको अभी निराश नहीं होना चाहिए।'

‘निराश तो मैं कभी नहीं होता । मैं जानता हूँ कि सरोज केवल मेरे लिए है । हम दोनों एकाकार हो चुके हैं—वह मेरे समस्त प्राणों में बस चुकी है, किन्तु कल एक ज्योतिषी ने मुझे डरा दिया, पहले तो उसने मुझे प्रोत्साहित करने की बात कही और फिर...’ कहते-कहते सहसा वीरेन्द्र रुक गया ।

‘क्या—?’ शेखर ने कुछ दिलचस्पी लेते हुए पूछा ।

‘कहने लगा कि यदि तुम्हारा प्रेम इसी प्रकार दावानल बना रहा और तुम इसी प्रकार अपने को इस योग्य सिद्ध करते रहे तो वह एक दिन अवश्य तुम्हें प्रेम करने लगेगी ।’

‘खूब !’ शेखर मुस्कराया ।

‘तुम हँसते हो—खर, खूब हँसो । दूसरी बात उसने यह कही कि संसार में केवल एक व्यक्ति से तुम्हें डर है जो तुम्हारे प्रेम में बाधक हो सकता है—और वह आदमी मेरी समझ में तुम ही हो ।’

‘तुम तो पागल हो वीरेन्द्र ।’

‘पागल को पागल कहो तो वह सिर फाड़ देता है ।’ उस पर फिर पागलपन-सा छाने लगा था, बोला—‘अच्छा, एक बात तो बताओ—क्या तुम्हें आशा है कि मैं सरोज को कभी देख सकूँगा ?’

‘क्यों नहीं ?—ईश्वर सबकी सुनता है ।’

‘अच्छा तो अब क्या तुम मुझसे एक वादा करोगे ?’ वीरेन्द्र ने विनयपूर्ण नम्र स्वर में कहा ।

‘क्या ?’

वीरेन्द्र का सारा ललाट पसीने से तर था और उसकी सुदृढ़ बेह कँपकँपाने लगी थी ।

आखिर वह लड़खड़ा कर बोला—यह कि तुम मुझसे वादा करो—वादा करो कि यदि तुम उसके कभी देख लो तो उससे प्रेम करना शुरू न कर दोगे । वादा करो कि तुम प्रेम में बाधक न होओगे,

वादा करो कि तुम उसके प्रेम के बन्दी न बनोगे बल्कि अपने आपको सँभाले रहोगे और मेरे पथ के काँटे न बनोगे—वादा करो... शेखर ।’

‘दोस्त वीरेन्द्र, कभी-कभी तुम बहुत बढ़ जाते हो ।’

‘वादा करो शेखर ।’ उसने चीखकर कहा । और उसका स्वर भरा गया—‘वादा करो, देखो वह तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं है, वादा करो कि तुम मेरे ठोकर का पत्थर सिद्ध न होओगे, मेरे लिए प्रेम का मैदान छोड़ दोगे, उससे कभी प्रेम न करोगे बल्कि जब वह पीपलगाँव में आ जायगी तो तुम उसी दिन यहाँ से अपने घर चल दोगे ।’

‘लेकिन इस समय तुम्हारा और मेरा कर्तव्य यह है कि उस आपदा-ग्रस्त लड़की को...तलाश करें ।’

‘नहीं-नहीं, पहले तुम वचन दो । जो मैंने कहा है, उसका वचन दो ।’ उसने बच्चों की भाँति मचलते हुए कहा ।

‘यदि मैं इस प्रकार के वादे से ‘न’ कर दूँ—तो ?’ शेखर ने ज़रा हड़ स्वर में कहा ।

‘तो ईश्वर की सौगन्ध शेखर, मैं तुम्हारा खून कर दूँगा—निस्संदेह खून । मैं हर उस आदमी का खून कर दूँगा जो सरोज से ज़रा भी प्रेम करने का यत्न करेगा । आह...सरोज मेरी जिन्दगी है, मेरे जीवन का प्रकाश है, मेरे घावों से चूर-चूर बदन की अनमोल मरहम है । सोते जागते—प्रतिपल वह मेरे हृदय पर आसीन है और नेत्रों में सजीव । मैं उसके साथ नरक की यातना भोगने को प्रस्तुत हूँ किन्तु उसके बिना स्वर्ग भी मुझे नहीं सुहाता क्योंकि मैं उसे चाहता हूँ—आह...चाहना बहुत ही गिरा हुआ और तुच्छ शब्द है ।’ उसके मुँह से थूक के छींटे उड़ रहे थे । उसके मुख से वीभत्सता, पागलपन और न जाने क्या-क्या प्रकट हो रहे थे । उसका अङ्ग-अङ्ग काँप रहा था—और उसकी आँखों से अश्रु प्रवाहित हो गये ।

‘शेखर...शेखर...’ मैं तुमसे भीख माँगता हूँ, मेरे प्रेम के बीच कभी न आना ।’

शेखर उसकी इस घुमवती हुई वेदना से प्रभावित हुए बिना न रह सका, बोला—‘अच्छा-अच्छा वीरेन्द्र, तुम ... न होओ । जो, मैं वद करता हूँ कि यदि सरोज यहाँ आ गई तो मैं तुम्हारे दोनों के बीच कभी न आऊँगा ।’

‘शेखर, क्या मैं यह एक मर्द का वादा समझूँ ?’ वीरेन्द्र ने आँसुओं और हर्ष के विचित्र से सम्मिश्रण के बीच मुस्कराते हुए पूछा ।

‘हाँ, एक मर्द का वादा ।’ शेखर ने पूर्ववत् दृढ़ स्वर में कहा और फिर कुछ डुल-सा गया ।

और दूसरे ही जण वीरेन्द्र का चेहरा फिर आँसुओं का-सा बन गया—‘धन्यवाद । अनेक-अनेक धन्यवाद, शेखर । सच, तुम बड़े अच्छे हो...’ और यह कह, किलकारी मारता हुआ वीरेन्द्र उस सामने फैले अन्धकार में विलीन हो गया ।

पर शेखर कुछ डुल-सा गया । वादा...मर्द...पर सरोज ?



जब शेखर हवेली के पास पहुँचा तब खदर दरवाजे में से रोशनी निकल रही थी और अन्दर से धीमी-धीमी बातों की आवाज़ आ रही थी—धीमी-धीमी, अस्पष्ट-सी । साढ़े ग्यारह बज चुके थे । अनूप अब तक सोये नहीं थे । शेखर ने सोचा कि उनसे भी मिल चलो । इसलिए उसने कमरे में प्रवेश किया ।

एक सोफे पर अनूप बैठे थे और उनके निवट ही उन्हीं की आयु का एक और आदमी बैठा था । शेखर ने सोचा, शायद यहाँ वह जासूस है जिसके सम्बन्ध में अनूप ने जिक्र किया था ।

‘ओहो...शेखर ! आओ बेटे, मैं एक हफ्ते की छुट्टी गया था किन्तु जल्दी आ जाना पड़ा । उमराव सिंह का पत्र आ गया था कि वह आ रहे हैं । आइए उमराव जी, मैं आपका परिचय इस नवयुवक से करा दूँ ।’ अनूप ने खड़े होते हुए कहा । और फिर शेखर का उनसे परिचय कराया ।

शेखर ने देखा कि उमराव सिंह बहुत ध्यान से उसको ऊपर से नीचे तक घूर रहे हैं और उनकी तीव्र दृष्टि उसकी आत्मा की तह में पहुँची जा रही है । निस्संदेह यह कोई जन्म से ही जासूस है...शेखर ने मन ही मन सोचा ।

‘बड़ी खुशी हुई आपसे मिलकर ।’ उमराव सिंह ने कहा और फिर शेखर को अनिमेष देखने लगा ।

‘धन्यवाद ! आप जैसी हस्तियों के दर्शन भी हमारे लिए ‘मुक्त’ होने में सहायक होते हैं ।’

‘मुक्त ? यह कैसा निरर्थक शब्द है ? मेरी नज़र में तो ‘मुक्ति’ का अर्थ यह है कि प्राणी अपने सारे कर्मों को स्वच्छन्दता पूर्वक पूर्ण करता रहे—यहाँ तक कि उसे आन्तरिक ‘महा आनन्द’ प्राप्त हो जाय ।’ उमराव सिंह ने कहा ।

‘खूब—अर्थात् इतनी चोरियाँ करे, इतने ढाके ढाले, इतने कुकर्म करे कि उसका जी भर जाय...जी ?’ शेखर ने मुस्कराकर पूछा ।

‘अहा, धार्मिक नवयुवक, कैसी विचित्र बात है ? जिन्दगी के स्वर्ण अवसर और बेहतरीन दौर में यह धार्मिक धुन—? काबिल युवक, कुकर्म केवल एक विशेषण है—एक सिफत, एक कला...वैसे वह मोटा-सा शब्द है जिससे प्रायः लोगों को डरा दिया जाता है...’

‘खूब—तो आपके निवट ‘कर्म’ की कोई जिम्मेदारी ही नहीं है ?’

‘स्वार्थ का कानून सबसे अधिक शक्तिशाली और जीवित रहने वाला है, इसके अतिरिक्त...’ कि बीच में ही अनूपसिंह ने बात काटते हुए कहा—‘उमराव...’ मैं चाहता हूँ कि इस निरर्थक बहस की जगह काम की बातों की जायें। मेरा यह खयाल है कि तुम अपनी ‘खोज’ की रिपोर्ट शेखर को भी सुनाओ, यह भी सरोज के मामले में काफी रुचि रखते हैं और उनकी तलाश में अत्यंत चिन्तित हैं।’

‘अच्छा तो सुनिए। पहले अनुमान—फिर उनको कार्यान्वित करना...’ सरोज एक शिलित, बुद्धिमान और उच्च विचारों की लड़की है। उसको गाना भी आता है। वह अपने कस्बे के जीवन में उकता कर किसी सुन्दर सासायटी की तलाश में निकली है। अकस्मात् उसे सिनेमा की ज़िन्दगी का विचार आता है, इसलिए वह अपने रूप और सुरीले कण्ठ के आधार पर कबकत्ता के किसी सिनेमा में भर्ती हो जाती है।’ उमराव ने कहा।

‘आपका अनुमान विश्वास के योग्य नहीं है।’ शेखर ने हँसते हुए कहा।

‘क्यों? आप हँसते क्यों हैं?’ उसने विस्मित होकर पूछा।

‘क्योंकि इतना मोटी बात अब तक किसी की बुद्धि में न आई थी।’

शेखर समझ गया कि यह आदमी केवल मूढ़ बोल रहा है और उसे बना रहा है। क्या यह भयानक आदमी मामले की तह तक पहुँच गया था? क्या अनूप को मालूम हो गया था कि सरोज उसके मकान में छिपी हुई है और अब यह लोग मिलकर उसे छिपी हुई जगह से हटा देने का यत्न कर रहे हैं?

शेखर को देर हो रही थी। आखिर वह अनूप से आज्ञा लेकर उठ खड़ा हुआ। उन्होंने भी उसे इस समय रोकना नहीं चाहा। वहाँ से निकलकर शेखर ने जान बूझ कर कस्बे की ओर रुख किया ताकि यह

लोग यदि उसका पीछा भी करें तो उस पर किसी प्रकार का कोई सन्देह न हो—बहुत दूर जाकर वह नदी की ओर मुड़ गया और वहाँ से घनी झाड़ियों में दबता-छिपता निश्चित स्थान पर आ गया। किन्तु अब भी अनूप और उमराव को लेकर उसके दिमाग में अनेक सन्देह तथा आशंकाएँ उत्पन्न हो रही थीं और—

तभी, उसने जनाने वस्त्रों की सरसराहट सुनी। वह सँभलकर खड़ा हो गया। कुछ ही क्षण में सरोज उसके निकट आकर खड़ी हो गई। शेखर सब कुछ भूल गया—वस, अब सरोज को लेकर खड़ा हो गया।

‘आपको मेरा वह पत्र मिल गया था?’ सरोज ने घबराई हुई आवाज़ में पूछा।

और शेखर ने देखा, वह बहुत ही परेशान, बहुत ही चिन्तित दीख पड़ रही थी—‘शेखर का मन अनायास ही हूब गया, बोला—‘हाँ, नहीं तो मैं यहाँ कैसे आ जाता?’—लेकिन मेरा खयाल है, हमको इस स्थान से हटकर कहीं दूसरी जगह चलना चाहिए। यह जगह ज्यादा सुरक्षित और निरापद नहीं।’

‘क्यों ? कुशल तो है ?’ सरोज ने और घबराकर शेखर की ओर देखा।

‘परिस्थितियाँ कुछ ऐसी ही हैं सरोज। जलो, नदी की ओर चले चलें। मुझे भी तुमसे कुछ कहना है और मुझे विश्वास है तुम्हें भी मुझसे कुछ कहना होगा—?’

‘बहुत कुछ—’ वह कुछ रुकी, ध्यानपूर्वक शेखर को देखा। कदम उठाए, फिर कुछ रुकी और अन्त में शेखर के साथ चल दी। और एक निरापद से स्थान पर जाकर दोनों बैठ गये।

‘डरो नहीं सरोज, यह तो मैं जानता हूँ कि तुमने कोई बहुत ही कठिन कार्य अपने जिम्मे ले रखा है जिसके पूर्ण होने पर शायद तुम्हारे

भावी जीवन का समस्त सुख अवलंबित है और जिसमें सफल होने के पश्चात् तुम्हें अपने से अधिक शक्तिशाली तथा बलिष्ठ लोगों के प्रहार का भय होगा, और इन सबके साथ कदाचित् तुम्हें अभी मुझ पर विश्वास नहीं हुआ है—किन्तु मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि मैं तुम्हारा कोई शत्रु नहीं—साथी हूँ, शुभचिन्तक हूँ और...।’

‘यदि मैं आपके शत्रु समझती—अच्छा क्या आप अनूप के पास से आ रहे हैं?’

‘हाँ। अच्छा तो अब बताओ, मुझसे क्या सेवा लेना चाहती हो? मैं नहीं कहता कि अपना रहस्य मुझे बताओ। मेरी तो केवल यही इच्छा है कि यदि तुम्हारी कठिनाइयाँ अथवा तुम्हारी आपदाएँ मेरे कारण किसी प्रकार टल सकती हैं तो मुझसे सेवा लेने में संकोच न करो...।’

सरोज ने एक बार अपनी शर्मीली आँखें ऊपर उठाई और शेखर को देखने लगी। शेखर के समस्त प्राणों में हलचल-सी शुरू हो गई। वह काँप उठा और अपने आप उसकी पलकें अवनत हो गईं। हृदय में एक भीषण उबार-सा उठा और...।’

उसने सुना, सरोज कह रही थी—‘मुझे आप पर विश्वास है... विश्वास है।’

‘धन्यवाद ! मैं भी जीते जी तुम्हारे से विश्वास-घात न करूँगा।’

‘तो—क्या अनूप को संदेह हो गया है कि मैं उसके मकान में...?’

‘विश्वासपूर्वक नहीं कह सकता—किन्तु वह उमराव...।’

‘हाँ। कोई उमराव नामक बदमाश-सा जासूस हमारे लिए आया है। क्या उसको कुछ संदेह है?’

‘अभी कोई बात विश्वासपूर्वक नहीं कह सकता। मैं उससे भी इस समय मिलकर आ रहा हूँ। वह शरस बहुत चालाक और खतरनाक जान पड़ता है। वह अनूप का बहुत गहरा दोस्त मालूम होता है।’

‘आश्चर्य होता है, अनूप की एक साधारण से जासूस से इतनी गहरी मित्रता कैसे हो गई ?’

‘मुझे खुद आश्चर्य है । मकान में प्रवेश करने से पूर्व मैंने सुना था, वह अनूप से कह रहा था—‘भाई अनूप, हमको बहुत होशियार रहना चाहिए । यह लड़की बहुत चतुर और समझदार मालूम होती है ।’ मेरा खयाल है कि उसका तात्पर्य तुमसे था ।’

‘हो सकता है ।’ सरोज ने कहा ।

‘क्या अनूप को तुमसे कुछ भय है ?’

‘हो सकता है ।’ सरोज ने कहा । फिर बोली—‘उनकी बातों से तो वह अनुमान लगाया जा सकता है ।’

‘हाँ, कोई बात जरूर है ।’ शेखर बोला ।

‘शेखर, मैं आपकी इस सहायता के लिए जो मुझे वरदान स्वरूप अनायास ही मिल गई है, आपकी बहुत-बहुत कृतज्ञ हूँ । मेरी समझ में नहीं आ रहा कि किस प्रकार अपनी आप-बीती अथवा अपनी टूटी-फूटी ‘कहानी’ आपको सुनाऊँ । मैं इस लंबी-चौड़ी दुनिया में अनाश्रिता और अकेली हूँ—असहाय और साथी-विहीन । आप मेरी भावनाओं और हालात का अन्दाज़ भी नहीं लगा सकते । जिन लोगों के जीवन में कोई रहस्य होता है उनका जीवन कड़वा और रस-विहीन हो जाता है । मेरा खयाल है कि आपकी ज़िन्दगी में तो कोई रहस्य न होगा ?’

‘नहीं सरोज—कोई नहीं है; किन्तु मैं रहस्यमय प्राणियों के प्रति सदैव अपनी सहृदयता प्रकट करता हूँ । सरोज, क्या तुम्हारी माता जीवित हैं ?’

‘अक्रोश—मैंने आज तक अपनी माँ को नहीं देखा । मुझे मालूम भी नहीं है कि—।’ और सरोज रुक गई । जैसे सोचने लग गई हो कि पहले रुलाई जो अनायास फूट कर बाहर निकलना चाहती है उस रोकें या पहले जो कहना चाहती है, उसे ही कह डाले ।

शेखर न जाने कैसा होता जा रहा था । भर्राये स्वर में बोला—‘हाँ, कहे जाओ सरोज .. कहे जाओ... परेशान न होओ...।’

तो सरोज ने एक गहरा लंबा साँस लिया और पलकें उठाकर पहले अनिमेष शेखर को देखा—फिर कहना शुरू किया—‘शेखर, पूरे पन्द्रह वर्ष की आयु तक मैं यह न जान पाई थी कि मेरी माँ कौन हैं ? किन्तु एक दिन सहसा मेरे अन्तर में यह चटख पैदा हो गई । यह सच है कि लच्छीराम अथवा उनकी पत्नी से मैंने कभी मोहवश न की यद्यपि वह लोग मुझ पर सदैव कृपालु थे और सदैव अपने प्रेम का परिचय देते रहते थे । किन्तु मुझे उनसे लेशमात्र भी प्रेम न हुआ । इसके विपरीत मेरे अन्तर में यह उत्कण्ठा बनी रहती थी कि मेरे अपने माता-पिता हों । यद्यपि उस समय तक मैं लच्छीराम तथा उनकी पत्नी को ही अपने माता-पिता जानती थी फिर भी मेरी आत्मा बेचैन थी माँ-बाप के लिए । विधि का कुछ ऐसा ही विधान था कि मुझ पर मेरे इन नकली माता-पिता की वास्तविकता प्रकट हो । एक दिन मेरी माँ अर्थात् लच्छीराम की पत्नी किसी बात पर मुझसे बहुत नाराज़ हुई और क्रोध में अनायास उनके मुँह से निकल गया—‘यदि तू मेरी अपनी सन्तान होती तो जान से मार डालती’.. । कहने को वह यह कह गई किन्तु फिर क्या था—तीर कमान से निकल चुका था । सीधा दिल के पार हो गया । बस—उसी दिन से मेरे वास्तविक माता-पिता की तलाश मेरे जीवन का एक मात्र उद्देश्य बन गई—उनको कहीं से ढूँढ़ निकालने के लिए मेरे प्राण छटपटाने लगे, और उन्हें देख लेने को मेरे हृदय में हूकें उठने लगीं ।

मैंने बहुत सोचा, बहुत विचारा कि मेरी माँ कहाँ हो सकती है ? मेरा उन दूसरे लोगों के साथ पड़े रहना यह बताता था कि मेरी माँ मर गई है .. किन्तु विश्वास नहीं होता था, विश्वास नहीं हुआ । कोई अज्ञात प्रेरणा रह-रह कर मुझे उकसाती थी—‘उठ, तेरी माँ जीवित है, उसे

ढूँढ़ । तू उनकी सन्तान है, तेरा यह कर्तव्य है । अभी तू उसके वात्सल्य से, उसके स्निग्ध प्रेम और उज्ज्वल स्नेह से वंचित है, उसे प्राप्त कर—तुझे सब मिलेगा । अभी तेरा जीवन निरर्थक, अन्धकारपूर्ण और सारहीन है—अपनी माँ-को ढूँढ़, अपने पिता को ढूँढ़—तेरी साध पूरी होगी, तेरा भविष्य खिल-खिला पड़ेगा, तेरा जीवन आकर्षक और सुन्दर बन जायगा । पगली, दुनिया में सबसे अभाग प्राणी वह है जिसके बाप न हो और जिसकी माँ मर गई हो । उठ...उठ...’ और मैंने सोचा यह सही है—यह सत्य है कि माँ मेरी मरी नहीं है । यदि वह मर गई होती तो उसको ‘रहस्य’ बनाने की क्या आवश्यकता थी ? माँ किसकी नहीं मरती है—फिर मेरे यह नकली माता-पिता बनाने की क्या ज़रूरत थी ?...इन सारी बातों से यही स्पष्ट होता था कि मेरी माँ जीवित है और कहीं या तो छिपी हुई है या बहुत बुरी हालत में डाल दी गई है । बस, तभी से मैं अपने माता-पिता की खोज में हूँ—’ सरोज ज़रा साँस लेन रुक गई फिर बोली—‘अब यह मेरे नकली माँ-बाप इस चिन्ता में पड़े कि मेरा—मुझे—आप वीरेन्द्र को तो जानसे ही होंगे—किन्तु मैं तो उसकी सूरत तक से घृणा करती हूँ । वीरेन्द्र ने मुझे चिट्ठियाँ भेजनी शुरू कीं जिनमें इश्वर जाने, वह रात दिन क्या-क्या लिखता रहता था—मैं तो उसे पागलपन ही कहूँगी—प्रेम का ढेर था—’ और कहते-कहते सरोज रुक गई ।

शंखर खो गया था...किन्तु सरोज के रुकने पर वह मानो स्वप्न से जाग पड़ा । उसके रोम-रोम में अतिशय हर्ष की लहरें दौड़ने लगीं—बहुत ही प्यार से बोला—‘हाँ, फिर सरोज...?’

‘लच्छीराम ने जब विवाह का मुझ पर बहुत ही दबाव डाला तो विवश होकर मुझे अपनी वास्तविकता का पता लगाने के लिए कदम उठाना पड़ा । मैंने पहले तो लच्छीराम से साफ़ ‘न’ कर दी । मैंने उनसे कह दिया कि जब तुम मेरे माता-पिता नहीं हो तो तुम्हारी आज्ञा पालन

करना मेरा कर्तव्य नहीं....।’

‘अच्छा, फिर तुमने अब तक अपनी माँ तथा पिता को ढूँढ़ने में कुछ सफलता प्राप्त की ?’

‘बहुत मामूली-सी । अन्धे ‘बाबा’ को उनका सब हाल मालूम है । मैंने कई बार उनसे गिड़गिड़ाकर पूछा किन्तु उन्होंने कुछ न बताया । अन्त में मेरे कई दिनों के प्रयास के पश्चात् उन्होंने मुझे केवल इतना बताया कि अनूप की डायरी इस सम्बन्ध में मेरी कुछ सहायता कर सकती है । यही कारण है कि मैंने सारे कस्बे को इस प्रकार अपने को छिपा कर आश्चर्य में डाल रखा है ।’

‘फिर तुम्हें अनूप की डायरी से कुछ पता चला ? क्या वह भी तुम्हारे भेद की कोई कड़ी है ?’

‘मालूम ऐसा ही होता है...’ ‘ऐं...’ यह कैसी आवाज़ थी ?’ उसने सहसा हृदय-उधर भयभीत दृष्टि से देखने हुए घबरा कर कहा ।

‘डरो नहीं । कुछ नहीं है ।’

‘नहीं-नहीं । मैंने कोई आवाज़ सुनी है । गज़ब हो जायगा जो मेरे छिपने का यह भेद खुल जायगा । मेरे अब तक के परिश्रम और ‘स्कीमों’ पर पानी फिर जायगा । आप कृपा कर जाकर हृदय-उधर नज़र दौड़ाइए ।’

शेखर उसे धैर्य तथा तसल्ली बंधाने के अभिप्राय से योंही हृदय-उधर हो आया और बोला—‘कोई नहीं है । घबराओ नहीं सरोज ।’

‘वह देखिए—वह देखिए ।’ उसने एक चट्टान की ओर संकेत करते हुए और डर के मारे शेखर के हाथ से लिपटते हुए कहा ।

शेखर ने जो ध्यानपूर्वक देखा तो अंधेरी चट्टान से किसी को चिपटा हुआ पाया । दूसरे ही क्षण शेखर वहाँ था । वीरेन्द्र आराम से चट्टान से लगा खड़ा था ।

‘ओहो, वीरेन्द्र ! तुम हो ? मेरी जासूसी कर रहे हो—क्यों ?’

‘हाँ, तुम्हारी । यह मेरा कर्तव्य है—समझे ? तुम्हारी...’ उसने सक्रोध कहा ।

‘लेकिन यह बहुत ही जलील हरकत है ।’ शेखर ने भी गुस्से से कहा ।

‘जलील हरकत ? मैं क्या परवाह करता हूँ किसी की ? मैं सरोज पर जान देता हूँ और मेरा सौभाग्य कि आज वह मिल गई । ज्योतिषी का कथन असत्य न था लेकिन तुमने वचन देकर विश्वासघात किया है ।’

इसके पश्चात् वह कहकहा लगाकर सरोज के निकट आया जो उसे देखकर अब थर-थर काँपने लगी थी । पागल की भाँति बोला—‘ओह सरोज ऐसी भयभीत और सहमी हुई दृष्टि से मुझे न देखो । मैं तुम्हें खा नहीं जाऊँगा । मैं तो तुम्हारा उपासक हूँ सरोज, मुझसे न डरो ।’ फिर और निकट आते हुए बोला—‘मैं तुम्हारी करीब-करीब सब बातें सुन चुका हूँ—तुम अपने माता-पिता की तलाश में हो, लच्छीराम तुम्हारे पिता नहीं हैं—यह सब बातें तुम्हें मुझे बतानी चाहिए थीं, इस दुष्ट को क्यों बताई तुमने ? इस विश्वासघाती ने तुम्हें कैसे ढूँढ़ निकाला ? इसे तुमसे क्या आकर्षण है ? अभी, आज ही रात को इसने मुझसे कहा था कि अब तक इसे तुम्हारा पता न मिला है और अब मैं यहाँ उसको इस प्रकार तुम्हारे इतना निकट देख रहा हूँ । यह सब क्या है ? यह क्या हो रहा है ?’

‘वीरेन्द्र, ज़रा शिष्ट बनो । इन्सानियत से बात करो । कुलीन स्त्रियों से इस तरह वार्तालाप नहीं किया करते हैं ।’ शेखर ने कहा ।

‘तुम विघ्न डालने वाले कौन होते हो ? मेरा जी चाहे जिस तरह बोलूँ, तुम कौन ?’

शेखर क्रोध से काँप उठा । उसका हाथ इस राक्षस जैसी देह पर उठने वाला ही था कि सरोज का स्वर सुनाई दिया—‘वीरेन्द्र, कुछ तो आदमी बनो । निस्संदेह इस समय मैं तुम्हारी मुट्ठी में हूँ । मैं तुम्हें आज्ञा देती हूँ कि जो नुकसान तुम मुझे पहुँचा सकते हो, उससे पीछे न हटो ।’

‘आह सरोज—मेरी आत्मा, कहाँ से ऐसा हृदय लाऊँ जिससे तुम्हें नुकसान पहुँचाऊँ ? मैं तो तुम्हें नुकसान पहुँचाने वालों का सिर उड़ाने पर उद्यत हूँ ।’

‘यदि यह बात है तो जो मैं कहूँगी उसका पालन करोगे ?’ सरोज ने—चतुर सरोज ने बुद्धिमता के अस्त्र से काम लेते हुए कहा ।

‘मेरे कहाँ भाग्य सरोज—अहा, मुझे तुम मिल गई—कहाँ मेरे भाग्य ?’ वीरेन्द्र आवेश में बोलने लगा ।

‘मैं चाहती हूँ कि अपने होठों में मोहर लगा लो, किसी से न कहो कि तुमने मुझे पा लिया है या मुझे देखा है ।’

‘ऊँ हूँ—नहीं कहूँगा किन्तु यह—इसके सम्बन्ध में क्या निर्णय है ? क्या इससे तुम्हारी पूर्ववत् बोल चाल रहेगी—वही मुलाकाते ? और मैं अपनी जान व्यर्थ में ही घुलाता रहूँगा ?’

‘मेरा विश्वास है कि तुमसे अधिक शेखर मेरे सहायक सिद्ध हो सकते हैं ।’ सरोज ने कहा ।

‘अच्छा, मैं क्यों नहीं ?’

‘क्योंकि तुम केवल भड़भड़े हो ।’

‘क्या तुम शेखर से आज से पहले भी कभी मिल चुकी हो ?’

‘हाँ । पर उससे तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं ।’

‘मुझसे सम्बन्ध नहीं ? खास बात तो यही है । शेखर ने मुझसे आज रात ही वादा किया था कि वह तुमसे प्रेम नहीं बढ़ाया, मेरी

राह में बाधक न होगा किन्तु मैं अपनी आँखों से उसे तुम्हारे पास देख रहा हूँ। अब मैं उसका विश्वास नहीं करता। अच्छा, अब मैं तुमसे वादा कर सकता हूँ और इसी शर्त पर तुम्हारे रहस्य को अप्रकट रख सकता हूँ जब तुम यह वादा करो कि तुम मुझे प्यार करोगी और अपने इच्छे में सफल होने के पश्चात् मुझसे विवाह कर लोगी।'

'यह तुम्हारी बात बहुत ही मूर्खतापूर्ण है। तुम तो औचित्य की सीमा उल्लांघ रहे हो। मैं इस प्रकार के वादे के लिए प्रस्तुत नहीं।' सरोज ने हठ स्वर में कहा।

'तो फिर मैं तुम्हारे बारे में और जो कुछ तुम कर रही हो, उसके बारे में अभी जाकर अनूप और उस जासूस को सूचना देता हूँ।' वीरेन्द्र बोला।

शेखर फिर किसी अभिप्राय से आगे बढ़ना चाहता था कि सरोज ने उसे संकेत से मना करते हुए वीरेन्द्र से कहा—'फूटा प्रेम करने वाले असहाय स्त्रियों की विवशताओं से इसी प्रकार लाभ उठाया करते हैं... जाओ, जो तुम्हारी जी चाहे करो।'

'मेरा प्यार फूटा—? हे प्रभू, मेरा प्रेम फूटा?—अच्छा तो क्या तुम इस आदमी को प्रेम करती हो, इसे चाहती हो?'

तुम्हारा प्रत्येक प्रश्न ऐसा है जिसका उत्तर न दिया जाय। मैं शेखर को केवल कुछ-एक घण्टों ही से जानती हूँ—फिर तुम मुझसे ऐसा प्रश्न करते हो—छी: छी: वीरेन्द्र...'

'मुझे क्षमा करो सरोज—मुझे क्षमा करो।—सच, मैं बहुत लज्जित हूँ।' और वीरेन्द्र सरोज के चरणों में झुक गया—'आह! शेखर प्रेम को क्या समझे? वह क्या जाने प्रेम किसे कहते हैं? मेरे हृदय की ज्वाला की एक भी चिनगारी उसे नसीब नहीं है। अच्छा सरोज, एक वादा तो करोगी?'

'क्या?' उसने वीरेन्द्र से दूर होते हुए पूछा।

‘वह यह कि जब तक मैं जीवित हूँ, तुम शेखर को प्रेम नहीं करोगी। हाँ, तुम उसे अपना सहायक बनाओ, मित्र बनाओ किन्तु उससे आगे उसे न बढ़ने दो। मैं ईश्वर को साक्षी करके कहता हूँ कि तुमको और तुम्हारे रहस्य को कभी किसी पर प्रकट नहीं करूँगा, लेकिन शर्त यही है। बोलो, वादा करोगी?’

‘वीरेन्द्र, तुम वास्तव में पागल हो।’ सरोज ने कहा।

‘तो क्या तुमने इस शख्स को चाहना शुरू कर दिया है?’ वीरेन्द्र ने शोर मचाते हुए कहा।

‘यही चीज़ मेरे दिमाग में अब तक नहीं आई है और...’ सरोज ने छोटा-सा जवाब दिया।

‘तो फिर वादा करो—यह वादा कि शेखर को कभी प्रेम न करोगी—।’

‘यह तुम्हारी ज्यादाती है वीरेन्द्र। व्यर्थ में प्रत्येक को वादों की जकड़ में फाँसते हो।’ शेखर ने लम्बे घौन के प्रश्नात् कहा।

‘तुम क्यों बीच में बोलते हो? आखिर सरोज क्यों न वादा करेगी? आज रात तुम खुद वचन दे चुके हो कि सरोज को कभी न चाहोगे। शेखर—तुमने यह भी तो कहा था कि यह एक गर्द का वादा है।’

‘अच्छा।’ सरोज बोली पर जैसे किसी ने उसका गला जकड़ लिया। पर वह अपनी फाँसी छुड़ाते हुए बोली—‘अच्छा... मैं वादा करती हूँ।’

और ऐसा कहते ही ऐसा प्रतीत हुआ जैसे सरोज का कलेजा मुँह को आ गया और शेखर...? शेखर को लगा जैसे उसके धड़कते हुए हृदय पर किसी ने लोहे की तपती हुई सलाख रख दी।

और वीरेन्द्र—वहाँ से चल दिया, पर पैर जैसे पृथ्वी पर न पड़ रहे थे। आकाश में उड़ता जा रहा था जैसे वह—ऊपर, बहुत ऊपर—आँसुओं और वेदनाओं की इस दुनिया से बहुत ऊपर।

‘उफ़—यह भला आदमी हमारी बातचीत में बाधा डालने कहाँ आ मरा था ?’ सरोज ने सुख का एक साँस लेते हुए कहा ।

शेखर को पता नहीं, सरोज क्या कह रही थी । वह डुल गया था । सरोज के उस वादे ने उसकी संपूर्ण आशाओं का खून कर दिया था ।

‘शेखर !’

‘...’

‘शेखर, मैं तुमसे कह रही हूँ ।’

शेखर जैसे सोते से जागा । चौंक कर बोला—‘ओह—हाँ, हमने कहाँ अपनी बातों का क्रम तोड़ा था ?’

‘याद नहीं आता । पर—आप—यह परेशान से क्यों हो गये हैं ?’ सरोज ने अधीर हो पूछा ।

‘नहीं तो—कहाँ—कुछ नहीं । तुम शायद अनूप की डायरी का जिक्र कर रही थीं ।’ वह लड़खड़ाते स्वर में बोला ।

‘हाँ, याद आ गया । पर आप—खैर...’ हाँ तो—उसमें से अपने काम के कागज़ों को मैंने नज़र कर लिया है । आपको दिखाने के लिए लाई हूँ । यहाँ से जाकर पढ़िए और दूसरी भेंट पर घटनाओं को क्रम बद्ध करके मुझे ममकाइए ।’ यह कहकर सरोज ने कागज़ों का एक छोटा-सा बगडल शेखर को दे दिया । फिर बोली—‘मुझे काफ़ी देर हो चुकी है, मेरी समझ में अब मुझे चल देना चाहिए ।’

‘सरोज, क्या तुम्हारी समझ में तुम्हारा वापस हवेली में जाना उचित है ?’

‘क्यों ?’

‘मुझे डर है कि कहीं तुम यहाँ देख न ली गई हो और वहाँ जाकर कहीं बन्दी न बना दी जाओ’ ‘इसके बाद कहीं अनूप वगैरा तुम्हें अन्यत्र ले जाकर न छिपा दें’ ।’

‘फिर मैं कहाँ जाऊँ ? मेरा तो खयाल है कि मुझे किसी ने नहीं देखा होगा ।’

‘तुम जानो । ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे । मुझे दुःख है कि मैं चौबीस घण्टे तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकता सरोज । तुम्हें वहाँ भेजते हुए मेरा दिल न जाने क्यों डर रहा है ?’

‘यदि मुझे लेशमात्र भी अपने रहस्य के खुल जाने का सन्देह हुआ तो विश्वास रखिए मैं आपको तत्काल सूचना दूँगी’ । अच्छा, अब फिर कब मिलिएगा ?’

बेचारी शीला जब शेखर से यही सवाल करती थी तो वह उसको यह कह कर टाल देता था कि मुलाकातों का धावा न खाओ और अब ‘‘अब वह खुद अपने को धोखे के ‘घर’ में धकेल रहा था—बोला—‘जल्दी ही—।’

‘अच्छा तो जाऊँ ?’

‘किस दिल से कहूँ मैं—?’—सरोज टकर-टकर देखने लगी शेखर को ।

‘अनूप की मौजूदगी में तुम्हारा निकलना खतरे से खाली नहीं है सरोज—।’ शेखर कह रहा था—‘जब तक तुम बहुत ही आवश्यकता न समझ लो । अब न निकलना ।’

सरोज टकर-टकर देखने लगी शेखर को ।

‘सरोज !’

‘हूँ ।’

‘कुछ नहीं ?’

‘क्या ? क्या कुछ नहीं शेखर ?’ सरोज की गर्म-गर्म साँसें शेखर की कनपटियों पर लग रही थीं और शेखर अनुभव कर रहा था जैसे उसके भीतर कहीं सीसा उबल रहा है... वह क्या बताए, क्या कहे सरोज को ? वादे... मर्द... औरत... प्रेम... वीरेन्द्र—वादों का फन्दा... छुटपटाहट ।

सरोज मुस्कराकर कह रही थी—‘आप भी हमारी बुद्धि का चक्र लगाने न आना...’।

‘मुझे तुम अपने हाल पर छोड़ दो सरोज ।’

सरोज ने देखा—यह कैसा स्वर ? व्यथातुर और विकम्पित... मानव का स्वर ?—यह कैसा मुख-मण्डल ? शोकातुर, क्लान्त और विशय—?

वह बोली—‘वाह, आपने मेरे कारण खतरे जो मोल ले लिये हैं ।’

और शेखर के जी में आया कि वह भी वीरेन्द्र की भाँति घोषणा कर दे कि वह भी उसके लिए प्राण गँवा सकता है... किन्तु उसके होठों पर मोहर लग गई ।—वादे... वीरेन्द्र... फ़र्ज़ !

‘अच्छा, अब आप मेरे साथ न चलिए, मैं खुद चली जाऊँगी ।’ सरोज कह रही थी ।

‘थोड़ी दूर भी नहीं ?’

सरोज ने देखा कि उसके नेत्रों में मानव की घनीभूत पीड़ा और दिल की कसक उभर आई थी । बोली—‘खैर, वहाँ तक चले चलिए, जहाँ हम पहली बार मिले थे । उससे एक इञ्च आगे नहीं ।’

यह कह कर दोनों वहाँ तक आए, चुप-चुप चुप-चुप—मौन, धड़कते हृदयों के थामे । कुछ रुके, कुछ एक दूसरे के समीप आए । शेखर ने सरोज की काँपती हुई आँखों में देखा—दृष्टि फिसल गई—दूर तक, और न जाने उन गहराइयों में कहाँ जाकर डूब गई । सरोज ने शेखर की झलकती हुई आँखों में देखा और पलकें गिर गई । अधर हिले... हिले और मुँह का जायका कड़वा हो गया तो साड़ी का एक छोर मुँह में पल्लू समझ टूँस लिया । हृदय का वेग भीतर ही घुटता रह गया, रुलाई भी

बाहर न फूट सकी । फिर आँसुओं के भीतर से हँसती हुई, चाँदनी सी खिला, चल दी ।

शेखर के होठों पर मानो हँसी रोई । और पैरों को घसीटता, शेखर धर्मशाला में आ गया ।

रात भर शेखर खाट पर कुसमुसाता रहा । नींद विलीन हो गई थी और विचार—सदस्त्रों विचार आ आकर उसे भँकोड़ रहे थे—उफ़, ऐसा प्रेम का राग परिणाम होगा जिसे वादों से बुरी तरह जकड़ दिया गया हो... सरोज मेरी नहीं हो सकती किन्तु क्या वीरेन्द्र ने उससे यह भी वादा ले लिया था कि उसके दिल में मेरी कल्पना तक को भी न आने दे ? नहीं-नहीं, न यह वीरेन्द्र को अधिकार है और न इसके लालच का शेखर के पास अन्त ही... और इन्हीं चिन्ताओं में भोर हो गई ।

चन्द्रहास ने शेखर से बहुत ही पूछा किन्तु उसने उसे कुछ भी न बताया । दोनों उठकर बैठे ही थे कि ठाकुर की छोटी लड़की एक लिफाफा लाई और शेखर के हाथ में देकर चली गई ।

उसने पढ़ा—तो उसके मुँह से असीम वेदना की एक चीख-सी निकल गई । सिगरेट मुँह से गिर पड़ी और पागलों की भाँति उठ खड़ा हुआ ।

‘क्यों, क्या बात है शेखर ? कुशल तो है ? मैं पढ़ सकता हूँ इस पत्र को ?’ चन्द्रहास ने परेशान होकर कहा ।

‘देखे लो ।’ रोते हुए स्वर में शेखर ने कहा ।

चन्द्रहास ने पढ़ा—‘परिस्थितियाँ बड़ी खराब हो गई हैं—आह, जल्द आओ । तुम्हारे पास से आकर वह सोने चली गई । एक बने क करीब जब मैं उसके गुप्त स्थान पर पहुँची तो स्थान को खाली पाया । उसका कोई पता नहीं है । दुःख तो यह है कि मैं उसके सम्बन्ध में किसी से कुछ पूछ भी नहीं सकती हूँ । ज़रूर उसको यहाँ से उड़ा दिया गया है । अब मैं भी जा रही हूँ, मैंने केवल उसके कारण ‘बँकरानी’ का

बढ़ काम लिया था । तुम मालूम करने की कोशिश न करो कि मैं कौन थी । सबसे पहले सरोज का पता लगाओ ।’

‘अच्छा तो यह नौकरानी कोई अपना अलग ही रहस्य रखती है ? भाई शेखर, तुम किस जादू की ज़मीन में आ फँसे हो ?’ चन्द्रहास ने कहा ।

शेखर ने कोई जवाब नहीं दिया । कपड़े पहने और सीधा अनूप सिंह की हवेली पर पहुँचा । इस समय वह और उमराव सिंह बैठे धीमे-धीमे बातें कर रहे थे ।

‘बताइए आपने उसे कहाँ गायब कर दिया है ?’ शेखर ने कमरे में प्रवेश करते ही दहाड़ते हुए अनूप से पूछा ।

‘किस... किसको ? आओ पागल प्रेमी ।’ उमराव ने कड़वी मुस्कराहट से कहा ।

‘किसको शेखर ?’ अनूप ने कमाल के संयत स्वर में बिना किसी हिचकिचाहट के मुस्करा कर कहा ।

‘सरोज को । और किसको ?’ स्वर वज्र सदृश गरभीर था—होठों से फट पड़ा ।

‘सरोज को... ? वह है कहाँ ? उसकी तलाश में तो हम सब चिन्तित फिर रहे हैं भाई...’ अनूप ने फिर उसी असाधारण संयत स्वर में कहा ।

‘आप बन रहे हैं । वह आपके मकान में छिपी हुई थी । निस्संदेह इसका ज्ञान आपको न था लेकिन कल रात को आपको मालूम हो गया और रातों रात आप दोनों ने उसको यहाँ से कहीं उड़ा दिया...’ शेखर ने क्रोध में पागल हो, कहा ।

‘खूब, आपने यह कोई नया ही शोशा छेड़ा है अब ।’ उमराव सिंह ने मुस्कराकर कहा ।

‘देखिए, हँसने का अवसर नहीं है, या तो सीधी तरह बता दीजिए नहीं तो पुलिस में जाकर मैं अभी रिपोर्ट करता हूँ कि आप दोनों ने उसको उड़ाया है।’ शेखर क्रोध से काँप रहा था ।

‘शेखर, कुछ होश में भी हो ? मैंने तुम्हें इसलिए अपने मकान में आने की आज्ञा दी थी कि तुम इस प्रकार का आचरण लगाओ । मेरी कृपाओं को याद करो ।’ अनूप ने पहली बार सकोध कहा ।

‘श्रीमान्, आपके इस पाप का, आपके इस अपराध का अकेला गवाह मैं ही नहीं हूँ बल्कि वीरेन्द्र भी है । सरोज इस मकान से निकली थी और हम दोनों से बातें करके वापस इसी में आई थी । आप लोगों की नज़र पड़ गई होगी और सम्भव है उससे आपके जीवन का अथवा किसी स्वार्थ का घनिष्ठ सम्बन्ध हो इसलिए आपने उसे पकड़कर किसी और दूर जगह पर नज़रबन्द कर दिया है ।’

‘मैं फिर कहता हूँ तुम्हारी ज़बान से अच्छी बातें नहीं निकल रही हैं, ज़रा होश में रहकर मुँह से निकालो वरना पछताओगे ।’ अनूप सिंह ने गरज कर कहा ।

‘यह प्रेम का नशा और जवानी का जोश अभी रफ़ुचकर हो जायगा मिस्टर !’ उमराव ने कहा ।

‘अच्छा, देखना है कि मेरी युवावस्था अधिक पवित्र है या आपका बुढ़ापा अधिक पापमय’ । अच्छा प्रणाम ।’ और यह कह, शेखर आँधी की तरह चल दिया ।

गुस्सा ठंडा होने के पश्चात् उसे दुःख हुआ कि अनूप जैसे प्रतिभाशाली मनुष्य को ‘चैलेंज’ देने में उसने शीघ्रता की । जो हो, अब तो तीर कमान से निकल चुका था ।

रास्ते में वह बहुत देर तक सोचता रहा कि क्या करे, कहाँ जाय । वह दुःख से पागल-सा हो रहा था । जब तक सरोज उसे न मिली थी, उसे धैर्य था । और जब वह मिल गई तो उसके दर्प की सीमा न रही थी किन्तु अब—जब वह खो गई थी तो वह जीवन में प्रथम बार वियोग के दुःख से टुकड़े-टुकड़े हो रहा था । उसे लग रहा था जैसे किसी निर्दयी शक्ति ने उसके जीवन का समस्त रस और सांदर्य पी लिया था । इसकी

दुनिया अंधेरी हो गई थी । उसके चेहरे पर ऐसा विषाद झलक रहा था जैसा शोपेन होअर ने अपनी मृत्युमयी निराशा में, बेटोफेन ने गहरे दुःख में और चेकोवस्की ने अपने शोकपूर्ण विस्मय में अलापा था । ऐसा अलाप जिसका हर उतार-चढ़ाव दिल की एक-एक नस को काटता और आत्मा के एक-एक तार को मसल डालता है । उसकी भवों से थोड़ा ऊपर हट कर चिन्ता ने अपनी सीमा-रेखा डाल दी थी ।

वियोग ही प्रेम का माप दण्ड है । इच्छित वस्तु के खो देने के पश्चात् ही हमें उसका मूल्य मालूम होता है । प्रेम पर उस समय तक ऊँघ छाई रहती है जब तक इसे वियोग का दारुण दुःख आकर नहीं भँफोड़ता । वीरेन्द्र का 'पागलपन' ठीक था । शेखर भी अपने अन्दर उसी प्रकार के पागलपन के आसार अनुभव कर रहा था यद्यपि उसके प्रेम को वादों में जकड़ कर असम्भव सा बना दिया गया था किन्तु जब भी प्रेम फूट पड़ता है तो परिस्थितियों, घटनाओं तथा परिणाम की परवाह नहीं करता । उसका भी प्रेम कुछ ऐसा ही था—ऐसा ही उन्नत जैसा दाऊद का जूवियातन के प्रति था—वही प्रेम जिसका 'प्लैटो' ने उल्लेख किया है, माइकेल एञ्जेलो तथा शेक्सपियर ने जिसका वर्णन अपनी कविताओं में किया है—वैसा स्वर्गीय प्रेम जो सुन्दर है और संस्कृति का परिचायक है***।

शेखर शून्य पथ पर निरुद्देश चलने लगा । चिन्ता जब अधिक हो जाती है तब उसकी शाखा-प्रशाखाएँ इतनी निकलती हैं कि मस्तिष्क उनके साथ दौड़ने में थक जाता है । किसी विशेष चिन्ता की वास्तविक गुरुता लुप्त होकर विचार को यान्त्रिक और चेतना-वेदना-विहीन बन देती है । तब, पैरों से चलने में, मस्तिष्क से विचार करने में कोई विशेष भिन्नता नहीं रह जाती । शेखर की भी वही अवस्था थी । वह बिन संकल्प के अन्धे बाबा की बगिया की ओर चल पड़ा ।

आज बाबा से समाप्त होने वाली लड़ाई लड़नी थी । जब व

वहाँ पहुँचा तो बाबा बुखार में सुलग रहे थे ।

शेखर ने पहुँचते ही कहा—‘बाबा प्रणाम ! मैं आज आपको अन्तिम बार कष्ट देने आया हूँ—फिर कभी न आऊँगा । आज बाबा, मैं अपनी पूरी तैयारी के साथ आया हूँ—सरोज मिल गई है, मैं उससे मिल चुका हूँ और वह कल फिर यहाँ से उड़ा दी गई है । उसके द्वारा मेरे हाथ अनूप की डायरी भी पड़ चुकी है । और मैंने उसे कई नई-नई बातें जानी हैं । अब आप मुझसे कुछ छिपा नहीं सकते । अब आपको बताना पड़ेगा कि सरोज की माँ कौन है, ‘साहू’ किस गाँव का नाम है और वह कहाँ है और ‘किरण’ किस स्त्री का नाम है और वह कहाँ है ?’

‘ईश्वर के लिए ज़बान बन्द करो । क्या बके जा रहे हो ? वह सुन लेगा—’ बाबा ने काँपते हुए कहा ।

‘मैं किसी से नहीं डरता । मैंने अपनी परिणीता स्त्री से विश्वासघात नहीं किया है । मैंने अग्नि को साक्षी रखकर जो वचन दिए थे, उन्हें तोड़ा नहीं है । मैंने एक पतिव्रता और सुशील पत्नी के होने हुए दूसरी स्त्री से विवाह नहीं किया है । मैंने संतुष्ट जायदाद की स्वामी—अपनी पहली पत्नी को पन्द्रह वर्ष से कहीं इसलिए नहीं छिपा रखा है कि उसकी मृत्यु से जायदाद इत्यादि पति के पास नहीं जायगी किन्तु उसके ही किसी निकटतर आत्मीय के अधिकार में चली जायगी । बाबा, मैं अत्याचारियों और दुष्टों को, जिन्होंने ग़ज़ब ढाया है, बहुत शीघ्र पुलिस के हवाले करने वाला हूँ—और उनके साथ वह लोग भी पकड़े जायेंगे जिन लोगों ने इनकी इस अपराधपूर्ण ‘डूमा’ में सहायता की है ।’ शेखर क्रोध के आवेश में काँपने लगा ।

बाबा सिर से पाँव तक काँप रहा था—‘ओह, तुमने बहुत कुछ मालूम कर लिया ।’ कुछ रुका और फिर काँपते हुए स्वर में बोला—‘तो फिर सुनो—आज मैं तुम्हें अठारह वर्ष पूर्व की कहानी संक्षेप में सुनाता हूँ—सुनो ।’ उसने दीवार का सहारा लेकर बैठते हुए कहना शुरू किया—

अनूप जवानी में बड़े आवारा थे लेकिन शरीफ बाप की औलाद थे और छोड़ी-सी जायदाद भी पल्ले थी इसलिए जागीरदार और रईस सूरत सिंह जी की सबसे छोटी लड़की से जो सब बहनों में रूपवती थी, वह विवाह करने में सफल हो गये किन्तु सूरत सिंह जी अनूप पर विश्वास नहीं करते थे इसलिए उन्होंने अपनी जायदाद की शर्त यह रखी कि छोटी लड़की के हिरसे की जायदाद पर अधिकार सदैव लड़की का ही होगा और यदि उस बीच वह मर गई तो सारी जायदाद व जागीर वापस लड़की ही के घराने में आ जायगी, उसके पति का उस पर कब्जा न हो सकेगा। दो साल तक तो अनूप सिंह आदमियों की तरह रहे, उसी बीच तुम्हारे पिता ने उन्हें बहकाया और सारी जायदाद तथा उसकी आमदनी को ढकार जाने के लिए अपने दूर के रिश्ते में जो मामा होते थे, उनकी लड़की से अनूप सिंह का दूसरा विवाह करा दिया। क्योंकि जायदाद अपने अधिकार में करनी थी इसलिए तुम्हारी मौसी (चाची की बहन) अर्थात् पहली स्त्री को पागल मशहूर कर दिया। यह अनूप इस तरह तुम्हारे दूर के रिश्तेदार भी हैं। खैर तो, सूरत सिंह जी का देहान्त हो चुका था, लड़की का कोई रक्त व सहायक न रहा था, उस बेचारी को उन्होंने बिल्कुल पागल बना दिया। उस समय सरोज दो माह की होगी कि उसकी माँ को उससे पृथक करके 'साहू' पहुँचा दिया गया। यह गाँव यहाँ से डेढ़-सौ मील से ज्यादा दूर है और हुगली नदी के उस पार चट्टानों के बीच में दस-पन्द्रह घरों की बस्ती है। इस बस्ती से एक मील की दूरी पर अनूप ने ज़मीन खरीदकर एक बड़ा-सा मकान बनवाया था जिसके चारों ओर पन्द्रह-पन्द्रह फीट ऊँची दीवारें हैं। अन्दर उसके बगीचा है—जहाँ तरकारियाँ भी बोई जाती हैं और अनाज की पैदावार के लिए बाहर भी खेत इत्यादि हैं। हाँ तो, सरोज की गरीब माँ को पागल मशहूर करके उस मकान में ले जाकर रखा। वह पन्द्रह वर्ष से भी अधिक समय से वहीं कैदी की भाँति पड़ी हुई है। मेरा खयाल

है, वह अभी मरी नहीं है क्योंकि अनूप ने अभी कोई छः महिने हुए उसका ज़िक्र किया था। अब मर गई हो तो कह नहीं सकता। उसकी देख-भाल तथा काम-काज के लिए दो माली, एक चौकीदार और दो नौकर रहते हैं...।'

बाबा ने कुछ दम लिया और फिर कहना शुरू किया—'सरोज की माँ को खुरकी की राह से ले जाने में खतरा था कि कहीं रास्ते में पुलिस वगैरा को कहीं संदेह न हो जाय इसलिए उसको 'फिरिया' तक तो रेल में ले गये, उसके बाद वहाँ से हुगली की ओर शुरू हो जाती है, इसलिए 'फिरिया' से उसको 'मोटर बोट' में सवार कराके 'साहू' पहुँचा दिया गया। सरोज को उससे छीन कर लच्छीराम और उसकी पत्नी के पास छोड़ दिया गया और उन लोगों ने उसे सन्तान की तरह पाला। अब मैं मर तो रहा हूँ—बेटा, मैं चाहता हूँ कि इस 'रहस्य' को किसी सहृदय और दर्द मन्द आदमी के सुपुर्द कर दूँ। क्योंकि तुम सरोज के मामले में बहुत ज्यादा दिलचस्पी ले रहे हो इसलिए तमसे अच्छा आदमी और कौन हो सकता है।' और बाबा कहते-कहते सहसा रुक गया। ज़ोर की खाँसी उठी थी जिससे वह दोहरा हो गया।

समय बहुत थोड़ा था और शेखर को काम बहुत करने थे इसलिए बाबा को बहुत-बहुत धन्यवाद देकर वह तत्काल वहाँ से उठकर चला दिया। राह में वह सोच रहा था कि सम्भव है अभी सरोज को 'साहू' नहीं भेजा हो क्योंकि उन लोगों को मेरा डर है इसलिए उसको भी उसकी माँ की भाँति निस्सन्देह 'फिरिया' घाट से मोटर बोट के द्वारा 'साहू' पहुँचाया जायगा या पहुँचा दिया होगा ?

शेखर को गाँव के बाहर सौभाग्य से वीरेन्द्र मिल गया। वह सिर झुकाए चिन्ताओं में डूबा हुआ कहीं जा रहा था। शेखर ने उसे आवाज़ देकर रोका। जब वह पास आया तो शेखर ने कहा—'वीरेन्द्र,

गज़ब हो गया ! तुम्हारी सरोज को उन दुष्टों ने फिर कहीं उड़ा दिया ।’ और फिर उसने विस्तार पूर्वक सारी घटना सुनाई ।

‘तो फिर साहू चलना चाहिए इसी समय । आह सरोज...’ कब तक तू मुझसे दूर रहेगी ? भाई शेखर, मैं छाया की तरह तुम्हारे साथ हूँ । ईश्वर के लिए जल्दी चलो उसके पास । मालूम नहीं निर्दयी अनूप ने क्या क्या अत्याचार किए होंगे उस पर...’ वीरेन्द्र व्यथित स्वर में बोला ।

‘पर सवाज यह है कि चलें किम प्रकार ? यदि सरोज को फिरिया घाट से मोटर बोट में सवार कराके भेज दिया गया है तो मेरा खयाल यह है कि हम सबसे निकटतर स्टेशन पर चलें और साहू के बहुत ही निकटतर रेलवे स्टेशन पर उतर कर वहाँ से साहू पहुँचें । हमको चाहिए कि सरोज की बोट से पहले हम उस बस्ती में पहुँच जायँ । मेरे विचारानुसार रेल से रास्ता सीधा है और सफर में भी कम समय लगेगा ।’

वीरेन्द्र ने कहा ‘भाई, मेरे पास मोटर वाटर तो है नहीं । हाँ, तीन-चार घोड़े हैं और अच्छे मज़बूत जानवर हैं । यदि कहो तो इस समय हम उन्हीं पर सवार होकर स्टेशन चलें ।’

शेखर बड़ा खुश हुआ, वीरेन्द्र की पीठ ठोकते हुए बोला—‘वाह-वाह, क्या कहने—बस मज़ा आ गया ! तुम उनको जाकर जल्दी से तैयार करो । मैं धर्मशाला से होकर यह आया—तुम मुझे स्कूल के पास तैयार मिलना ।’ यह कहकर शेखर भागा हुआ धर्मशाला पहुँचा, चन्द्रहास से संक्षेप में ‘वात’ कही—। वह भी साथ होने का अनुरोध करने लगा किन्तु शेखर उसको रोककर लपका हुआ स्कूल आया और कुछ देर पश्चात् ही वह और वीरेन्द्र दोनों घोड़ों पर सवार होकर हवा हो गये ।

वीरेन्द्र बोला—‘क्या यह सम्भव नहीं कि हम फिरिया होते हुए रेलवे स्टेशन चलें ?’

शेखर ने कहा--‘समय तो लगेगा किन्तु खयाल तुम्हारा ठीक है, सम्भव है बोट अभी रवाना न हुआ हो ।’ तभी, उनके सामने से आँधी की तरह एक स्त्रोत्र आता हुआ नज़र आया । वह उनसे कुछ दूरी पर बहुत तेज़ी से वापस कस्बे की ओर जा रहा था ।

‘अरे, यह कौन था शेखर ?’

‘नहीं पहचाना तुमने ? अनूप थे ।...वीरेन्द्र, अब फिरिया चलना बेकार है । मालूम होता है कि अनूप उसको सवार कराके वापस आ रहा है । यदि हम आध घण्टे में भी फिरिया पहुँचे तो इस बीच बोट काफी दूर निकल चुकेगा—।’

वीरेन्द्र ने घोड़े की लगाम मोड़ने हुए कहा—‘बात ठीक है । स्टेशन ही चलो सीधे...’

दोनों स्टेशन की ओर दौड़ने लगे ।

वीरेन्द्र कह रहा था--‘शेखर, रह-रहकर ज्योतिषी के शब्द याद आ रहे हैं ।’

शेखर बोला—‘इस समय सब कुछ भुला दो वीरेन्द्र । केवल सरोज की ढूँढ़ को सामने रखो ।’

वीरेन्द्र ने घोड़े की लगाम को कुछ खींचते हुए कहा—‘तुम अपने वादे पर तो स्थिर हो न ?’

‘विश्वास रखो—।’ शेखर ने घोड़े के पङ्ख लगाते हुए कहा—‘मैं वादे तोड़ने वाला नहीं हूँ ।’

और इसी प्रकार पैंतालीस-पचास मील का सफ़र घण्टे-डेढ़ घण्टे में तय करके वह स्टेशन पर पहुँच गये । वीरेन्द्र ने घोड़े पास के गाँव वाले एक धोबी के हवाले किये और जल्दी से दो टिकट खरीदे । आध घण्टे की प्रतीक्षा के बाद गाड़ी आ गई । दोनों बैठ गये—। चाहते तो बहुत थे, किन्तु यह उनके वश में न था कि रेल को दुगने वेग से चलाते । सरोज...सरोज...।

‘प्रिय शेखर ! आज रात को राजीव भी भा रहे हैं । जी चाहता है कि आज की रात फिर खाने-पीने, चीखने-चिल्लाने, हँसने-हँसाने में व्यतीत की जाय । इसलिए चन्द्र को लेकर नौ बजे से पहले ही आ जाओ ।’ चन्द्रहास को तहसीलदार साहब का यह छोटा-सा पत्र सन्ध्या को मिला । उसने जवाब में लिख दिया—‘शेखर तो किसी निजी आवश्यक काम पर कुछ दिन के लिए बाहर गये हुए हैं । सेवक हाज़िर है ।’

गरज चन्द्रहास साढ़े आठ बजे तहसीलदार साहब के यहाँ पहुँचा ।

‘आखिर शेखर कहाँ चले गये ?’ दोनों बाप-बेटी ने उसका स्वागत करते हुए पूछा ।

‘उनको एक बहुत ज़रूरी काम से अपने घर जाना पड़ा । वह ऐसी जल्दी में थे कि मैं उनसे विस्तार पूर्वक कुछ पूछ भी न सका ।’ चन्द्रहास ने दोस्त का राज़ छिपाते हुए कहा ।

‘अजीब आदमी हैं । हमसे कहा भी नहीं ।’ शीला ने भवें सिकोड़ते हुए कहा ।

‘कह तो रहा हूँ कि बहुत जल्दी में थे और जब उन पर किसी काम को धुन सवार होती है तो उनको अपना होश नहीं रहता ।’

‘कहिए आपकी भयन का क्या हाल है ?’ तहसीलदार साहब ने मुस्कराकर पूछा ।

‘कुशलपूर्वक होंगी । अब वह हमारी कहाँ हैं, अपने माता-पिता की हैं ।’ चन्द्रहास ने हँसकर कहा ।

अभी तक न राजीव आये थे और न लड़कियाँ । तहसीलदार साहब दूसरी मेज़ पर ज़रा अपना 'पाइप' तैयार करने चले गये थे ।

शीला ने हौले से कहा—'आपका सम्बन्ध हरबन्स से क्यों न करा दिया जाय ? बड़ी अच्छी लड़की है और उस दिन आप भी उसकी ओर झुके हुए मालूम हो रहे थे ।' और फिर मुस्करा पड़ी ।

चन्द्रहास बोला—'खयाल तो बुरा नहीं है लेकिन यह देख लो, नयन तुमको उम्र भर कोसेगी ।'

'उफ़, जैसे उसको आपका खयाल ही हो ।'

'यदि तुम्हें राजीव का खयाल नहीं है तो मुझे भी नयन का या नयन को मेरा खयाल न होगा ।'

'ओह !'

'कहिए-कहिए ?'

'राजीव को हमने बहुत बड़ी हद तक आदमी बना दिया है ' ।'

शीला ने प्रसन्न बदल दिया ।

चन्द्रहास हँसा—'मेरी समझ में आज तक न आया कि उस गरीब में आखिर कमी क्या अनुभव की जाती है ? तुम और शेखर सदा इसी चिन्ता में उलझे रहते हो ।'

'आपको नहीं मालूम । वह पक्के अँग्रेज थे । ब्याह-शादी में 'कोर्टशिप' की चाह प्रस्तुत करते थे । उनका कोई खास 'चरित्र' न था ।'

'थम जाओ ।' चन्द्रहास ने बात काटते हुए कहा—'क्या ऐसे आदमी को बिना किसी 'कैरेक्टर' का कहा जा सकता है जो तुम्हारे प्रेम में पागल हो रहा है ?'

'प्रेम में पागल ? आप बिना सोचे कह गये —। यों कहिए कि उन्होंने अपनी पश्चिमी सभ्यता का शिकार मुझे बनाना चाहा था ' ।'

‘क्या—क्या ? मैं तुम्हारा आशय न समझा !’ चन्द्रहास ने कहा ।

‘इसमे मेरा कसूर नहीं है । आपको मालूम है, मैंने कुछ हफ्तों से उनसे अकेले में मिलना छोड़ दिया, कुछ जाना छोड़ दिया ? अपना यह ‘राज्ञ’ मैं शेखर से अच्छे ढङ्ग में कह सकती थी किन्तु चूँकि आप भी उनके अन्तरङ्ग मित्र होते हैं, इसलिए कह रही हूँ ।’

‘किन्तु शीला, तुम—तुम—समा करना, तुम खुद भी तो पाश्चात्य आदर्शों की प्रेमिका हो ।’

‘थी कहिए, हूँ नहीं । यदि शेखर मेरे जीवन में प्रवेश न करते—हाँ—मुझे आपके सामने स्वीकर करना पड़ रहा है कि राजीव की उपस्थिति के उपरान्त शेखर मेरे जीवन में घुस आये थे । वह तो ईश्वर ने मुझे हलके पिर का बताया है वरना मेरी दशा बिगड़ जाती—घबराओ नहीं—पिता जी हमें देखकर, वहीं अपना ‘पाइप’ लेकर बैठ गये हैं । हाँ तो, अपनी इस अनधिकार चेष्टा से ही राजीव को मुझसे ‘कोर्टशिप’ की ज़रूरत अनुभव हुई थी और मैं भी कुछ जाने में, अपनी इच्छा से सहेलियों के यहाँ जा धमकने में, काफी से ज्यादा स्वतन्त्र हो गई थी । वह तो शेखर ने—मुझे अपनी ज़िम्मेदारी का ध्यान दिलाया और मैं खुद बजाय बाप के अपनी अभिभावक आप बन गई । मैं तो उस लड़की को बड़ी सौभाग्यशालिनी समझती हूँ जो कुछ खाने से पूर्व उत्तरदायित्वहीन तथा लापरवाह माँ-बाप के विरुद्ध आप अपनी निगरानी की मालिक बन जाय—अरे, मैं कहाँ पहुँच गई । क्या कह रही था मैं ?’

चन्द्रहास शीला की अच्छी-अच्छी बातों में कुछ खो-सा गया था, सहसा चौंकर बोला—‘शीला, तुम बहुत अच्छी लड़की हो—उफ़, तुम तो अनमोल मोती हो । शेखर ने सदा तुम्हारी प्रशंसा की है और आज वास्तव में उसकी राय से सहमत होने पर मैं अपने को विवश पा रहा हूँ ।’

‘विवशता का कोई कारण तो नज़र नहीं आता ।’ शीला लजाती हुई-सी बोली ।

‘कारण तो मेरे सामने साक्षात् खड़ा है । यदि राजीव वास्तव में ऐसा ही ‘कैरेक्टर’ से खाली इन्सान है जैसा कि अभी तुमने मुझसे कहा है तो मैं कभी भी तुम्हें इसकी आज्ञा न दूँगा कि तुम जैसी लड़की उसको मुँह लगाकर उसके सौभाग्य में और वृद्धि करे ।’

‘खैर ...’ मैं कह रही थी कि मेरी जिन्दगी की रक्षा करने पर दो ओर से प्रहार हुए—यां कहिए एक ही समय में दो प्रहार हुए । मेरी हल्की सा जान पर एक ओर से शेखर का हमला और दूसरी ओर से इस वास्तविकता का कि वह सुन्दर सरोज की ओर आकर्षित हैं । तब मैंने अति सुन्दर सिपहसालाराना ढङ्ग से काम लिया अर्थात् सरोज के हक में पराजय स्वीकार की और राजीव में शेखर को ढूँढ़ना आरम्भ कर दिया ।

‘अच्छा तो यह लड़ाई अब इस प्रकार लड़ी जा रही है ? इसलिए गरीब राजीव पर यह ‘शेखर-राख’ विजय प्राप्त कर रहा है ।’ शीला, तुमने बड़ी बुद्धिमता से काम लिया और मुझे आशा है कि तुम अब तक अपने उद्देश्य में ठीक चल रही होगी ।’

‘हाँ, काम चलाऊ सफलता मिल रही है । शुरू में तो राजीव मेरे निस्तेज और सर्व ढङ्ग को समझ न सके किन्तु जबसे मैंने खुल्लम-खुल्ला उनके एक-एक आचरण के प्रति अरुचि तथा घृणा का भाव प्रदर्शित करना आरम्भ कर दिया तो उन्होंने भी समझ से काम लिया या यों कहिए कि इस संघर्ष में स्वयं एक अवस्था ऐसी आ जाती है जब प्राणी प्रतिशोध लेने पर विवश हो जाता है । अर्थात् राजीव ने भी इन सब बातों का अनुसरण किया जो मुझे प्रिय थीं और वह आचरण जो मुझे अप्रिय थे धीमे-धीमे उनमें से दूर होने लगे । इस समय वह इसी सतह पर हैं, इसी धरातल पर और मेरा विश्वास है कि थोड़ा-सा और

पसीना बहाने के बाद वह और ऊँचे स्तर पर आ जायँगे ।...अरे, लो, वह शोभा, रक्त वगैरा आ गई ।' और यह कहकर शीला अपनी सहेलियाँ में जा मिली ।

चन्द्रहास बैठा 'शीला' पर सोचता रहा...कितनी अच्छी लड़की है, कैसी विचित्र है यह शीला ! ठोकर खाती है और सँभलकर चलने लगती है । भूल जाती है कि ठोकर लगी थी, दर्द भी हुआ था, आह भी निकली थी जैसे कभी । लीक-लीक पर चलने वाली, संसार के सभी प्रश्नों को मानो हल किए बैठी—यह शीला—।

'ओहो शीला ! आज शेखर को कौन से दरबे में बन्द कर दिया है?' शोभा ने मुस्कराकर कहा ।

चन्द्रहास जैसे होश में आ गया ।

'ख़ूब—वह बाहर गये हुए हैं । उनके यह दोस्त चन्द्रहास जी तो मौजूद हैं । इनको बनाओ आज खूब ।' मुस्कराते हुए शीला बोली ।

तभी, तहसीलदार साहब बोले—'लो भाई, यह राजीव का पत्र भी नौकर ले आया है । वह आज नहीं आ सकेंगे । अपने पिता की बीमारी के कारण अनुपस्थिति के लिए समा चाही है ।'

आज का उत्सव कोई विशेष न रहा । खाना खाने के बाद थोड़ी देर तक हँसी-मज़ाक होता रहा । फिर सब चल दिये ।



रात का एक बच्चा होगा । शेखर और वीरेन्द्र दोनों ऊँघते हुए रेल में चले जा रहे थे कि वीरेन्द्र ने लम्बी जँभाई लेते हुए शेखर से पूछा—'आपको विश्वास है कि हम बोट से पहले साहू पहुँच जायँगे ?'

‘हिसाब तो यही कहता है ।’ आँखें मलने हुए शेखर बोला—‘बोट पन्द्रह मील प्रति घण्टा की रफ्तार से ज्यादा नहीं चल सकती, इस प्रकार वह साहू दस घण्टे से पूर्व नहीं पहुँच सकता जब कि हमारी रेल की यात्रा छः घण्टे की ही है । अन्तिम रेलवे स्टेशन पर उतर कर हमारे पास चार घण्टे रहते हैं जहाँ से साहू तीस मील दूर है । यदि हमने यह तीस मील, पन्द्रह मील फ्री घण्टे की रफ्तार से तय कर लिये तो हम उस हिसाब से उनके दो घण्टे पहले वहाँ पहुँच सकने हैं ।’

‘लेकिन सवारी की क्या व्यवस्था की जायगी ? छोटा-सा स्टेशन है, वहाँ तो किसी सवारी की आशा हो नहीं सकती—हाँ, कस्बे में कुछ मिल जाय तो मिल जाय ।’

‘यह तो रेल से उतर कर सोचेंगे । रात्रि में सभी समस्याएँ अविचारणीय हो जाती हैं । अन्धकार हट जाने पर सम्भवतः ठीक विचार किया जा सके ।’

रात्रि के दो बजे होंगे जब यह लोग रेल से उतरे और सवारी ढूँढ़ना शुरू किया किन्तु वहाँ सिवाय सुस्त रफ्तार बैल-गादियों के कुछ दिखाई न दिया ।

‘बाबू जी, आपने कस्बे से मोटर क्यों न मँगाई ? आप ही की तरह ग्यारह बजे वाली गाड़ी से एक वृद्ध महाशय और भी उतरे थे । उन्होंने अपने अकेले के लिए पूरी एक लारी किराये पर की थी और वह भी साहू ही गये हैं ।’ स्टेशन मास्टर ने शेखर से कहा ।

‘अच्छा, कोई और सज्जन भी इस राह से साहू गये हैं !’ शेखर ने विस्मय से कहा ।

उसके पश्चात् उन साहब का हुलिया पूछा तो स्टेशन मास्टर ने उमराव सिंह का नक्शा प्रस्तुत किया ।

‘मेरा यह खयाल है शेखर कि हम कस्बे में तो चर्जे । शायद वहाँ कुछ इन्तज़ाम हो सके सवारी का ।’ वीरेन्द्र ने कहा ।

‘इसके सिवा अब चारा भी क्या है ?’ शेखर बोला—‘लेकिन तुझे सुना, स्टेशन मास्टर क्या कह रहा था ? अर्थात् हम से तीन घण्टे पहले यहाँ से उमराव रवाना हो चुका है । वीरेन्द्र, हमें बहुत सतर्क रहने की जरूरत है । उसको विश्वास था कि हम सरोज का पीछा करते हुए इसी राह से आयेंगे, इसलिए वह हमारी राह में बाधा डालने को हम से पहले ही निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच जाना चाहता है ।’

‘तुम्हारा खयाल ठीक है किन्तु वह हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता । अच्छा अब चलो, कस्बे में चलें ।’

और यह कह, वह दोनों कस्बे की ओर चल पड़े । कस्बे में प्रत्येक आदमी सोता-पड़ा था । बहुत देर तक किसी सवारी का इन्तजाम न हो सका, आखिर उन्होंने एक साइकिल वाले की दुकान ढूँढ़ निकाली और दो सेक्रेण्ड हैंड साइकिलों की पूरी कीमत जमा कराके दोनों साइकिलों पर सवार हुए और राम भरोसे साहू की ओर चले पड़े ।

कई मील तक तो सड़क ठीक थी लेकिन अब कच्चा रास्ता शुरू हो जाने के कारण और फिर पहाड़ियों के चढ़ाव-उतार से साइकिलों पर राह तय करना बड़ा कठिन-सा हो गया था । चार बजने वाले थे, किन्तु बादलों के कारण चारों ओर घना अन्धकार फैला हुआ था । सुन्सान जङ्गल—चारों ओर सन्नाटा, जिसे केवल साइकिलों के वह ढीले मडगार्ड अपनी खड़खड़ाहट द्वारा भङ्ग कर रहे थे, हृदय में विचित्र-से भय का सञ्चार कर रहे थे ।

‘अपनी तो साइकिल के ब्रेक ही गायब हैं ।’ वीरेन्द्र बोला ।

‘यही हमारा हाल है । पहाड़ी के प्रत्येक ढाल पर यही विचार होता है कि अब गिरा खड़ुँ में—अब गिरा खड़ुँ में । देखो, सामने कितना खम्बा ढाल है—ज़रा सँभलते रहना भाई ।’ शेखर ने सचेत करते हुए कहा ।

ढाल पर दोनों की गाड़ियाँ हवा हो गई । उसके बाद उतनी ही लम्बी चढ़ाई आई जिसको हाँफते-हाँफते उन्होंने चढ़ना शुरू किया—‘मेरा खयाल है कि हम इस चढ़ाई पर उतर ही जायें ।’ देव जैसे वीरेन्द्र ने जोर लगाते हुए कहा ।

‘उतर जाओ । चढ़ना मुझे भी कठिन नज़र आ रहा है ।’ शेखर ने कहा ।

दोनों उतर गये । उन्होंने अभी ज़मीन पर पैर ही रखा था कि पास वाले खड्डे में से कुछ बड़े-बड़े पत्थर नीचे लुढ़कने लगे और अकस्मात् झपटकर तीन आदमी उसमें से निकले जो शेखर और वीरेन्द्र पर टूट पड़े ।

इस असम्भाव्य तथा अप्रत्याशित मुसीबत के लिए वह दोनों तैयार न थे, फिर भी उन्होंने एक क्षण में साइकिलें छोड़ दीं और अपने शत्रुओं से गुंथ गये । चन्द घूँपों और थपड़ों की आवाज़ें हुईं और पाँच-एक मिनट में वीरेन्द्र ने बदमाशों को उठाकर गड्डे में नीचे फक दिया । शेखर अब तक उस एक बदमाश से उलझा हुआ था । वीरेन्द्र उसके पास आया और हँसकर बोला—‘अरे, तुम अब तक इस मुरदार से लिपटे हुए हो ? क्या मैं मदद करूँ तुम्हारी ?’

‘नहीं वीरेन्द्र । देखो मैं अभी इसे ठिकाने लगाता हूँ ।’

वीरेन्द्र कमर पर हाथ रखकर दोनों की कुश्ती देखने लगा ।

आखिर शेखर ने बड़ी फटिंगाई के पश्चात् उस गुण्डे को नीचे पटक दिया और एक गड्डे में धकेल दिया ।

‘शाबाश वीरेन्द्र ! तुमने अकेले दो आदमियों को मारा । पहलवान आदमी हो आखिर ।’ शेखर ने उसकी पीठ ठोकते हुए कहा ।

‘तुम भी व्यायाम शुरू कर दो शेखर, बड़े काम की चीज़ है । मैं अकेला तीन-चार आदमियों का मुकाबला कर सकता हूँ । अच्छा...यह सब कुछ था क्या ?’

‘नहीं समझे तुम ? यह सब उमराव सिंह जी की कृपा थी । वह इस तरफ से निकला है और हमारे लिए इन गुण्डों को नियुक्त कर गया है । ईश्वर की कृपा से हम सफल हुए—चलो, अब गाड़ी उठाओ, समय बर्बाद नहीं करना चाहिए ।’ शेखर ने अपने कपड़े ठीक करते हुए कहा ।

दोनों ने फिर अपने चरखों को उठाया और चढ़ाई तय करने के बाद फिर से साइकिलों पर लद कर आगे बढ़े ।

सुबह के पाँच बजे के लगभग उन्होंने पच्चीस-तीस मील तय कर लिये । पहाड़ियों का हिस्सा अब कम हो गया था और कहीं-कहीं लम्बा चौड़ा मैदान नज़र आने लगा था । इसके अतिरिक्त उनको ऊँचाई पर से सुबह के धुंधलके में दूर—चाँदी की हल्की-सी लकीर भी दिखाई देने लगी थी ।

‘वीरेन्द्र, वह देखो, सामने हुगली नदी...ओफ़्रो, कितना लम्बा-चौड़ा पाट है ! अब मेरा खयाल है कि हम उस बग़ीचे और उस गाँव को तलाश करें ।’ शेखर ने कहा ।

दोनों अब गाड़ियों पर से उतर कर इधर-उधर किसी बस्ती के आसार में नज़रें फेकते हुए चल रहे थे । पौ फटनी शुरू हो गई थी । प्रत्येक वस्तु सूर्य के स्वागत के लिए बेचैन नज़र आ रही थी किन्तु आकाश पर गहरे बादल होने के कारण सूर्य का चमचमाता मुख दिखलाई पड़ने की कोई आशा न होती थी । अब शेखर और वीरेन्द्र रास्ते से हटकर खेतों में से जा रहे थे । एक खेत की मेंड पर शेखर ने दूर एक आदमी को बैठे हुए देखा । दोनों लपककर उसके पास पहुँचे और उससे साहू का रास्ता पूछा । मालूम हुआ कि वह अभी दो मील दूर है ।

‘साहू के पास एक बग़ीचा भी तो है न भाई ।’ शेखर ने कहा ।

‘सरकार, मैंने तो कोई बाग नहीं देखा—भूट क्यों बोल्नूँ ।’ उसने जवाब दिया ।

‘चलो, यह तो बस्ती में चक्कर मालूम हो जायगा।’ वीरेन्द्र ने कहा।

रात भर के जागरण और थकान से चूर सफ़र से दोनों की बुरी हालत हो रही थी किन्तु सरोज के विचार ने दोनों में ऐसी स्फूर्ति, ऐसा अदृश्य साहस और ऐसी प्रेरणा भर दी कि वह अपने होठों पर उपालम्भ का नाम भी न ला रहे थे। आखिर गिरते-पड़ते यह गाँव के निकट पहुँचे। सूरज निकल चुका था। जानवर नदी के किनारे पानी पी रहे थे और औरते पानी भरने निकल चुकी थीं। शेखर और वीरेन्द्र ने साइकिलों को एक पेड़ से लगाया और एक चबूतरे पर ज़रा साँस लेने को बैठ गये।

‘आह, सरोज तू मुझे यहाँ तक ले आई है। ईश्वर करे मेरी यह भाग-दौड़ व्यर्थ न जाय।’ वीरेन्द्र ने कहा।

‘अभी बोट नहीं आई होगी। हम कम से कम ढाई-तान घण्टे पहले आ गये हैं। आओ, ज़रा गाँव वालों से पूछें।’

जिससे भी उन्होंने बोट तथा बाग के सम्बन्ध में पूछा, उसी से निराशाजनक उत्तर मिला। वह बड़े परेशान थे। एक गाँव वाले से अनुनय विनय के पश्चात् उन्होंने दूध मँगाया और कच्चा ताज़ा दूध पीकर ज़रा हाथ-पैर सीधे किये।

शेखर ने कहा—‘अच्छा, वीरेन्द्र ! अब हमको अलग-अलग हो जाना चाहिए। तुम किसी टेकरी पर चढ़ जाओ और बोट को देखते रहो। मैं बगीचे की तलाश में निकलता हूँ। बगीचा होगा ज़रूर कहीं पास ही। तुम कहो तो मैं बोट पर नज़र रखता हूँ और तुम बगीचे की तलाश में जाओ।’

‘नहीं। मैं बोट का ही ध्यान रखूँगा। उफ़, सरोज को देखने की आज्ञा मैं तुम्हें कैसे दे सकता हूँ?’

शेखर नदी के किनारे-किनारे हो लिया। चारों ओर उसने आँखें फाड़-फाड़ कर देखा किन्तु न तो कोई इमारत ही दिखाई दी और न किसी बाग के आसार ही। क्या अन्धे बाबा ने उसको धोखा दिया है?

वह मन ही मन सोच रहा था—पर उसे झूठ कहने से क्या लाभ ? बाबा या तो कोई बात नहीं बताता था और यदि बताता था तो वह गलत नहीं होती थी । सम्भव है बगीचा गाँव से दूर हो, यह सोचना हुआ वह चला जा रहा था ।

अब उसने नदी के किनारे को छोड़ दिया और तलहटी से अलग होकर ऊपर चढ़ गया । चार-चार मील का क्षेत्रफल उसने छान डाला, एक घण्टा बिताया किन्तु बगीचे का कोई निशान नज़र न आया । वह निराश होकर लौट आना चाहता ही था कि पेड़ों के झुगमुट में ढकी हुई एक इमारत एक ओर उसे नज़र आई । तृप्ति की एक धूँट मिली—पैर उधर विद्युत के वेग से दौड़ पड़े—ऊँची-ऊँची दीवारें, अमरुद और अनार के पेड़—पैर विद्युत के वेग से दौड़ने लगे—वही है, वही है—यह वही इमारत है—अनूप के गुनाहों का अड्डा और शेखर के अरमानों का पड़ाव ।

१८

शेखर जब उस बगीचे के निकट पहुँचा तो उसकी दीवारों को उसने इतना ऊँचा पाया कि किसी प्रकार उन पर चढ़ना सम्भव दिखाई न पड़ता था । दरवाज़ा केवल एक था, वह भी अन्दर से बन्द । उसके दिल में तरह-तरह के खयाल आ रहे थे । यदि उमराव यहाँ पहले से ही आ गया है तो ईश्वर जाने वह इस समय सरोज की माँ (और चाची के सम्बन्ध से उसकी एक प्रकार से मौसी) पर न जाने कैसे-कैसे अत्याचार कर रहा होगा । अपनी उस मौसी को देख भर लेने को उसके प्राण चञ्चल हो उठे और मन बहुत ही अधीर । आह, यदि वह होश में हुई और पागल न निकली तो इस समय मुझे वहाँ पाकर फूली न समायँगी । जब वह अपनी बड़ी बहन की कुशलता इत्यादि सुनेंगी तो यह समाचार सुनकर

उनके हर्ष की सीमा न रहेगी । मुझे तो वह पहचान न सकेंगी क्योंकि मुझे तो उन्होंने बचपन में कहीं देखा होगा... और इन्हीं विचारों के आलोड़न को अपनी छाती में भरे हुए वह चाहरदीवारी का चक्कर लगाये जा रहा था ।

अन्त में उसे एक युक्ति दिखाई दी । उसने कई बड़े-बड़े पत्थर उठाकर अन्दर फेंके और उसका परिणाम देखने को एक निकट की झाड़ी के पीछे छिप गया । कुछ ही क्षण में अन्दर किसी के बड़बड़ाने की उसने आवाज़ सुनी । दरवाजा खुला और बुड्ढा माजी गालियाँ देता हुआ बाहर निकला । वह अनर्गल बके जा रहा था और आँखों पर हाथ का छज्जा बनाकर ध्यान से इधर-उधर देख रहा था—‘आज ही साला दयाला कहीं मर गया है और आज ही ससुरे गाँव के छेकरों ने अमरुद के पेड़ों पर पत्थर बरसाना शुरू कर दिया है । मैं भी ‘एकाध’ की टाँग ही तोड़ डालूँ—’ यह कहकर उसने अपना डंडा सँभाला और कल्पित छेकरों की तलाश में आगे बढ़ गया ।

शेखर चुपके से झाड़ी में से निकला और अन्दर चला गया । घने वृक्षों की ओट में छिपता-छिपता वह धीमे-धीमे आगे बढ़ा तो थोड़ी दूर पर उसके एक लम्बा-चौड़ा चौक नज़र आया जिसमें सफ़ाई से दो-चार पानी के घड़े रखे हुए थे, कोने में एक पलङ्ग था जिस पर एक स्त्री लेटी हुई थी । शेखर को लगा जैसे सरोज ‘रूप’ की देहलीज को पार करके अथेड़ अवस्था को प्राप्त कर पलङ्ग पर पड़ी हुई है । वह सारे खतरों को विस्मृत कर तुरन्त लपका—और खुशी से उसका कण्ठ भर आया—कोई बोल न फूट सका । यदि निकल सका—तो केवल यह—सरोज की माँ—सरोज की अच्छी माँ—!’

वह सहसा पलङ्ग पर उछल पड़ी और आवाज़, विस्मय से भरी शेखर को देखने लगी ।

शेखर ने फिर गले पर जोर लगाकर कहा—आपकी कलकत्ते वाली

बड़ी बहन—का—मैं—वह मेरी चाची हैं । और आप मेरी मौसी...मेरी अच्छी मौसी...।' और दूसरे ही क्षण वह सरोज की माँ से लिपट गया ।

सरोज की माँ ने फिर एक बार शेखर को देखा और फिर—रुपट कर छाती से लगा लिया—‘मेरे बच्चे...मेरे बच्चे...तू यहाँ कहाँ ?’ और हर्ष के आँसू अवरोध का बाँध तोड़ अविराम बहने लगे ।

धीमे-धीमे बोला —‘मौसी...मैं बड़ी कठिनाई से अन्दर आ सका हूँ, माली आता ही होगा । यहाँ और तो कोई नहीं है ?’

‘नहीं बेटा’ ‘नहीं तो मेरे लाल । अठारह वर्ष से मैं अभागी यहाँ पड़ी हुई हूँ । ईश्वर मुझे मौत भी तो नहीं देता । यहाँ तो न कोई आदम है, न आदमजात...’पर मेरे बच्चे, तू यहाँ कैसे आ गया ? तू जब ज़रा-सा था, दूध पीता जब तुझे देखा था...नन्हा-सा मुन्ना । तेरा नाम क्या है बेटे?’ सरोज की माँ ने शेखर को पुनः छाती से लगाते हुए कहा ।

इस बीच माली भी अहाते में बड़बड़ाता हुआ आ गया, दरवाज़ा बन्द किया और दूर—अपने काम में व्यस्त हो गया । इस असहाय और दुःखी औरत को सबने ऐसा भुला रखा था मानो कोई जीवित वस्तु ही न हो । ऐसी कुछ उपेक्षित, तिरस्कृत, अवहेलित...।

शेखर ने अपना नाम बताया और बहुत ही संक्षेप में सारी कहानी कह सुनाई । जब उनको यह मालूम हुआ कि सरोज अभी तक जीवित है और आज वहाँ आने वाली है तो उनके हर्ष की कोई सीमा न रही ।

‘कैसे है मेरी बच्ची—? क्या नाम बताया तूने उसका ? सरोज—ईश्वर की कृपा से अब तो बड़ी-सारी होगी ? हे मेरे भगवान्, मैं दुखिया किन शब्दों द्वारा तुझे धन्यवाद दूँ—वह अपने निर्दयी तथा नृशंस पिता पर गई है या मुझ पर, शेखर ?’

‘मौसी, बनी बनाई आपकी सूरत है—ऐसी ही नेक, ऐसी लज्जिली, इतनी ही बुद्धिमान कि जिस पर गर्व किया जा सके तथा जिस पर किसी को आसानी से ईर्ष्या हो सकती है ।’

‘मेरी कृपा है भगवान्... तुम्हें धन्य है...’ तू बुरे से बुरे दिन भी फेरता है...’ नीली छत की ओर कृतज्ञ और अश्रुपूर्ण नेत्रों से गद्गद हो सरोज की माँ ने कहा ।

शेखर को सरोज की माँ में कहीं भी पागलपन के आसार नज़र नहीं आ रहे थे । यह केवल उसके पिता और अनूप का स्वार्थ था, उनके धन का लालच था और उनकी दुष्कामनाएँ ही थीं जिन्होंने उसको पागल प्रसिद्ध करके यहाँ बन्दी बना दिया था ।

‘अच्छी मौसी, मुझे इन दो-तीन घण्टों में दुनिया के सबसे बड़े और आपत्तियों से पूर्ण कार्य करने हैं । अच्छा, यह बताओ यहाँ उमराव तो नहीं आया है अब तक ?’

‘यह दुष्ट उमराव कौन है ? नहीं बेटे, यहाँ तो केवल मैं ही दुखिया हूँ—मुझ अभागिनी के अतिरिक्त यहाँ और कोई नहीं—नौकर भी बहुत दिन हुए भाग गये । चौकीदार ही बुरा-भला कुछ पकाता है तो जी मार कर रुखा-सूखा खा-पी लेती हूँ । तू कुछ खायगा बेटे ?’

‘कुछ नहीं मौसी... मुझे अपने कामों का बुखार चढ़ा हुआ है । इस समय, ईश्वर की कृपा है, कि आपके दर्शन मुझे इस जीवन में प्राप्त हो गये । भगवान् ने चाहा तो आपकी संपूर्ण विपदाओं और दुखों का अन्त कर दूँगा । मौसी... हमारी इस मुलाकात की किसी को खबर न हो और आप बस सदैव तैयार रहें ।’

‘आह --मेरी बच्ची... ईश्वर मुझे जल्द उतकी सूरत दिखा दे... नहीं- नहीं शेखर, मैं किसी से नहीं कहूँगी...’

शेखर एक-दो मिनट यहाँ बैठा, फिर अपनी मौसी को प्रणाम करके, छिपता-छिपाता बाहर निकल कर वीरेन्द्र के पास पहुँच गया ।

वीरेन्द्र अब तक टेकरी पर खड़ा हुआ, आँखें फाड़-फाड़कर नदी में बोट को देख रहा था; किन्तु उसका कोई पता न था ।

शेखर ने बगीचे इत्यादि का हाल उसे विस्तारपूर्वक सुनाया किन्तु सरोज की माँ से मुलाकात का हाल नहीं बताया, केवल इतना कहा कि एक पागल सी स्त्री वहाँ पड़ी तो हुई है, सम्भव है, वही सरोज की माँ हो... मगर, वीरेन्द्र तुम देखते हो नदी में कितनी चट्टानें निकली हुई हैं। इसके अतिरिक्त मीलों तक यह किनारा इतना ही सख्त, पथरीला और बेतुका है। मैं हैरान हूँ कि बोट किस प्रकार तट तक पहुँच सकेगी। प्रति पल उसको किसी चट्टान से टकराने का भय है। ईश्वर ही रक्षक है कि सरोज की बोट सुरक्षित किनारे तक आ लगे।' शेखर ने कहा।

‘जब से मैं भी यही देख रहा हूँ और इस पर विचार कर रहा हूँ कि बोट इस किनारे पर तो आगे से रही। ऐसा न हो कि वह लोग किसी अच्छे किनारे पर सरोज को लेकर उतर गये हों या उतरने वाले हों।’ वीरेन्द्र बोला।

‘अच्छे किनारे का तो मीलों पता नहीं लग रहा, बोट आयागी तो यहीं...ओहो...किस जोर से बादल उठा है। जो वर्षा भी आरंभ हो गई। आओ, इस वृक्ष के नीचे खड़े हों। हमको यहाँ आये हुए डेढ़ घण्टा हो चुका है। अभी हम इतनी ही देर तक बोट की प्रतीक्षा करने पर विवश हैं...।’

वीरेन्द्र ने कहा—‘शेखर, मैं बार-बार सोचता हूँ कि जो तुम्हारा उद्देश्य है, वही मेरा है। जो मुझ तक पूजनीय तथा आराध्य है, वही तुम पर छाई हुई है। नहीं शेखर, तुम ‘न’ करने का साहस नहीं कर सकते—क्या हुआ यदि तुमने मुझसे वादा कर लिया है कि तुम सरोज को प्रेम न करोगे। मैं देख रहा हूँ कि प्रेम तुम्हारे सिर पर चढ़कर घोषणा कर रहा है...।’

शेखर ने मुस्कराकर कहा—‘वीरेन्द्र तुम चिन्तित क्यों होते हो? मुझे अपने वादे का पूरा-पूरा ध्यान है। तुम संदेह क्यों करते हो?’

‘नहीं शेखर, इस प्यार की दौड़-धूप में मेरा व्यक्तित्व विरोधी तथा

ईर्ष्यालु होता दिखाई दे रहा है और तुम्हारा व्यक्तित्व पूर्णता लिये दिखाई दे रहा है । मुझ में जैसे अभी अभाव है, शून्यता है, रिक्तता है जो तुम में नहीं है, और इसे मैं पल भर को भी सहन नहीं कर सकता । नहीं—तुम नहीं समझ सकते शेखर कि प्रेम किसे कहते हैं । ओह ! मेरे मूक हृदय से पूछो ।

‘इस समय सब भूल जाओ वीरेन्द्र । केवल सरोज को प्राप्त करने में कसर कसे रखो, यही इस समय हम दोनों का उद्देश्य है, वर्तव्य और धर्म है—बाकी सब विडम्बना, भ्रम, व्यर्थ की बकवास—’

वीरेन्द्र की आँखें पपोटों में से उबलने लगीं । उसने शेखर की किसी बात को नहीं सुना—और अपने आप कहना शुरू किया—‘मैं उसको मृतक देखना पसन्द करूँगा किन्तु यह सहन नहीं कर सकता कि वह शेखर के पहलू में हो । हे भगवान्, यह विचार मात्र ही कितना भयानक और बीभत्स है—अरे... यह क्या तुमने नदी में कोई आवाज़ सुनी ? कितनी ज़ोर का मंहा बरस रहा है... दूर से कहीं इन्जिन की धड़कन सी सुनाई दे रही है—शायद बोट आ रही है । किन्तु उसके साथ ही नदी में से यह चीखों की सी आवाज़ क्या आ रही है ? ओह ! सरोज की बोट से प्रेतात्माएँ लिपट गई हैं, पिशाच ने शायद उसका तख्ता तोड़ डाला है । भूतों ने शायद उसको घेर लिया है । हे भगवान्, क्या सरोज मुसीबत में है ? और मैं यहाँ... आराम से खड़ा हूँ ?’

‘वीरेन्द्र, होश में आओ । अपने को सँभालो ।’

‘चुप रह मूर्ख । तू दुष्ट... दुष्ट, नहीं जानता प्रेम क्या होता है । सरोज... मेरी आत्मा... क्या तू किसी मुसीबत में गिरफ्तार है ?’

‘वीरेन्द्र, तुम वादा कर चुके हो कि धैर्य और संयमपूर्वक मेरे साथ सरोज की तलाश में मेरे सहायक रहोगे...’

‘अच्छा-अच्छा, तो मैं चुप हुआ जाता हूँ । लेकिन क्या, इस तूफान को भी इसी समय उठना था ? ओह, कैसी तेज़ हवा और

किस ज़ोर की वर्षा है ! क्या सरोज किनारे पर कुशलपूर्वक पहुँच सकती है ? असम्भव - सरोज ' ' ' सरोज ' ' ' ।'

‘हाँ, किन्तु ईश्वर पर विश्वास रखो ।’

‘क्या तुम्हारा ईश्वर पर विश्वास है ?’ वीरेन्द्र ने कहा ।

‘हाँ । और मैं स्वर्ग और ‘नरक’ को भी मानता हूँ क्योंकि अनूप अनवरत पन्द्रह वर्ष से ‘नरक’ में ही है ।’

‘आह ! मैं सरोज के प्रेम के लिए आजन्म नरक में पड़े रहने को तैयार हूँ ।’ वीरेन्द्र ने कहा—‘मैंने लोगों को प्रेम—केवल प्रेम के कारण मृत्यु से अपने प्राणों का सौदा करते देखा है, मैं भी उसके लिए प्रस्तुत हूँ—मैं अनुभव कर रहा हूँ कि मेरे निकट भी कहीं मृत्यु खड़ी ऐसे ही सौदे की बातचीत कर रही है ।’

वह कुछ रुका, फिर बोला—‘वह मृत्यु ‘ ‘ ‘ या इस समय उसे कुछ ही समझो, मेरे निकट खड़ी हुई मुझे विवश कर रही है कि मैं शीघ्र तुम्हारा अन्त कर डालूँ, तुम्हें मार डालूँ । इससे पूर्व कि सरोज पृथ्वी पर पैर रखे, मुझे तुम्हें कल कर डालना चाहिए । शेखर, मैं तुम्हें पसन्द करता हूँ, बहुत पसन्द करता हूँ—यदि तुम मेरे प्रेम के साक्षीदार न हो गये होते मैं तुम्हें मदैव चाहता रहता, सदैव तुम्हारी सेवा किया करता; किन्तु अब यह असम्भव है । यह नहीं हो सकता कि एक ही समय में हम एक साथ इस दुनिया में जीवित रहें, इसलिए मैं तुम्हें नरक में पहुँचाने को विवश हूँ । यदि तुम अच्छे हो तो स्वर्ग में चले जाना—हाँ, तुम स्वर्ग ही में जाओगे । मेरे हाथ से मारे जा रहे हो; क्योंकि एक प्रेमी तुम्हें शहीद कर रहा है । तुमको मरना पड़ेगा क्योंकि जब तक तुम जीवित हो सरोज मेरी कभी न होगी । मैं यह पूर्णतया देख चुका हूँ, विश्वास कर चुका हूँ लेकिन क्योंकि उसको मैं प्राप्त करना चाहता हूँ इसलिए तुमको मरना ही पड़ेगा ।

वीरेन्द्र की आँखें हिसक हो गई और उनमें खून करने का भाव स्पष्ट तथा अंकित हो गया ।

‘वीरेन्द्र, मैं तुम्हारे इस पागलपन से तज आ गया हूँ । काम करते-करते तुम्हें न मालूम क्या हो जाता है ? इस समय हम चारों ओर से विपत्तियों में फँसे हुए हैं । चाहे तो यह कि मिल कर काम करें किन्तु तुम सदा मामला बिगाड़ देते हो ।’

‘इधर आओ शेखर—इधर आओ । ज़रा मेरे हाथों को देखो । कितने बलिष्ठ, कितने सख्त हाथ हैं, ऐसे तुमने किसी के न देखे होंगे ।’ यह कह कर उसने कन्धे तक अपने हाथ को नज़ा कर दिया ।

शेखर ने देखा—वास्तव में हाथ क्या हैं, एक अच्छे-खासे आदमी की टाँग के बराबर मोटे हैं । वीरेन्द्र कह रहा था—‘मैं तुम्हें भली भाँति कुचल सकता हूँ । जिस प्रकार बिल्ली खिल-खिला कर चूहे को मारती है, उसी प्रकार मैं तसल्ली से दबोच-दबोच कर तुम्हें ठंडा कर सकता हूँ । मैं अपने जैसे तीन आदमियों को काफी हूँ, तुम तो हो ही क्या चीज़ ? अच्छा, जो मरने के लिए तैयार हो जाओ ।’ यह कह कर, वह राक्षस की भाँति शेखर की ओर बढ़ा ।

‘वीरेन्द्र, तुम वास्तव में पागल हो । सरोज के प्रेम ने अच्छाई और बुराई का भेद तुमसे छीन लिया है । मेरी समझ में नहीं आता, जब कि मैं तुमसे वादा कर चुका हूँ कि तुम्हारी राह में बाधक सिद्ध न होऊँगा तो फिर तुम्हें मुझसे क्या भय है ? इसके अतिरिक्त देखो भाई, तुम इससे पूर्व भी कई बार मुझे मार डालने की धमकी दे चुके हो । तुमने अनुमान लगाया होगा कि तुम्हारी इस धमकी का मुझ पर कोई प्रभाव न पड़ा । मैं भी कायर नहीं हूँ । माना कि तुम मुझसे अधिक शक्तिशाली हो लेकिन मुझे इतना कमज़ोर न पाओगे, इतना गीदड़—जितना कि समझे हुए हो । मैं मौत से नहीं डरता । मैं मर जाऊँगा लेकिन तुम भी अधमरे अवश्य हो जाओगे । तुम्हारा यह सुदृढ़ शरीर मेरे तेज़ दिमाग का मुकाबला

नहीं कर सकता । मैंने बहुत से शेरों को अपनी शक्ति के गर्व में कुप में गिरते देखा है । मैं तुम्हें झूठ नहीं कह रहा । यदि तुम अब भी सँभल जाओ तो कुछ नहीं बिगड़ेगा....।’

‘लेकिन मैं तुमको केवल मजबूर होकर जान से मार रहा हूँ । किसी शत्रुता के कारण नहीं । यदि तुम मेरे प्रेम के प्रतिद्वन्द्दी सिद्ध न होते तो मैं तममे कुछ न कहता ।’

‘वीरेन्द्र, तुम्हें भगवान् ने, दुःख है बिल्कुल समझ न दी है । तुम्हें मालूम है, इस समय हमारा सामना किससे है ? अनूप जैसा घाघ और उमराव जैसा चालाक आदमी हमारे सम्मुख हैं । क्या तुम चालवाजियों में उनका सामना कर सकते हो ? तुम हर जगह अपनी शक्ति का उपयोग करना चाहते हो—यहाँ तक कि प्रेम में भी तुम उससे काम निकालने के अश्वस्त हो । मेरे बाद वह दोनों तुम्हें चुटकियों में मसलकर रख देंगे और तुम उम्र भर सरोज को रोते रह जाओगे ।’

‘सच कहते हो शेखर...लेकिन मैं तुम्हें सरोज से प्रेम करने को कैसे छोड़ दूँ ? दुनिया में केवल तुम ही मेरे प्रतिद्वन्द्दी हो । प्रेम के हितार्थ मुझे तुम्हारे खून में हाथ रँगने पड़ेंगे । अच्छा-अच्छा तो फिर बताओ कि तुम अपने वादे पर अब तक स्थिर हो ?’ वीरेन्द्र ने पागलपन के साथ पूछा ।

‘इसका मैं अनेक बार तुम्हें विश्वास दिला चुका हूँ, बार-बार नहीं कहना चाहता ।’ यह कहकर शेखर का दिल अपने आप बैठ गया । वह अपने हाथों अपने प्रेम को अप्राप्य बना चुका था और अब बर्बादी की अन्य सामग्रियाँ जुटा रहा था ।

‘तुम मेरे प्रतिद्वन्द्दी हो और प्रतिद्वन्द्दी को जीवित रहने का अधिकार नहीं है । लेकिन मैं जिन्दा रहूँगा, मुझे जिन्दा रहना है । सफल प्रेम की आशा में, अपने को पूर्ण देखने के लिए, मुझे जीवित रहना है । मैं जाऊँगा जिससे सरोज को अपना बना सकूँ । आह...लेकिन वह मेरी न होगी,

इसको मुझसे प्रेम नहीं है। यदि वह मेरी नहीं हो सकती तो तुम्हारी भी न होगी। बोलो, निश्चित है न यह ?'

'अरे—वह बोट आ रही है चट्टानों में उलझती हुई। वह देखो, दो कलार्जि से ज्यादा दूर न होगी।' शेखर ने किलकते हुए कहा।

'बोलो-बोलो शेखर ! वीरेन्द्र ने चीखकर कहा—'एक बार फिर अपने वादे को दोहराओगे नहीं ? करोगे न ? नहीं करोगे न—उससे प्रेम जब तक मैं जाँवित हूँ ?'

शेखर ने अपने वादे को दोहरा दिया।

'बस, ठीक है। आओ अब मिलकर काम करें।' वीरेन्द्र ने प्रसन्न-चित्त होकर कहा।

मूललाधार वर्षा हो रही थी और बोट नदी की उत्ताल तरङ्गों में डगमगाती, चट्टानों से बचती-बचाती धीमे-धीमे आ रही थी। सहसा नदी में एक ज़ोर का धमाका सुनाई दिया। बोट अत्यंत सावधानी के उपरान्त भी किसी चट्टान से टकरा गई। इन्जिन ठंडा पड़ गया और बोट उलट गई।

'उफ़, वीरेन्द्र ! गज़ब हो गया ! अरे, बोट उलट गई। वह देखो—वह सवारियाँ तख्ते से चिपटने का प्रयास कर रही हैं।' इस बार शेखर पर सचमुच प्रेम का पागलपन छा गया।

नदी समुद्र बनी हुई थी। ज़ोर की वर्षा थी और बहुत ही वेगपूर्ण हवा चल रही थी। उसने कोट को एक ओर फेंक दिया और लगभग पचास फीट की ऊँचाई पर से नदी में कूद पड़ा। वह बहुत अच्छा तैरने वाला था लेकिन ज़िद्दी लहरों ने ऐसे ज़ोर-ज़ोर से उसके थपड़ मारना आरंभ किया कि आगे बढ़ना बड़ा कठिन हो गया। उसने मुड़कर जो देखा तो वीरेन्द्र को अपने निकट ही पानी में पाया। वह भी ऊँची-ऊँची लहरों से मल्ल युद्ध सा करता हुआ आगे बढ़ रहा था।

वर्षा और हवा ने तैरना असम्भव कर दिया था किन्तु शेखर बड़े चला

जा रहा था। उसने अब मुड़कर वीरेन्द्र को नहीं देखा। उसके सम्मुख अब केवल एक विचार था—किसी प्रकार सरोज को बचा ले। अपने प्राणों के मूल्य पर उसे बचा ले। लहरें अजगरों की भाँति मुँह फाड़े उसकी ओर दौड़ रही थीं, उसके दण्ड और नेत्रों में पानी इतनी ज़ोर से आकर लगता था कि कई मिनट तक उसके कुछ भी दिखाई न देता था। सिर के चक्करों, थकान और नदी की लहरों की गोद में शेखर ने अर्द्धचेतन की अवस्था में अनुमान लगाया कि सरोज को वह भी कुछ कम नहीं प्यार करता है। हे भगवान्, लहरों को ज़रा धीमा कर दे, उनके बल को तोड़ दे और मेरे हाथों में जान भर दे। आह...सरोज तक पहुँचना असम्भव हो गया है, मैं रास्ते में ही खत्म हो जाऊँगा। मेरा दम फूल चुका है, मेरे हाथ-पैर जवाब दे चुके हैं—सरोज, इस शहीद की इस 'कोशिश' को न भुलाना...उसने तुम्हें बचाने के लिए अपने प्राणों की तनिक भी परवाह न करके अपने आपको मृत्यु के हवाले कर दिया...।'

शेखर ने अपने निकट धुँधली-सी नाव की शक्ति देखी। उसके हाथ बिल्कुल सुन्न हो चुके थे, सिर ऐसा चकरा रहा था कि न कुछ दिखाई देता था और न कुछ समझ में आता था। आश्चर्य है, वीरेन्द्र कहाँ है? और सरोज क्या जीवित है? नाव को थामे हुए है...अथवा पानी की गोद में पहुँच गई? 'हे भगवान्...उसको बचा ले।' उसके मुँदा होठों से यह शब्द निकले...और फिर चकरा गया। बेहोश हो गया।

'नाव पर से हाथ हटाओ—अपना—मुझे दो—अपना हाथ।' किसी ने बहुत निकट हाँफते हुए शेखर से कहा। इसके पश्चात् क्या हुआ—शेखर को पता नहीं। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि एकबारगी वह भँवर के साथ पानी की तह में जा बैठा। उसने अनुभव किया जैसे वह स्वर्ग में प्रवेश कर रहा है। चारों ओर सौंदर्य ही सौंदर्य बिखरा हुआ है और खुश पक्षी चहचहा रहे हैं—रङ्ग बिरंगे झूमते हुए फूलों में से सौरभ उड़ रहा है और मधुपों की डोलियाँ लबलबा रही हैं और—उसने एक ज़ोर

का साँस लिया। सिर से पैर तक उसे हतनी जोर का दर्द मालूम हुआ मानो कोई उसकी बोटियाँ-बोटियाँ काट रहा था। कानों में हज़ारों तोपों की गरज सुनाई देने लगी। उसने बोलना चाहा किन्तु जैसे जबान मुँह में न रही थी, देखना चाहा किन्तु कुछ दिखाई न दे सका। और अन्त में जब उसने अपनी संपूर्ण शक्ति लगाकर चीख मारना चाहा तो उसका मस्तिष्क ही जैसे विकृत हो गया। उसने अपने आपको एक नंगी और सख्त चट्टान तथा तख्ते पर पड़े हुए पाया और चारों ओर रोषपूर्ण उन्मत्त जहरों चट्टान से अपना माथा फोड़ लौट-लौट जा रही थीं—चारों ओर पानी ही पानी...पानी ही पानी...और वह फिर मूर्च्छित हो गया।

जब उसे होश आया तो उसने देखा, उसके पास ही दो नाविक और एक-दो गाँव वाले बैठे थे। वह चकरा-सा गया।

‘सरोज...सरोज—तुम कहाँ हो?’ अस्फुट से स्वर में वह फुसफुसाया।

‘आपके कोई गहरी चोट तो न आई?’ उसे स्वस्थ होता देख, एक नाविक ने पूछा।

‘नहीं, मैं अच्छा...पर सरोज।’ और उसने उठना चाहा तो ऐसे चक्कर आये कि पुनः गिर पड़ा। उसका अङ्ग-अङ्ग फटा जा रहा था, जोड़-जोड़ टुकड़े हो रहे थे—सारी देह दर्द कर रही थी।

‘छोटे रहिए। छोटे रहिए।’ सरोज की मीठी आवाज़ सहसा कान में आई और साथ ही उसने किसी नर्म हाथ का कोमल स्पर्श अपने मस्तक पर अनुभव किया। कोमल, शीतल स्पर्श। क्या वह कोई स्वप्न देख रहा है? स्वर्ग का मधुर रङ्गान स्वप्न? क्या यह कोमल और स्निग्ध अनुभूति वहाँ—स्वर्ग की हों है अथवा किसी भू भाग की जहाँ लालसाएँ क्रन्दन करती हैं और वादों की बंदिशों में प्राण झुलसते रहते हैं। जहाँ वासनाओं के उत्सव प्रवाहित होते रहते हैं और...उसने आँखें खोल दीं—और पागल हो चिल्ला पड़ा—‘सरोज...!’

सरोज दू-दू रो दी। बोली नहीं कुछ।

‘सरोज...!’ अपना समूचा प्यार उँढेलते हुए आवेश में पुकार उठा।

‘जी !’ और टप टप आँसू पड़ने लगे ।

‘उफ़ सरोज...तुम बच गई ! तुम बच गईं सरोज’...ईश्वर की असीम कृपा से तुम बच गईं । ओह, आज मेरे हर्ष का पार नहीं है सरोज !’

सरोज टकर-टकर देखने लगी अश्रुपूर्ण नेत्रों से शेखर को ।

शेखर ने बैठते हुए पूछा—‘कौन-कौन बचा है सरोज ? वीरेन्द्र कहाँ है ?’

‘ओह...वह...’ उन्होंने मेरी रक्षा की है । वह मुझे किनारे पर लाये थे ।’ सरोज ने लिसफियों के बीच कहा ।

‘वह लाया था ? वह ?’ कुछ खीझ भरे स्वर में शेखर ने कहा ।

‘हाँ, बोट उलटते ही मैं एक तरफ़ से चिपक गई थी और मेरा तख़्ता बहता हुआ न जाने कहाँ जाना चाहता था कि रास्ते में वीरेन्द्र ने उसको पकड़ लिया । फिर उसको घसीटकर और तैर कर मुझे किनारे पर ले आये ।’

‘अच्छा-अच्छा’...‘फिर ?’ जिज्ञासा भरे स्वर में शेखर ने पूछा ।

‘मुझे उन्हें यहाँ देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ । यह बात मेरी कल्पना में भी न आ सकती थी कि तुम दोनों मेरी सहायतार्थ एक लम्बा सफ़र तय करके यहाँ पहले से ही उपस्थित होगे ।’

‘खैर...’हाँ तो, तुमने बताया नहीं कि वीरेन्द्र कहाँ है ?’

सरोज चुप ही रही ।

तो शेखर ने कहा—‘अच्छा, तुम तो बिल्कुल कुशलपूर्वक हो न ? कहीं चोट-वोट तो नहीं लगी ?’

‘नहीं—ईश्वर रक्षक था ।’

‘तो आओ मैं तुम्हें अब किसी सुरक्षित स्थान पर ले चलूँ ।’ यह कह कर वह उठ खड़ा हुआ और बोला—‘पर...वह वीरेन्द्र कहाँ गया ?’ और ऐसा कहते ही उसकी दृष्टि अपने आप यत्रचालित सी एक ओर घूम गई—जहाँ एक लारी खड़ी थी और उमराव सिंह, अनूप और कई अन्य आदमी किसी चीज़ को घेरे हुए खड़े थे । उसकी समझ में कुछ न आया तो एक नाविक से पूछा कि क्या बात है और अब तक क्या-क्या हुआ है ? एक नाविक बोला—‘बोट टूट जाने के बाद आप और आपका दोस्त

हमारी तरफ आ रहे थे किन्तु आप रास्ते ही में अशक्त पड़ गये किन्तु आपका दोस्त बड़ा साहसी और शक्तिशाली था। वह बोट तक जल्दी ही पहुँच गया। थोड़ी देर बाद आप भी बोट के निकट पहुँच गये किन्तु मूर्च्छित हो चुके थे। हमने आपको वहीं एक चट्टान के पास तख्ते पर फँसा छोड़ा और आपका साथी इस 'बहन' के साथ तैर किनारे पर आ गया। जब हम सब कुशलपूर्वक सुरक्षित किनारे पर पहुँच गये तो इस बहन ने पहले तो हमसे प्रार्थना की कि आपको वहाँ से निकाल कर लायें किन्तु हमारा साहस जवाब दे चुका था। इसके बाद यह आपके दोस्त की ओर मुड़ी और उससे गिड़गिड़ाकर बहुत ही विनती की कि आपको वह निकालकर लाय किन्तु उसने प्रत्येक बार हँसकर 'न' में सिर हिला दिया। अन्त में इस बहन ने अत्यंत वेदनापूर्ण किन्तु दृढ़ स्वर में उससे कहा— 'वीरेन्द्र, मैं—मैं शेखर को चाहती हूँ। उसकी ज़िन्दगी मेरी ज़िन्दगी है यदि तुम मुझे चाहते हो तो शेखर को बचा लो' '।' तो इन शब्दों को सुनकर आपका दोस्त इस ठंडी ज्वाला में हँसने-हँसते कूद पड़ा। बकी बहादुरी से आप तक पहुँचा और अत्यंत साहसपूर्वक तैर कर आपको किनारे पर ला डाला। यहाँ तक तो ले आया किन्तु बाद में उसने खून की एक ज़बदस्त कैंकी—मानो भीतर से उसके फेफड़े फट गये हों।'

'नाविक!' शेखर ऐसा चिल्लाया मानो किसी ने उसके गोली मार दी हो— 'फिर क्या हुआ?' वह हाँफता हुआ बोला।

'बस, फिर यह नहीं उठ सका। वहीं ढर हो गया। वह रहा उसकी लाश जहाँ वह लोग खड़े हुए हैं।'

शेखर को फिर चक्कर-सा आया। उसने पागल की भाँति आँखें फाड़ कर उस भीड़ की ओर देखा और कण्ठ स्वर में हृदन करता हुआ फट पड़ा— 'यह क्या किया साथी? मेरे लिए अपने प्राण गँवा दिये तू ने? तेरा प्रेम अमर रहेगा—युग-युग तक अमर रहेगा। ईश्वर तेरा कल्याण करें। तेरी सद्गति हो, तुझे शान्ति मिले। तू मोक्ष का भागी हो।'

सरोज ने भी आँखें पोंछ लीं—और नाविक भी हिल उठे।

फिर किसी प्रकार शेखर वीरेन्द्र के शव के निकट आया और कुछ दूर खड़ा हो गया ।

ओह...यह क्या दुनिया है ? क्या यह वही प्राणी है जो अभी आध घण्टे पूर्व कभी शेखर को अपना जोह सुदृढ़ बाजू दिखा कर डरा रहा था और कभी उसे जान से मार डालने की धमकियाँ दे रहा था ? क्या यह वही वीरेन्द्र था ? निराश्रय और कङ्काल ? शेखर का दिल भर आया ।

आह, इस निर्जीव प्राणी के विशाल सीने में कितनी अभिलाषाएँ होंगी, कितनी हसरतें । इसके प्रेम से सराबोर दिल में जो इस समय स्पन्दन विह्वल और सर्व पक्ष गया है, कितने अरमान हिलोरें खेते होंगे । इन निराश, वेदनामय आँखों में जिन्होंने सदा सरोज को प्यार किया, प्रेम की लहरों का कैसा आलोड़न होता होगा । आज प्रत्येक चीज़ खल हो चुकी थी, केवल प्रेम जीवित था किन्तु प्रेम का दीवाना न रहा था । वह न रहा था जिसने अपने जीवन की बड़ी से बड़ी खुशी को सरोज पर न्योछावर कर दिया था, जिसने अपना प्रत्येक व्यसन, प्रत्येक सुख इसलिए त्याग दिया था कि वह अपने को सरोज के योग्य बना सके । शेखर को उसने इसलिए नहीं बचाया था कि वह उसको चाहता था किन्तु केवल इसलिए उसकी रक्षा की थी कि वह सरोज को प्यार करता था और सरोज नहीं चाहती थी कि शेखर मर जाय । सरोज के प्रेम के हितार्थ उसने शेखर की रक्षा की थी । नाविक कड़ रहा था, सरोज ने वीरेन्द्र से कहा था—‘मैं—मैं शेखर को चाहती हूँ वीरेन्द्र । उसकी ज़िन्दगी मेरी ज़िन्दगी है । यदि तुम मुझे चाहते हो तो शेखर को बचा लो...’ सरोज ने कहा था । और दूसरे ही क्षण मुस्कराता हुआ वीरेन्द्र लहरों में कूद पड़ा था । उसने सरोज की भवों के एक इशारे पर अपने को उससँग कर दिया था । उफ़, उसका प्रेम कितना महान् था, कितना पवित्र जो अब भी हास्य रेखा बन, उसके होठों पर जीवित था—ऐसी हास्य रेखा जो

दलितों के रुदित हृदयों को भी प्रफुल्लित कर दे । वह एक पथभ्रष्ट तारे की तरह महाशून्य में आग की एक लकीर खींचकर विस्मृति के उस पार चला गया किन्तु—उसका प्रेम सदा अमर रहेगा ।

किन्तु—क्या यही जीवन है ? जिसकी सुन्दरता में कुरूपता बसी है, जिसकी हँसी में रोना है और लालित्य में भयानकता । जिस ही आसक्ति में अरुचि है और योग में वियोग है । यह उमङ्ग भरा जीवन, यह साँझ-सवेरे वाला लोक क्या केवल मृत्यु से ब्वाप्त नहीं ? वेदना से सदा तड़पा करो और अन्त में चीख होते-होते मृत्यु के मुँह में चले जाओ ? क्या इसी के लिए चाह और वेदना है ? क्या इसी के लिए उद्यम और पुरुषार्थ है ? क्या इसी के लिए संघर्ष और प्राणों की आहुति है ? क्या यही मानव-जीवन है—? क्या यही—? शेखर की आँखों पर सजल वटाएँ चुपचाप छा गईं और सामने का संसार मानो कुहर के एक पर्दे के भीतर छिप गया ।

उसने सुना, सरोज उसे हँसते से कह रही थी—‘शेखर-शेखर, अब मुझे इन लोगों के हाथों में न पड़ जाने देना...’।’

शेखर का हाथ यंत्र-चाजित-सा सरोज के कन्धे पर आ रहा... फिर वह कुछ आगे बढ़ा और अनूप के निकट आकर बोला—‘कहिपू, अब आप लोगों का क्या इरादा है ? एक जीवन का पटाछेप तो आप अपनी आँखों से देख ही चुके हैं और अब दूसरी जान हाज़िर है । आप में से कोई भी उस समय तक सरोज को स्पष्ट नहीं कर सकता जब तक कि मुझे भी वीरेन्द्र के बराबर न सुला दिया जाय ।’

उमराव और अनूप ने देखा, शेखर की नयन-ज्योति अग्नि-शिला के समान प्रज्वलित थी । अनूप का सिर सहसा झुक गया । वह बहुत ही करुण स्वर में बोला—‘शेखर, मैं अपनी हार मानता हूँ । यदि उमराव मुझे भड़काता नहीं तो मैं कभी भी सरोज को वहाँ से नहीं उड़ाता, न तुम्हें इतने कष्ट उठाने पड़ते और न वीरेन्द्र की प्यारी जान ही जाती । मैं अपने संपूर्ण पापों को स्वीकार करता हूँ—तुम्हारे सामने नहीं, अपने

ईश्वर के सामने और क्षमा की भीख माँगता हूँ ।' और यह कह, अनूप सिंह ने फिर सिर झुका लिया ।

शेखर और सरोज ने क्षण भर विस्मय से अनूप सिंह को देखा और तब शेखर दृढ़ स्वर में बोला—'यह सब कुछ नहीं—अभी आपको एक और प्राणी से क्षमा याचना करनी होगी यदि आप अपने काले कारनामों को तथा दुष्टताओं को पूर्ववत् जारी नहीं रखना चाहते हैं ।'

तभी, अनूप सिंह की दृष्टि सरोज पर पड़ी जो गीली साड़ी में सदी, हवा और थकान से कँपकँपा रही थी । उन्होंने लपक कर उसको छाती से लगा लिया और अनायास चीख पड़े—'मेरी बच्ची...मेरी सरोज...!' और अनायास दोनों हाथ फैलाकर उन्होंने सरोज को अपने बाहुपाश में कस लिया । फिर अस्फुट से विगलित कण्ठ-स्वर में बोले—'अपने बाप के हाथ से दुनिया में किसी बेटी को इतने कष्ट, इतनी यातनाएँ न सहनी पड़ी होंगी जितनी मेरी मासूम सरोज तुम्हे सहनी पड़ी हैं—हाँ-हाँ, बेटी, तू मुझे यों आश्चर्य से क्या देख रही है, मैं ही तेरा वह अभाग बाप हूँ...' और फिर पागलों की भाँति हू-हू रो पड़े । सरोज खुशी से अपने पिता के बाहुपाश में लिपट गई ।

'पिता जी !' उसके काँपते हुए होठों से हर्ष की एक क्लिककारी सीफट पड़ी ।

शेखर आवाक् देखता रह गया । उसका हृदय भी पिता-पुत्री के इस मधुर मिलन को देख, भर आया ।

कुछ क्षण पश्चात् वह उमराव की ओर मुड़ा और दृढ़ स्वर में बोला—'कहिए महानुभाव...अब आपके साथ कैसा व्यवहार किया जाय ? आपने एक लड़की का अगुआ किया, हमारी जान लेने के लिए तीन बदमाशों को नियुक्त किया और यहाँ फिर एक दुःखी तथा मुसीबत की मारी असहाय स्त्री पर अत्याचार करने को आ बूढ़े !'

'वही करो शेखर जो एक पुत्र अपने पिता के साथ करता है ।'

'पिता ? पुत्र ? क्या अर्थ ? क्या आशय आपका ?' आश्चर्य डँडेलते हुए शेखर ने तीव्र स्वर में पूछा ।

‘अनूप सिंह से पूछ लो ।’ उमराव ने तसल्ली के साथ कहा ।

अनूप सिंह ने व्यथित स्वर में कहा—मुझे क्षमा करो उमराव । मैं अब इन बातों में नहीं पड़ना चाहता, तुम मुझे अत्यधिक गुनहगार बना चुके हो । भगवान् की असीम कृपा है कि आज-आज मैं अपने को अपनी सन्तान के सम्मुख उपस्थित कर रहा हूँ और शीघ्र ही अपनी दुःखी तथा मुसीबत की मारी स्त्री के चरणों में सिर नत कर अपने लम्बे अन्याय, अन्याचार और नीचता के लिए क्षमा माँगने वाला हूँ ।’

‘मैं तुम्हारा बाप हूँ शोखर ।’ उमराव सिंह ने धीमे से कहा—और सिर झुका लिया ।

‘मेरा बाप ? आप मेरे बाप ? आप जैसा मनुष्य...?’ शोखर ने विस्फारित नेत्रों तथा विस्मय से खुले मुँह से बहुत ही हैरानी से कहा ।

‘हाँ, मुझ जैसा इन्सान शोखर...मुझ जैसा ही इन्सान बेटा—जिसकी समस्त आयु गुनाहों में व्यतीत हुई है किन्तु आज...’ यह संसार सुख और सुन्दरता का एक मनोहर पुञ्ज है शोखर...जहाँ यौवन कालीन विकसित रङ्ग-बिरङ्गी पुष्प कलियाँ उन्मादी मानव भ्रमर को अपनी ओर आकर्षित करती हैं । मैं भी आकर्षित हुआ, घर से भाग निकला । तेरी माँ ढेर होकर रह गई । तभी से मैं फिरता रहा—यहाँ वहाँ, वासनाओं का शिकार हुआ । पतन हुआ मेरा । वासना पाप है बेटा । पर आज—मेरा नशा उड़ गया है, आज मुझे ज्ञात हुआ है कि मेरा कितना पतन हो चुका था । आज मैं अपना तुझ जैसा बेटा देखकर अपने गुनाहों में कमी अनुभव कर रहा हूँ—आज मेरे हर्ष का पार नहीं है शोखर—मुझे माफ़ कर दे बेटा...मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह मुझे तुझ जैसी नेक सन्तान की छाया में नेकी का रास्ता दिखाए...’ और उमराव सिंह के नेत्र अश्रु-लावित हो गये और दो कृश हाथ नीली छत की ओर कँपकँपाते हुए उठ गये ।

शोखर के प्राणों में हलचल सी मच गई । उफ़, इस जैसा नीच और दुष्ट मेरा बाप ? उसके खून में डबाल आया । इसने मेरी माँ को तड़पा-

तड़पा कर मारा, इसने मुझे जान से मार डालने का षड्यंत्र रचा, इसने सरोज की माँ की दुर्दशा करने की ठानी, इसने अनूप के साथ सरोज की माँ की समस्त जायदाद हड़प लेना चाहा—ऐसा पतित और कृतघ्न मेरा बाप ? आत्म-रत्नानि से उसका दम घुटने लगा—प्रतिशोध की ज्वाला भभक उठी । उसने नाड़ियों में प्रतिहिंसा की उष्णता लिये अपने हाथों को देख—आँखों में बरसते हुए खून को लिये अपने बाप को देखा जिसके नेत्र नीली छत पर टँके हुए थे । और तब—उसके हाथ अपने बाप की गर्दन की ओर बढ़े—बढ़े—कि, उसने सुना, अनूप सिंह चिल्लाये—‘शेखर !’

और साथ ही उसकी आत्मा के किसी निगूढ़ स्थल से उठी हुई अस्पष्ट-सी स्वर लहरी की क्षीण सी आवाज़ उसने सुनी—‘कुछ भी हो, वह तेरा बाप है—चाहे चोर हो, डाकू हो फिर भी तेरा बाप है । और खून खून को नहीं मार सकता ।’ शेखर का हाथ एक झटके के साथ नीचे आ रहा । उसने अपना मुँह शर्म से अपने हाथों में छिपा लिया और सुबकने लगा ।

उमराव सिंह कह रहा था—‘मुझे क्षमा कर दे बेटा—’ मैं बहुत खज्जित हूँ—’

‘कलेजा निकाल कर कहते हो इसरत नहीं मिटी । घायल करके पूछते हो, दर्द होता है ?’ कराहता हुआ शेखर बोला ।

उमराव सिंह चुप ही रहे ।

सब कुछ देर के लिए चुप से हो गये । तभी, शेखर को सहसा कोई बात याद आई और उसका मन, उसके प्राण चञ्चल हो उठे ठीक उसी तरह जिस तरह एक प्यासे को मरुस्थल में पानी नज़र आ जाय, उसने कहा—‘नहीं-नहीं, आप मेरे पिता नहीं हैं, आप मेरे पिता नहीं हो सकते । उनका नाम उमराव सिंह कब था ?’ और प्रश्न कर चुकने के पश्चात् उसने अपनी आत्मा की तह से यही चाहा कि यह मेरा बाप न हो तो वह संसार में अपने को सबसे सुखी तथा भाग्यशाली समझेगा ।

उमराव सिंह ने रोते हुए से स्वर में कहा—‘बेटा, मैं ही तेरा बाप

हूँ । जब कहता हूँ कि तेरा बाप हूँ तो मुझे खुद को बहुत शर्म अनुभव होती है, बड़ा दुःख होता है—पर शेखर...क्या करूँ—मैं ही वह तेरा बदनसीब बाप हूँ । नकली उमराव और असली फतह सिंह मैं ही हूँ ।’

‘पिता जी !’ शेखर को जैसे किसी ने गोली मार दी ।

‘नहीं-नहीं शेखर...मुझे पिता न कहो, मुझे उस समय तक पिता न कहो जब तक कि मैं अपने किए का प्रायश्चित्त न करूँ और जब तक मुझे यह विश्वास न हो जाय कि ईश्वर ने मेरे गुनाह माफ़ कर दिये हैं—मुझे पिता न कहो शेखर ।’ विरक्त और व्यथित से स्वर में फतह सिंह ने कहा ।

‘मैंने शेखर को पीपलगाँव में देखते ही खयाल किया था कि इस सूत को कहीं देखा है...लेकिन ठीक से याद न आया था; लेकिन फतह सिंह तुमने भी ग़ज़ब किया जो मुझसे आज तक न कहा कि शेखर तुम्हारा लड़का है । वह तो अच्छा हुआ, जो ईश्वर की कृपा से हमारे हाथों शेखर का कुछ अनर्थ न हुआ, यदि हो जाता तो उसके लिए जिम्मेदार तुम होते । बेटे शेखर, मैं अपने कटु व्यवहार की तुमसे माफी चाहता हूँ ।’ अनूप सिंह ने कुछ लज्जित होते हुए कहा ।

शेखर कुछ प्रकृतिस्थ होते हुए बोला—‘आप व्यर्थ ही मुझे क्यों लज्जित करते हैं ? आप तो सदा से ही मुझ पर कृपालु रहे हैं । मैं ही आपकी शान में कुछ अशिष्ट सिद्ध हुआ था जिनके लिए मुझे दुःख है । मैं आपसे क्षमा माँगता हूँ । अब आप सरोज को लेकर इनकी माँ के पास (मौसी के पास) शीघ्र पहुँचिए । वह अपनी बच्ची के लिए तड़प रही होंगी...पर देखिए, इस बात का ध्यान रखिए कि सरोज को एक दम सामने न कर दीजिए, हो सकता है कि हर्ष के अतिरेक में उनकी हृद-गति बन्द हो जाय । पिता जी...!’ शेखर इस सम्बोधन पर फिर रुका और कुछ रुक कर बोला—‘आप भी इन्हीं लोगों के साथ वहाँ हो आइए । मैं इतने धीरेन्द्र के मृतक संस्कार की व्यवस्था करता हूँ...।’

‘नहीं बेटा -- मैं उस देवी को मुँह दिखाने योग्य नहीं रहा । मैं उसके

सम्मुख किस मुँह से जाऊँगा ?' फतह सिंह ने गम्भीर स्वर में कहा ।

तो सरोज अपने पिता से लिपटी हुई खुशी-खुशी अपनी माँ को देखने के लिए चज़ दी । थोड़ी देर पूर्व ही शेखर सरोज की माँ को समस्त दुःखों से मुक्त करने आया था, और अब उसी शेखर ने सरोज को अनूप सिंह के हवाले कर दिया । वही अनूप सरोज के पिता निकले और वही उमराव उसके अपने पिता । उक्त, समय किस क्रूर शीघ्र बदलता है, घटनाएँ कैसे तेज़ी से पलटा खाती हैं, परिस्थितियाँ कितनी जल्दी करवट लेती हैं । जिन्हें मर जाना चाहिए था, वह नहीं मरे । जिन्हें जीवित रहना था, वह पहले ही चल बसे । अच्छा होता यदि वीरेन्द्र के स्थान पर शेखर मर जाता — उसे अपने इस निर्दयी और राक्षस पिता से इस जन्म में साक्षात् तो न होता — उक्त, आज ऐसा पिता पाने पर वह अपने को कितना गिरा हुआ और हल्का अनुभव कर रहा है । सरोज क्या कहेगी, दुनिया क्या कहेगी ? ऐसे पिता का पुत्र है शेखर—ओह, वह कैसे अपना मुँह ऊपर उठा सकेगा अब ? और उस समय शेखर ने चाहा, वह मर जाय, उसका पिता भी मर जाय... वह आत्मश्लाघा के डकों द्वारा क्षत-विक्षत होने लगा । पर चाहा किसी का क्या हुआ है । विधि का विधान भी तो कुछ चीज़ है । वहाँ प्राणी का क्या बश ?

शेखर भी तबूष कर रह गया । भाग्य की रेख को वह न मिटा सका, न मिटा सका ।



वीरेन्द्र के मुँह से अब भी खून बह रहा था । वह वीरेन्द्र जो तीन-चार आदमियों को अकेला काफ़ी था, यों निराश्रय और महानिद्रा में लीन पड़ा सो रहा था—अपने घर से दूर, एक सुन्सान और अपरिचित स्थान पर... वही वीरेन्द्र कुछ नाविकों, शेखर तथा शेखर के पिताके घण्टे भर के प्रयास में धू-धू कर जल उठा ।

शेखर और उसके पिता एक वृक्ष के नीचे आकर बैठ गये और सरोज इत्यादि के सुशनसीब काफ़ूले के आने की प्रतीक्षा करने लगे ।

पास ही मिथ्यावादी संसार की चिन्ता को यहीं छोड़कर वीरेन्द्र की चिन्ता जल रही थी। प्रज्वलित अग्नि-शिखाएँ लपक-लपक कर मृतक के यश-अपयश की व्याख्या करती हुई एक के बाद एक अन्तरिक्ष में लीख हो रही थीं। प्रचण्ड उष्णता से तिलमिलाना हुआ उनका प्रतिबिम्ब हुगली की शान्तिदायिनी शीतल गोद में छिपने के लिए छुटपटा रहा था। करुणा और वीभत्सता का परस्पर मिलाप हो रहा था।

शेखर कभी चिता की ओर देख, रोने लगता था तो कभी पागल की भाँति लितिज पर अरनी आँखें गड़ा देता था या फिर कभी वर्षा के जल से इतराई हुई हुगली को देखन लगता था जो अपने तीव्र प्रवाह में कई वस्तुओं का अनन्त की ओर ले जा रही थी।

और शेखर के पिता देख रहे थे सामने की बनती और बिगड़ती लहरों को जो किनारे से टकरा-टकरा कर अपना माथा फोड़ रही थीं। वह बोले—‘जीवन भी विश्व के भीषण परितापों से इसी भाँति टकरा-टकरा कर नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा। अनकों प्रतारणाओं, सङ्कोटों तथा यातनाओं का आगार यह निस्सार संसार त्याज्य है बेटा...’ मनुष्य सुख की कल्पना को वास्तविक सुख समझ बैठता है। कितनी भारी भूल शेखर। मनुष्य जन्म लेता है, सांसारिक वासनाओं में लिप्त वह महान् शक्ति से अनभिज्ञ रहता है, भव-बाधाओं से त्रसित भीषण परितापों का शिकार बनता है। पग-पग पर टोकरें खाकर भी नहीं सँभलता, शेखर...।

मेरा जी अब इस संसार से भर चुका है, मुझे इससे घृणा हो गई है। मैं अपने में एक तीव्र विरक्ति पा रहा हूँ। मुझे आज यह देखकर खुशी हो रही है कि मेरी नस्ल खत्म नहीं हुई बल्कि वह तुम जैसे नरक और योग्य नवयुवक से बढ़ेगी, फूलेगी-फलेगी। और यही मेरे लिए जीवन में सबसे बड़ा सुख है शेखर। इससे अधिक मैं आज कुछ नहीं चाहता। अब जीवन के इन शेष दिनों में अपना अतीत विस्मृत कर देने के लिए मैं अपने में इसी समय तीर्थ-यात्रा करने की उत्कण्ठा पा रहा हूँ। मुझे पूर्ण आशा है कि भगवान् मेरे अपराध अवश्य क्षमा कर देंगे। मैं चाहता

हूँ, बेटा, किसी तीर्थ-स्थान पर ही मेरी मृत्यु हो जाय । मैं लौट कर वापस न आऊँ...।'

इस समय प्रथम बार शेखर ने श्रद्धा की दृष्टि से अपने पिता को देखा । क्या यह वही फतह सिंह थे ? क्या यह उन्हीं के शब्द थे ? और प्रथम बार शेखर ने अनायास अपने हृदय में, अपनी छाती में वात्सल्य अनुभव किया । उसने अधीर हो कहा—'क्या आप मेरे साथ कुछ दिन के लिए भी कलकत्ता नहीं चलेंगे ? नहीं-नहीं आपको चलना होगा पिता जी !'

'नहीं शेखर, मुझे अब व्यर्थ रोकने की चेष्टा न करो, वैसे ही काफ़ी विलम्ब हो चुका है ।'

शेखर मचलते हुए अनुरोध के स्वर में बोला—'नहीं पिता जी, अभी तो मैं आपको कहीं न जाने दूँगा । मैंने आपको पूरे बीस वर्ष पश्चात् आज पाया है । अब एक दम मैं आपको अपने हाथ से नहीं खो सकता ।'

फतह सिंह उलझन में पड़ते हुए बोले—'अच्छा-अच्छा बेटा, तू अपना जी हटका न कर...। यह फिर सोचेंगे कि मुझे कब जाना चाहिए...।' और फिर प्रसन्न बदलते हुए उन्होंने कहा—'तेरी चाची तो कुशलपूर्वक है न शेखर ?'

'जी हाँ । यह उनके ही वात्सल्य का परिणाम है कि मैंने कुछ पद-लिख लिया है और इतना बड़ा हो गया हूँ । पर आप इतने वर्षों तक छिपे क्यों रहे पिता जी ?'

'यह न पूछो बेटा...मुझे पुरानी बातें याद न दिनाओ...।'

'अच्छा पिता जी, आप और अनूप सिंह यहाँ कब आ गये थे ?'

शेखर के पिता ने बताया—'हमने ज़ारी का इन्तज़ाम रात ही में कर लिया था । देर में इसलिए यहाँ पहुँचे कि राह में से तुम लोगों की...वीरेन्द्र की लाश भी लेते चलेंगे; लेकिन ईश्वर की कृपा से तुम लोगों ने अपने दुश्मनों को मार डाला । हमने गड्ढे में उन तीनों की लाशें पड़ी देखी थीं । उनमें से एक तो सिसक रहा था, बाकी दोनों दम तोड़ चुके थे ।'

शेखर ने फिर चिता की ओर देखा और फिर उसकी आँखों में आँसू भरने लगे, तो उसके पिता ने प्रसङ्ग बदलते हुए शेखर से पूछा—‘तुमने खाना कहाँ खाया बेटा ?’

‘अभी तो न खाना है, न पीना । सच तो यह है कि इन असाधारण घटनाओं ने भूख भी मिटा दी—पर पिता जी, मेरी समझ में वह बात अभी तक पूर्णतया नहीं आई कि अनूप सिंह ने किरण (सरोज की माँ) को यहाँ लाकर क्यों कैद किया ?’

‘यह सब धन का जालच था बेटे । ढाई लाख की हवेली पीपलगाँव में थी, दस-एक लाख नकद था, और नौ-दस गाँवों की जागीर थी जिनसे तीन-चार हजार माहवार बसूली होती थी । इन सबको मैंने और अनूप सिंह ने मिलकर किरण से हड़प लेना चाहा था । ईश्वर मुझे इसके लिए सभा करे । मैंने सोचा था कि किरण को राह से हटाने के बाद जागीर व जायदाद पर हमारा अधिकार हो जायगा—और मैंने अनूप सिंह को दूर का रिश्तेदार होने के कारण उकसाया, पर हमें अब तक सफलता नहीं मिली । किरण के मरने से भी रुपया हमको नहीं मिल सकता था और पुनः उसी के खानदान में चला जाता, शर्त ही ऐसी थी इसलिये हमने सोचा कि किरण कहने को जीवित रहे और उधर हम जायदाद इत्यादि को लूटें । इसलिये सरोज को भी हमने लच्छीराम की ही पुत्री घोषित कर रखा था—किन्तु ईश्वर ने तुम्हें भेज दिया और हमारे अपवित्र तथा कलुषित ह्रादे भी नष्ट हो गये और हक भी हकदार को पहुँचा ।’

शेखर ने अधीर हो पूछा—‘अब हकदार कौन है पिता जी ?’

‘सर्वप्रथम तो ईश्वर की असीम कृपा से सरोज की माँ ही जीवित हैं, उनके बाद उनकी बेटी सरोज मौजूद हैं ।’

तो सहसा शेखर के विचारों को एक झटका-सा लगा । ओह—सरोज जागीरदार है । तो क्या मेरा विवाह उससे सम्भव है ? राय बहादुर चुन्नी लाल की लड़की ऊषा—? वह भी तो अमीर की बेटी थी, पर उसके द्वारा उसने अपने भाग्य का निर्माण कब स्वीकार किया था ? और अब

‘यह सरोज—यह सरोज—यह भी तो ? और शेखर कुसमुसाने लगा । सहसा उसे एक विचार और आया । कहीं सरोज यह तो न सोचेगी कि—मैं क्योंकि उसकी संपूर्ण वास्तविकता से परिचित था इसलिए इतना तत्पर होकर उसकी सेवा तथा रक्षा करता रहा ? और उसे प्राप्त करके अपने परिश्रम का पारितोषिक चाहता हूँ ? उसका धन चाहता हूँ, उसकी जागीर व जायदाद का अधिकारी बनना चाहता हूँ ?

‘किस सोच में हो बेटा ?’ फतह सिंह की तेज़ नज़रें घटनाओं की तरह तक पहुँच रही थीं । शेखर ने झट से बात बनाते हुए और हँसने का उपक्रम करत हुए कहा—‘बुछ नहीं पिता जी—मैं सोच रहा था कि सरोज और अनूप सिंह को पाकर किरण कैसी प्रसन्न हो रही होगी ?’

‘बेटा, मैं न बहुत पापड़ बेले हूँ । मेरा सारा जीवन संसार और संसारियों को पढ़ने में व्यतीत हुआ है । ख़रदार—अपनी आत्मा की आवाज़ के विपरीत ऐसा कोई काम धोखे में आकर न कर बैठना जिसका नुक़सान फिर उम्र भर उठाते रहो । याद रखो, यह सदा के लिए जुदा होने वाले बाप की नसीहत ।’

और शेखर ने फिर से अर्द्धापूर्वक अपने पिता को देखा । पिता के प्रेम की भावनाओं का तूफ़ान उसने अपने दिल में उमड़ते हुए देखा । उसकी आँखों से आँसू बहने लगे और वह अनायास अपने बाप से लिपट गया ।

‘मेरे बच्चे—मेरे जिगर के टुकड़े, उफ़—मेरा दिल कितना मैला था । कितना पापाय, कि मैं अपने हाथों से कुछ घंटे पूर्व अपने ही नंत्रों की ज्योति तथा सौंदर्य को बर्बाद कर देने पर तुला हुआ था—।’ और फतह सिंह इन बीस वर्षों में शायद आज प्रथम बार रो पड़ा ।

शेखर ने आँसुओं के भाँतर से हँसकर कहा—‘नहीं पिता जी—मैं अभी आपको कलकत्ते अपने साथ ले चलूँगा—फिर चाहे आप अपनी इच्छानुसार तीर्थ-यात्रा को जा सकते हैं ।’

इधर यह मधुर किन्तु कठणाजनक दृश्य था, उधर वह सुश काफ़ला चला आ रहा था । शेखर ने देखा, घण्टे भर पूर्व जो सरोज की माँ

जञ्जीरों से बँधी हुई थी और जिन जञ्जीरों में तड़पन थी—जिसकी बन्द उलझी श्वास थी और श्वासों में भीगा मिहरन थी और उस सिहरन में लिपटा पड़ा था भूला इतिहास; जिसकी आँखों में पीड़ा थी और पीड़ा में कम्पन था—अब वह सरोज की माँ। खुशी में जगमगाती-सी चली आ रही थी। वह सरोज से और सरोज उससे लिपटी हुई चली आ रही थी और अनूप सिंह मानो उन दोनों को गोद में उठाये चले आ रहे थे। उनके मजबूत बाजू जैसे इस समय दुनिया की चिन्ताओं से इन दो पैदल चलने वाली तथा ठुकराई हुई स्त्रियों की रक्षा कर रहे थे।

फ़तह सिंह की नज़रें सरोज की माँ को देखकर ज़मीन पर शर्म से झुक गईं किन्तु किरण ने शेखर के पिता को, उनसे क्षमा-प्रार्थना का एक शब्द सुनने से पूर्व ही सच्चे हृदय से क्षमा कर दिया।

‘फ़तह सिंह, क्या आज हमारे बराबर दुनिया में कोई भाग्यशाली पुरुष हो सकता है?’ अनूप सिंह ने खुशी में फटते हुए कहा।

‘सच तो यह है भाई, कि जिस खुशी को हम जीवन-पर्यन्त यत्न करके किसी भी मूल्य पर प्राप्त नहीं कर सकते थे, वही सच्ची खुशी आज हमें भगवान् की कृपा से अनायास ही मिल गई है। वास्तविक महा आनन्द प्राणी को सत्त्व, विश्वास, प्रेम, परोपकार और व्यवहार से प्राप्त होता है।’

‘यह सब ठीक है फ़तह, पर मैं अपनी स्त्री के पवित्र तथा नैसर्गिक प्रेम के योग्य नहीं हूँ और न था, फिर भी ईश्वर ने इसे मुझ पर कृपालु बना दिया। यह क्या कम सुख की बात है?’ अनूप सिंह ने हर्षातिरेक में कहा। फिर कुछ रुक कर बोले—‘अब खाना खाना चाहिए।’

पर तभी सरोज की, किरण की तथा अनूप सिंह की दृष्टि चिता की ओर गई तो वहीं ठिठक कर रह गईं। सरोज की आँखों से अचिराम आँसू बहने लगे और जब उससे नहीं देखा गया तो दूसरी ओर मुँह फर लिया। अनूप सिंह और किरण का जी भी भर आया। खाने के स्थान पर जैसे सबके गले में फन्दा लग गया।

और तब—सब एकत्र होकर चिता के पास गये। हाड़-मांस की देह

राख हो गई थी—आग में जलकर, धुएँ के साथ आकाश में विखीन होकर। शेखर उम कुण्डलीकार धुएँ को अनिमेष देख रहा था मानो उसमें वीरेन्द्र को ढूँढ़ रहा हो। सबने सिर नत कर, प्रार्थना की और सैकड़ों हसरतों व निराशाओं के साथ उसको वहीं छोड़कर वह लारी के पास आये। शेखर ने दोनों साइकिलें उस पर डालीं। और तब बोझिल मन से बारी में बैठ, सबने पीपलगाँव की ओर प्रस्थान किया।

सोचा था क्या, क्या हो गया—क्या हो गया।

२०

जब कस्बे वालों को मालूम हुआ कि सरोज मिल गई है तो उनके हर्ष की सीमा न रही। उसके देखने के लिए व्याकुल तथा अधीर लोगों की एक अपार भीड़ अनूप सिंह की हवेली की ओर चल पड़ी। देख चुकने पर सबको तृप्ति की एक घूँट मिली। सरोज भी परिचित चेहरों को देख, फूली न समाई। बड़े-बूढ़ों ने प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरा, बाकी ने मिलन की खुशी जताई। और आज सरोज जान पाई कि कस्बे के बच्चे-बच्चे को उससे कितना प्रेम है। वह प्रेम शब्दों में नहीं बँध सकता। किन्तु यह जानकर कि सरोज अनूप सिंह की ही लड़की है, सबके दिलों में झलबली-सी मच गई। कई राय कायम हुई, कई अनुमान लगाये गये, कई तर्क हुए किन्तु अस्ली भेद तक उनकी समझ न पहुँच सकी।

यह जानकर कि सरोज को ढूँढ़ निकालने में एकमात्र शेखर का हाथ है, शेखर के प्रति उनका मान भी बढ़ा और श्रद्धा भी। किन्तु भेद को जानने के लिए उनके हृदय अधीर हो उठे और तब समाधान पाने के लिए ही उन्होंने आखिर शेखर को घेर लिया। अनूप सिंह कस्बे के माननीय व्यक्ति थे और मजिस्ट्रेट भी। गाँव वाले उनसे डरते थे। इसलिए उन्हें छोड़, शेखर को उन्होंने आ घेरा।

जब शेखर ने देखा कि यह लोग अभी केवल हठी हैं, उन्मत्त हैं और जो इन्हें अभी समझाया-बुझाया नहीं गया तो फिर यह अनूप सिंह के

विरुद्ध विद्रोह-सा खड़ा कर देंगे । अनूप की मान-मर्यादा, उनकी प्रतिष्ठा की तनिक भी चिन्ता न कर, यह अभी झगड़ा खड़ा कर देंगे और उसमें अनूप सिंह कहीं के भी न रहेंगे । उनकी केवल एक कमज़ोर सी आवाज़ होगी और यहाँ यह कस्बे की हज़ारों आवाज़ें एक स्वर में मिलकर उन्हें हिला देगी । इनकी शक्ति अपार है, अथाह है ।

शेखर ने उन्हें असली बात न बता, अपनी बुद्धिमत्ता द्वारा किसी प्रकार प्रसन्न कर लिया और संक्षेप में सरोज को ढूँढ़ने तथा उसके मिल जाने का और दूसरी तरह से वर्णन कर, उनके रोष को शान्त कर दिया । किन्तु उन्हें यह तो बताना ही पड़ा कि इसमें अनूप सिंह जी का अपराध था, उन्होंने बड़ी भारी भूल की थी जिसके लिए वह अब लज्जित हैं । शेखर को इन निरीह किन्तु हठी तथा अधीर कस्बे वालों के समझाने-बुझाने में चन्द्रहास और किरण देवी का भी सहयोग मिला । यदि शेखर उनसे अनूप के अपराध तथा क्षमा-याचना की बात छिपा जाता तो वह इस कथा को जो उसने बदल बदला कर उन्हें सुनाई थी, कभी भी सत्य मानने के तैयार न होते । इसलिए शेखर का उतना तो कहना ही पड़ा जिसके लिए वह दुःखी भी था और नहीं भी । किन्तु वह अधिक दुःखी इस बात पर था कि उसने गाँव वालों से जो सदैव उसका विश्वास करते थे और अब भी किया, आज भूय कहा और असली बातों को छिपाकर उनके साथ एक प्रकार से अन्याय ही किया । किन्तु वह विवश था, लज्जित था । उसके पास और कोई दूसरा उपाय भी तो न था ।

यह जानकर कि सरोज के इस मामले को लेकर एक मात्र अनूप सिंह दोषी हैं और ज़िम्मेदार भी तो गाँव वालों में एक बार फिर सनसनी फैली थी किन्तु किरण देवी ने उन्हें यह कह कर शान्त कर दिया कि सरोज के पिता अपने किये के लिए बहुत लज्जित हैं और दुःखी भी । भाइयाँ आप भी उन्हें माफ़ कर दें । और कस्बे वालों का उमड़ता हुआ रोष ख़त्म-सा हो गया । यदि अनूप सिंह उस समय वहाँ होते तो कदाचित्

वह बाँ आसानी से न मानते । उधर यह भी अच्छा हुआ जो लच्छीराम और उनकी स्त्री उसी दिन जिस दिन अनूप सिंह साहू के लिए रवाना हुए थे, यह कस्बा छोड़कर चल दिये वरना आज उनकी खैर न थी ।

कुछ भी हो, गाँववालों के दिलों में सरोज के मिल जाने की खुशी अधिक थी, जिसने उन्हें दबा दिया और वह शान्त अपने-अपने घरों को लौट गये ।

वही भयानक हवेली जिसमें चुड़ैलें नाचा करती थीं और भूत कहकहे लगाया करते थे, आज जगमगा रही थी और उसमें हर कोने से आकर्षक कहकहे और आवाज़ें प्रस्फुटित हो रही थीं । अनूप सिंह ने इस खुशी के अवसर पर दिल खोलकर खर्च किया और सन्ध्या को सारे कस्बे की दावत कर डाली ।

दावत के बाद शेखर शीला, तहसीलदार साहब और शोभा इत्यादि से मिलकर चन्द्रहास के साथ टहलने निकल गया । उसका जी न जाने क्यों उस हवेली में अचानक घबराने-सा लगा था, सो सोचा, थोड़ा इधर-उधर घूम आय । दोनों साथी कस्बे से बाहर नदी की ओर चल पड़े । घूमने के दृष्टिकोण से यही जगह सुन्दर थी ।

नदी वैसी ही अमीर चाल से बही चली जा रही थी जैसी शेखर ने पहले देखी थी । कहीं कोई परिवर्तन नहीं, कोई नवीनता नहीं । वही निस्तब्धता, वही मैठकों की टर-टर, वही सूनापन, वही किनारे पर पड़े निर्जीव, एकस्थ चिकने पत्थर—क्रिया-विहीन, घटना-विहीन । वीरेन्द्र याद आ गया । सब ज्यों के त्यों थे किन्तु किसी परी की धुन में आत्म-विस्मृत रहने वाला वह दीवाना आज दिखाई न देता था ।

शेखर चन्द्रहास को लेकर वहीं एक बड़े से पत्थर पर बैठ गया । फिर होठों पर फीकी मुस्कराहट खींच कर बोला—चन्द्रहास, पत्थर होना भी कितने सौभाग्य की बात है ! न कोई सोच, न कोई चिन्ता । दुनिया में क्या घट रहा है और क्या नहीं, इनकी बला से । और एक यह है

आदमी जिसके हिसाब-किताब में सदा काम-काज ही बाकी पड़े रहते हैं । संवर्ष है, हाय-हाय है या फिर मृत्यु । पत्थर मानव से अधिक भद्रास्पद है चन्द्रहास ...

चन्द्रहास बोला—‘आप इसलिए टहलने निकले दिखें कि रोनी सी सूरत लेकर रोने से स्वर में ऐसी बातें की जायें ? यह तुम्हें आखिर दोपहर से हुआ क्या है ? न किसी से बोलना है, न किसी से कोई ठीक से बातचीत, न हँसी-मज़ाक । आखिर यह सब पागलपन है क्या ?’

‘मैं स्वयं नहीं जानता चन्द्रहास । केवल इतना जानता हूँ कि व्यर्थ ही खुश होने का मुझे क्या अधिकार है ? क्या वीरेन्द्र की मृत्यु से खुश होऊँ ? सरोज की अपने हाथों कोई रक्षा न कर सका, क्या उस मर्दानगी पर गर्व करूँ ? क्या दुष्ट और अपराधी पिता का पुत्र होने पर गौरव समझूँ ? क्या वीरेन्द्र के अधिकारों पर ढाका मार कर खिलखिलाऊँ ? तुम्हीं बताओ, आखिर क्या हक है मुझे खुश होने का ?’ उत्तेजित-सा शोखर बोला ।

‘तुम तो हो पागल । तुनसे तो बात करना है गुनाह । जब कि सरोज के साथ तुम्हारे विवाह की ज़ोरों से बातचीत चल रही है तो उस समय तुम्हें खुश नहीं होना चाहिए तो क्या मुझे होना चाहिए ? मैंने अपने कानों से अनूप सिंह, तुम्हारे पिता और सरोज की माँ को इस सम्बन्ध में परस्पर बातें करते सुना है ...’

‘बस-बस चन्द्रहास ... आगे एक शब्द भी न बोलो । खुशी के स्थान पक्ष मेरे दिल में आग-सी लगती है । जिसके जिए मैं किसी भी रूप से रूचि नहीं उसका मुझे अधिकारी बना देना क्या मेरे साथ खिलवाड़ नहीं ? क्या इसे मैं अपना अपमान नहीं समझूँ ? सोचो चन्द्रहास, सोचो ? सरोज क्या यह जानकर खुश होगी ? दुनिया क्या यह जानकर खुश होगी ? क्या तुम्हारी समझ में दुनिया अन्धी है, सरोज अन्धी है ? क्या सरोज को मेरा, मेरे समस्त ज्ञानदान का, मेरी सेवाओं का परिचय नहीं मिल

सुका ? और यह जानते हुए भी क्या वह इस प्रस्ताव को स्वीकार करेगी ?'

चन्द्रहास ने चिढ़ते हुए कहा—‘और जो सरोज ने कभी स्वीकार कर लिया तो ? तो बताओ तुम्हें क्या सज़ा दी जाय ?’

‘तो—तो ।’ और शेखर चुप हो गया ।

चन्द्रहास जानता था कि सरोज शेखर को प्रेम करती है। शेखर को छोड़, फिर संसार में और कौन व्यक्ति है जो उसके हृदय पर आसीन हो सकता है ? कौन ऐसा है जो उसकी सौंदर्य सुधा का रसपान कर सकता है ? चन्द्रहास शेखर का अन्तरंग मित्र है, उसे यह भी नहीं छिपा हुआ है कि शेखर सरोज को कितना प्यार करता है। उसे पूर्ण विश्वास है कि यदि सरोज शेखर को न मिली तो शेखर की दुनिया ही लुट जायगी। फिर घर में सभी प्राणियों की जब इच्छा सरोज का विवाह शेखर से करा देने की हो रही है तो सन्देह का कौन कारण बच रह जाता है... उँह, यह शेखर क्या जाने ? बेवकूफ कहीं का। जब दखो तब हठी, सटीमैटल। चरित्रवान, आदर्शवान। हट होती है आखिर सब बातों की।

शेखर को जैसे अभी-अभी किये गये चन्द्रहास के प्रश्न का अर्थ उत्तर मिल गया था । विगलित कण्ठ स्वर में बोला—‘तो—तो—चन्द्रहास, शायद सरोज को मुझसे उतना प्यार, उतना स्नेह, उतना श्रद्धा न मिल सकें जितनी वीरेन्द्र उसे दे सकता था ।’

‘अच्छा छोड़ो यह बात’ । तुम्हारे साथ तो बेकार दिमाग खपाना है ।
चलो, अंधेरा हो गया । घर चल ।’

दोनों उठ खड़े हुए और अनूप सिंह की हवेली की राह ली।

आकाश पर तारे छिटके थे और शखर के मानस-पट पर प्रश्न—कई प्रश्न असंख्य प्रश्न । क्या वह उन प्रश्नों का इस जीवन में हल कर सकेगा ?

❀ वह दोनों हवेली में प्रवेश कर ही रहे थे कि फाटक पर शीजा मिल गई। उसने चन्द्रहास को एक ओर बुलाकर कान में कुछ कहा। चन्द्रहास

भीतर चला गया । शेखर भी जब अन्दर जाने लगा तो शीला ने उसे रोकते हुए कहा—‘शेखर...तुम्हें तुम्हारे पिता जी याद कर रहे थे । चलो, वह वहाँ बैठे हैं बाग में ।’ शेखर साथ हो लिया ।

जब आखिर एक स्थान पर ले जाकर शीला ने शेखर को खड़ा कर दिया तो उसने देखा—पिता जी के स्थान पर सरोज...। उफ़, शीला ने यह क्या किया ? कुछ अच्छा नहीं किया ...।

उसके दिल ने चिकोटी भरते हुए उसी से पूछा—शेखर...‘क्या सच कह रहे हो, शीला ने अच्छा नहीं किया ?’

शेखर कुछ डुल-सा गया । वह अपने पर विश्वास न ला सका । मुस्कराकर प्रत्यक्ष में बोला—‘ओह, यह शरारत शीला !’

‘मैं क्या करूँ ? मेरा क्या कसूर ? इन्हीं से पूछिए जो अब इस तरह भोली-भाली बन कर बैठ गई हैं । अब तूक तो मेरी जान खाये जा रही थी कि उन्हें कहीं से भी लेकर आओ वरना ...।’

तारों की चटख में शेखर ने देखा—सरोज का कृत्रिम रोप । उफ़, रूप जैसे और भड़क उठा था ।

‘पर शीला...‘उन्हें’ से किसका आशय ?’ शेखर ने हैरानी से पूछा ।

‘बुप रहो जी । नाम कैसे ले सकती हैं भला ?’ और खिलखिला पड़ी और सरोज के कन्धों पर हाथ ढाल दिये । मुँह ले गई गोरी के मुँह के पास शायद चूमने ।

शेखर के प्राणों में रक्त का तीव्र सञ्चार हो उठा । उसे न जाने कैसा प लगा यह ‘उन्हें’ ।

‘शीला !’ हल्का-सा शोर मचाती हुई सरोज बोली—‘छोड़, मुझे जाने दे ।’

और शेखर सोच रहा था—क्या शीला सच ही कह रही थी ? काश, वह सच हो । पर ...नहीं-नहीं, इस प्रकार संशोधित किया जाने वाला है ही कौन ? वह ऐसी आशाएँ सीने में क्यों पालता है, वह ऐसे स्वप्न क्यों

देखता है ? क्यों ? उसकी समझ में नहीं आया कि वह उनके पास बैठ जाय या वहाँ से दूर भाग जाय ।

आखिर शीला ने उसे पास की एक पत्थरनुमा बेंच पर बिठाते हुए कहा—‘देखिए आप सब लोग तो कल शामगढ़ चले जायेंगे पर वहाँ जाकर कहीं खुशी में हमारी मिठाई न भूल जाना...’।

और जब शीला यह कह रही थी तो शेखर ने देखा उसकी आवाज़ कुछ पथरा-सी गई थी । न जाने शेखर को तब कैसा लगा । इतना तो वह समझ ही गया कि शीला के मन की नारी के प्राणों का व्यङ्ग आँसुओं की चरम सीमा को छूने का सफल उपक्रम कर रहा है ।

वह कह रही थी—‘आप चाहे हमें भुला दें’ पर हम तो आपको याद कर ही लिया करेंगे...’।

और शेखर के जी में आया कि वह यहाँ से भाग जाय । वह सब समझ रहा था कि इन बातों का ‘आदि’ कहाँ है किन्तु यह न जानता था कि ‘अन्त’ कहाँ है । अन्त चिर अज्ञात था ।

वह जाने को उठ खड़ा हुआ । पर जी नहीं किया कि पैर उठाये ।

तो इस बार सरोज ने देखा, शेखर कुछ अन्यमनस्क-सा है और चिन्तित भी । कुछ परेशान-सा है और दुःखी भी । पर क्यों—क्यों है वह ऐसा ? क्या किसी से कुछ भूल हुई है ? मृदु कण्ठ में आखिर बोली—‘बैठिए न...’।

शेखर उलझन में फँसा फिर बैठ गया ।

शीला बोली—‘बहन, बस पति मिले तो ऐसा आज्ञाकारी...’।

और शेखर ने सुना... शीला के स्वर में यह व्यथा सी क्या बजी ?

सरोज कह रही थी—‘ब्रमा कीजिए, आपने जो मेरे लिए इतने कष्ट उठाये हैं, उनके लिए मैं हादिक धन्यवाद भी देना भूल गई ।’

इस बार शेखर बोला— भूलती हो सरोज । मैंने कोई कष्ट न उठाये । बीरेन्द्र ने उठाये थे और वह मर गया...’। और यह कह कर वह उठ

खड़ा हुआ और चल दिया । शीला ने बहुत ही पुकारा किन्तु फिर वह नहीं जौटा ।

सरोज भी उसका यह अकारण क्रोध न समझ सकी और कुछ देर बाद अनमनी-सी हो उठ कर चली आई ।



तारे छिटके हुए थे और शेखर करवटें ले रहा था । नींद नहीं आ रही थी । नहीं-नहीं, उसने अच्छा नहीं किया । सरोज क्या सोचती होगी ? अकारण क्रोधित होने का उसे क्या अधिकार है ? वह सरोज पर क्रोधित होकर व्यर्थ ही उससे क्या करा लेना चाहता है ? क्या उसे डराना चाहता है ? वश में करना चाहता है ? उसे उससे अभी जाकर अपने इस अशिष्ट आचरण के लिए क्षमा माँगनी चाहिए । क्षमा ? वह उससे क्षमा माँगे ? हाँ, उससे ..

उमने हृदय-उधर देखा—सब सो रहे थे अपने-अपने कमरों में । चारों ओर सन्नाटा था । आधी रात बीत चुकी थी । उसका दिल धड़कने लगा । वह जायगा उसके कमरे में ? क्या कहेगी वह ? क्या सोचेगी ? नहीं-नहीं, वह कैसे हो सकता है, यह कैसे होगा ?

तारे छिटके हुए थे और सरोज करवटें ले रही थी । नींद नहीं आ रही थी । आखिर यह शेखर अनायास ही क्रोध में आकर क्यों उठकर चला गया ? वह परेशान-सा क्यों दिखाई दे रहा था ? वीरेन्द्र को लेकर उसने क्या कहा था ? क्या वह सच था ? हाँ, सच था । वीरेन्द्र ने उसकी जान बचाई थी, शेखर के प्राणों की भी रक्षा की थी । वीरेन्द्र के जीते जी उसने उसकी तनिक भी परवाह न की थी किन्तु अब उसके प्रेम की महानता वह जान पाई है । अब उसका मूल्य जान सकी है । पर... अब उसका क्या प्रतीकार ? शेखर को प्रेम करती है पर शेखर... क्या हुआ है उसे आज... कि तभी, उसने सुना उसके किवाड़ों को बाहर से कोई धीमे-

धीमे थपथपा रहा है। वह ऋट से पलङ्ग पर से उठी और लपककर किवाड़ खोल दिये।

‘कौन ? शेखर ?’ वह धक् से रह गई।

‘सरोज !’ शेखर का स्वर अपराधी था।

सरोज ने देखा, चारों ओर सजाटा है। कुत्ते भी चुप हैं। न जाने कितनी रात बीत चुकी है। और यह शेखर उसके कमरे में। इतनी रात गये ? सिर से पैर तक वह काँप उठी।

शेखर ने कहा—‘मैं अपनी सन्ध्या वाली अशिष्टता के लिए लज्जित हूँ। मुझे क्षमा कर दीजिए।’

यह शेखर भी अजीब भावुक है। यह नहीं जानता कि अभी जो वह कर रहा है, क्या शिष्ट है ?

सरोज ने घबराकर कहा—‘नहीं-नहीं, आपने कुछ भी तो ऐसा नहीं किया था, आप जाइए। कोई देखा होगा।’

शेखर मुस्कराया—‘देख लेगा तो क्या ? एक शुभचिन्तक ही तो मिलेगा यहाँ...’ फिर भावावेश में बोला—‘सरोज, वह देखो—खिड़की से बाहर... एक दिन था, जब मैं वहाँ कँपकँपाता बरगद के तनों में पनाह ले रहा था। भयानक रात थी, चिमगादहें टट्टा मचाती फिर रही थीं और ठण्डू बोल रहे थे... और आज ! मेरे सपने साकार हो गये हैं सरोज ! मेरी दुनिया बदल गई है। मैंने तुम्हें पा लिया है...’ कि सहसा बोल्ते-बोलते वह चुप हो गया, जैसे खुद के स्वर से डर गया।

सरोज कुछ डुल-सी गई। शेखर ने जैसे उसके हृदय को हँसने से रूक दिया। मुस्कराकर बोली—‘शायद आप भूल रहे हैं कि आपने वीरेन्द्र से भी कुछ वादे किये थे...’

शेखर जैसे चिढ़ूँक पड़ा। किन्तु प्रकृतिस्थ होते हुए बोला—‘सरोज... मैं इस समय, तुम जानती हो, यहाँ तुम्हारे कमरे में क्यों आया हूँ ? सरोज... अच्छी सरोज, साहू के तूफान वाली घटना तुम्हारे मुँह से सुनने

को मेरा हृदय अधीर हो रहा है। मुझे वह सुना दो। सुनकर मैं फिर चला जाऊँगा।’

सरोज ने उमे अपने पलङ्ग पर बिठाने हुए कहना शुरू किया—‘जब आप बोट के एक तख्ते पर मूर्च्छित छोड़ दिये गये थे तो मैंने नाविकों से अनुनय-विनय की कि आपको जाकर ले आयँ किन्तु सबने साफ़ इनकार कर दिया। आखिर जब वीरेन्द्र को मैंने बहुत ही गिढ़गिढ़ा कर कहा... (सरोज उन शब्दों को चबा गई जो शेखर एक माँझी के मुँह से सुन चुका था) तो वह उठ खड़ा हुआ और बोला—‘अच्छा सरोज, मैं उसकी जान केवल तुम्हारे लिए बचाने जाता हूँ। मैं उसे महज़ इसलिए लेने जा रहा हूँ कि मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। तुम मुझसे कभी प्रेम न कर सकोगी और न कभी मेरे पास रह सकोगी और न कभी मेरे पास रह कर खुश हो सकोगी। मैं चाहता हूँ कि तुम सदैव खुश रहो इसलिए तुम्हारी खुशी की खातिर और केवल तुम्हारी खातिर मैं शेखर को लेने जाता हूँ।’

पर शेखर को सन्तोष न मिला। वह सरोज के मुँह से वही शब्द सुनना चाहता था जो माँझी ने उसे हुगली नदी के किनारे पर कहे थे। वह न जाने क्यों उन शब्दों को आज फिर से सुनने के लिए तब्यस्त रहा था। इसी प्रसङ्ग पर सरोज को उलझाये हुए, वह फिर मचलते हुए बोला—‘पर वीरेन्द्र ने आश्चर्य है, एक बार तुम्हारे कहने को भी ठुकरा दिया। आखिर तुमने उसे प्रसन्न कैसे कर लिया?’

‘मैंने उसकी बहुत मिन्नत की थीं जब जाकर वह खुश हुआ था...’।

‘याद तो करो ज़रा, शायद तुमने उससे और भी कुछ कहा था...’।

‘और मैंने कुछ भी नहीं कहा था।’ सरोज ने दूसरी ओर मुँह फेर कर जवाब दिया।

‘यों नहीं। मेरी आँखों में आँखें डालकर कहो कि और कुछ भी न कहा था।’ शेखर पुनः पलङ्ग पर से खड़ा हो गया। उसे लगा जैसे उसके भीतर कहीं सीसा उबल रहा है।

सरोज कुछ नहीं बोली ।

उसने फिर कहा—‘देखो सरोज ! इधर देखो, और कहो कि वससे कुछ भी न कहा था ?’ सरोज ने उधर मुँह किये हुए ही कहा—‘यह क्या पागलपन है ?’

‘नहीं सरोज, तुम्हें कहना होगा...।’ शेखर ने अनुरोध किया ।

सरोज ने शेखर की ओर मुँह उठाया और कह दिया मुस्कराकर—
‘और कुछ नहीं कहा था मैंने । वस—अब तो ठीक...।’

किसी ने जैसे शेखर का कलेजा चीर दिया । वह लहलुहान होकर बोला—‘तो तुमने मुझे पानी में से क्यों निकलवाया ? मुझे क्यों नहीं मर जाने दिया ? मेरे प्राणों से तुम्हें क्या दिलचस्पी ?’

‘मुझसे भूल हुई ।’ मुस्कराकर संक्षेप में सरोज ने कहा ।

‘नहीं, मैं जानकर रहूँगा ।’ यह कदाचित्त शेखर की अन्तिम और अशक्त-सी छुटपटाहट थी ।

‘तो यों समझ लीजिए ।’ मुस्कराकर सरोज ने कहा—‘यदि दूसरी बार हमें कोई सताय तो आपकी बची जान हमारे काम आ सके ।’

‘ओह...समझा !’ और झपट कर शेखर कमरे से बाहर हो गया ।

सरोज ने चाहा कि पुकारे पर वह जा चुका था । सरोज को स्वयं पर भुँझलाहट सी हो गई । और उधर शेखर पलङ्ग पर कुसमुदा रहा था... माँझी सही था या सरोज सही है...? कौन सही है ? कौन ? वीरेन्द्र का प्यार सही है या शेखर की तबड़ ? सरोज की मुस्कराहट सही है या उसके बोझ ? शेखर सही है या उसका दिल ?...शेखर का औचित्य सही है अथवा अनौचित्य ?

दूसरे दिन, दोपहर की मोटर से यह काफ़ला का काफ़ला शामगढ़ के लिए चल पड़ा। चन्द्रहास की कार पीछे-पीछे थी। दूसरे दिन सुबह सब शामगढ़ पहुँच गये। आज के इस प्रभात में बड़ी स्फूर्ति थी...शेखर लपककर अपनी चाची से लिपट गया।

शेखर की चाची लण भर आवाक् और निश्चल अपनी छोटी बहन किशोरी को देखती रही और फिर अनायास ही दोनों बहनों बिजली की तरह बढ़ कर एक दूसरे में समा गईं। वर्षों की बिछड़ी हुई बहनें थीं सो आँसू धमते ही न थे। वर्षों बाद आज कहीं मिलना बड़ा था सो रह-रह कर रुलाई फूट-फूट जा रही थी। एक दूसरे को देखती थीं और बस, खुशी में बरस पड़ती थीं। कुछ बोलने से पूर्व ही बस खुशी से कण्ठ अवरुद्ध हो जाता था।

फिर सरोज का नम्र आया। शेखर की चाची ने उसे बाहुपाश में भर लिया। देर गये तक स्नेह से उसके सिर पर हाथ फेरती रहीं, मुँह चूमती रहीं।

अनूप सिंह और उमराव, हृदय को विह्वल कर देने वाले इस दृश्य को अभिभूत से खड़े देखते रहे। उनके नेत्रों से हर्ष के आँसू बहे जा रहे थे।

बिछड़े हुए अपने पराये आज सबके सब पुनः मिल गये थे तो घर खुशी से चहक उठा था। पुराना वसन्त एक दीर्घ काल के पश्चात् आज जैसे लौट आया था। एक विचित्र-सा आनन्द, एक विचित्र सी अनुभूति, एक विचित्र-सा सुख जो शब्दों में नहीं बँध सकता—शायद वैसा ही कुछ सुख...जैसा कि ज्योत्सना पर्व में हरियाली से लड़े मञ्जरित आन्न वृक्ष प्राप्त कर कोकिल के स्वरों में डूब, वसन्ती सङ्गीत में बेसुध होकर झूलने लगते हैं। आज इस घर के समस्त प्राणियों के हृदय वैसे ही सुख के हिंदोलों पर झूल रहे थे।

आखिर शेखर ने अपने पिता और अनूप सिंह को अपने साथ ले जाकर एक कमरे में बिठा दिया और फिर खुद सामान इत्यादि रखवाने करने में तथा भोजन की व्यवस्था कराने में व्यस्त हो गया। खाना तैयार होने पर सबने भर पेट खाना खाया। फ़तह और अनूप को थकान के कारण झट ही नींद आ गई। सो वह सो गये। उधर किरण ने अपनी बहन से गत पन्द्रह वर्षों का हाल विस्तार पूर्वक सुना डाला। सरोज भी दोनों बहनों के पास चुपचाप बैठी उनकी बातें सुन रही थी।

शेखर की समझ में नहीं आ रहा कि वह क्या करे। पिता जी और अनूप सिंह सोने में व्यस्त थे, उधर डेढ़-दो घण्टों से चाची और सरोज की माँ बातों में। शेखर अकेला था क्योंकि चन्द्रहास भी सीधा अपने घर चला गया था। अब तक तो शेखर किताबों के पन्ने उलटता रहा किन्तु आखिर पन्ने भी कब तक उलटता, उमकी भी कोई हद होती है। बैठे-बैठे ऊब-सा गया। पर चाची और किरण देवी की बातों का कोई 'अन्त' ही न आ तो झुँझलाकर वह उठ खड़ा हुआ और सीधा अपनी चाची के पास पहुँचा।

उसे देखते ही सरोज कुछ सिमट कर बैठ गई। शेखर ने जैसे उधर देखा ही नहीं। चाची से बोला—'चाची, अब वह छः महीने पूरे हो गये हैं। रायबहादुर साहब की लड़की ऊषा से हमारा सम्बन्ध रक्का कर लो। हमने खूब सोच-विचार कर लिया है। आपकी पसंद तो हमारी भी पसंद। हम तैयार हैं।'

'चल रे, बड़ा आया रायबहादुर से सम्बन्ध कराने वाला'... 'क्या मैं अन्धी हूँ जो घर में आई लक्ष्मी को छोड़ अब बाहर भटकती फिरूँगी। रतन को छोड़, पत्थरों का सौदा करूँगी।'

कौन रतन है और कौन पत्थर, सो शेखर जान गया था किन्तु सरोज और सरोज की माँ 'रतन' की बात छोड़ 'पत्थर' की बात न समझीं। सरोज सोचने लगी, यह रायबहादुर और लड़की ऊषा—उनसे शेखर का सम्बन्ध और वह भी पक्का—यह सब क्या? वह स्वयं रतन है, इतना तो उसकी बुद्धि में आ गया था किन्तु वह पत्थर ??

शेखर ने हृदय स्वर में कहा—‘नहीं चाची, या तो तुम्हें मेरा सम्बन्ध वहीं करना होगा अन्यथा मैं और कहीं विवाह न करूँगा । यदि मुझ पर अनुचित दबाव डालोगी तो सच मैं कुछ कर डालूँगा ।’

‘देख शेखर, यदि अब तूने ज्यादा बड़बड़ की तो मार खा जायगा । तू अपनी मनमानी करना चाहता है, क्या हम तेरे कुछ भी नहीं ? मैं कहे देती हूँ, होगा वही जो मैं चाहूँगी और वह तुझे मानना पड़ेगा ।’ चाची का स्वर बहुत ही संयत और बहुत ही दृढ़ था ।

शेखर जो अपने में अब तक व्यर्थ का तनाव भरने की चेष्टा कर रहा था, सहसा नरम पड़ गया । उसने देखा यदि अभी चाची के सम्मुख अधिक ज़िद की तो फिर उन सा बुरा न होगा । वह सरोज को जलाने के अभिप्राय से व्यर्थ का मान कर रहा था वरना हृदय से वह कभी नहीं चाहता था कि सरोज उसके हाथ से निकल जाय । बल्कि मन ही मन सोच रहा था, क्या सचमुच सरोज उसकी हो सकेगी ? इस जन्म में क्या वह सरोज को पा सकेगा ? यदि पा सका तो वह अपने को कितना भाग्यशाली समझेगा ? किन्तु अपने इन भावों को, इन चाहों को, इन कमज़ोरियों को दूसरों पर प्रकट नहीं करना चाहता था । वह भीतर से जल रहा था फिर भी अपने को ऊँचा बनाये रखना चाहता था । कैसी विचित्र चाह थी, कैंसा विचित्र अहङ्कार और कंसे झूठे दुःख का उदय ? वह पूर्ववत् हृदय स्वर में बोला—‘खैर मैं इस पर विचार करूँगा । यह मेरा व्यक्तिगत प्रश्न है जिसका सम्बन्ध सीधा मेरे जीवन से है ।’ फिर कुछ मुस्कराकर बोला—‘अच्छा चाची, कुछ पैसे-वैसे तो दिलाओ । जब खाली हो गई है...’

‘जब तैरी नज़र में हम तेरे कोई नहीं हैं तो फिर जा—हमसे तेरा अब क्या वास्ता ? हम ता तैरी ओर से मर गये । जा, हम भी अपना मुँह न दिखा...’

‘चाची, मेरी अच्छी चाची...’ और शेखर बच्चों की भाँति, जैसी

कि उसकी प्रकृति थी, अपनी चाची से उसी क्षण ज़िपट गया और थोड़ी देर बाद उन्हें किसी प्रकार प्रसन्न कर ही लिया। उन्होंने कहा—‘जा, मेरी जान मत खा अब “वह तकिये के नीचे सौ का एक नोट पड़ा है, ले जा।’

‘मेरी अच्छी चाची।’ फिर चाची से अज्ञग होते हुए उसने सरोज पर सरसरी-सी दृष्टि डाली और परिहास के स्वर में बोला—‘देखो चाची, पैसे मुझे मिल रहे हैं पर यह सरोज कैसी जल रही है !’

सरोज संकुचित हो उठी।

चाची ने कहा—‘सरोज क्यों जलने लगी रे ? उसके यहाँ तो तुम जैसे नौकर हैं—नौकर। तुम भी वह नौकर रखा सकती है...समझा।’

शेखर ने नोट उठाकर जेब में रखा लिया था किन्तु चाची की यह बात उसे गोली की तरह लगी। क्षण भर आहत-सा, शोकातुर वह खड़ा रहा फिर कमरे से बाहर हो गया। उफ़, उसका यह मूल्य ! वह इतना गिरा हुआ ? वह इतना नाचीज़ ? माना कि सरोज ज़मींदार है पर वह... वह क्या कुछ भी नहीं है ? यह चाची ने क्या कह डाला ? शेखर सरोज का नौकर ? नौकर ? वह भीतर ही भीतर सुलगने लगा। उसका अभिमानी युवा हृदय विद्रोही हो उठा।

चाची भी कहने को तो अनायास यह कड़वी-सी बात कह गई थी किन्तु अब मन ही मन पछता-सी रही थी यह क्या कह डाला मैंने—यह कैसी मूर्खता कर डाली मैंने ?

सरोज भी कुछ अस्थिर-सी हो उठी थी। बात कुछ उसे भी अच्छी न लगी...।

सरोज की माँ भी व्यथित से स्वर में बोलीं—‘जीजी, यह क्या किया तुमने ? शेखर की तुम आदत जानती हो, वह ज़रूर बुरा मान जायगा...।’

चाची मुस्कराकर बोली—‘हाँ हाँ री, मैं उसकी आदत...क्यों न जानूँगी ? दूध पीते को पाला जो है। मुझे छोड़कर वह जायगा कहाँ ? मैं उसकी आदत क्यों न जानूँगी ?’ और फिर हँसने लगीं...।

सरोज की माँ के जीजी की यह बात कुछ समझ में नहीं आई । विस्मय से जीजी का मुँह तकने लगी । बोली—‘और जीजी, वह राय-बहादुर साहब वाली क्या बात थी ?’

‘कुछ नहीं किरण । यह शेखर एक पागल बेठा है मेरा । बूढ़ी थोड़ी देर को कभी-कभी नादानी कर बैठता है । और कुछ नहीं ।’

किरण को अपनी जीजी की यह बात भी स्पष्टतया समझ में आ सकी । केवल इतना जान पाई कि शेखर इनका एक पागल बेटा है जिसे इस जीजी ने दूध पीते से को पाला है । बस...



शेखर ने चन्द्रहास को पकड़ा और जैसी कि उसकी आदत थी, सिनेमा घर की ओर चल पड़ा । चन्द्रहास ने उसे उसके चिन्तित होने का कारण बहुत ही पूछा किन्तु शेखर ने कुछ नहीं बताया । तब चन्द्रहास ने कहा कि नयन के पिता नयन का कहीं और विवाह करने का सोच रहे हैं । शेखर ने उसे आश्वासन दिया और कहा कि घबराने की कोई बात नहीं है, वह कल नयन के पिता के पास अवश्य जायगा और सब काम ठीक कर लेगा ।

चन्द्रहास ने हैरानी से शेखर को देखा । एक दम उसकी इस बात पर वह विश्वास न ला सका किन्तु शेखर से इस सम्बन्ध पर अधिक कुछ पूछ-ताछ भी वह नहीं कर सका । वह शेखर की प्रकृति से भली-भाँति परिचित था, सो चुप ही बना रहा ।

आज पिक्चर में शेखर को कोई विशेष आनन्द न आया । क्योंकि उसकी समस्त चेतना चाँची के उन्हीं शब्दों पर, जो कबुए भी थे और उसके हृदय पर कुठाराघात करने के लिए पर्याप्त भी, आबद्ध थी । वह अपने में अस्पष्ट सी बेचैनी और अस्थिरता अनुभव कर रहा था । उसकी आत्मा मर्माहत होकर रह गई थी । वह अन्यमनस्क सा अपने घर आ गया ।

किरण ने उसके आ जाने की सूचना जब खुशी-खुशी अपनी जीजी को

दी तो जीजी हर्ष विह्वल-सी होकर बोली—‘मैंने कहा नहीं था किरण... कि वह मेरा एक पागल बेटा है। अब जाऊँ, उसे अपने हाथों से खाना खिलाऊँ।’ और किरण की जीजी तत्पर सी हो रसेई घर में घुस गई।

दूसरे दिन शेखर अनूप सिंह को लेकर नयनतारा के पिता के पास पहुँचा। अनूप सिंह ने कुछ घंटों के परिश्रम और अनुनय-विनय के पश्चात् टुबैको-इन्स्पेक्टर को चन्द्रहास और नयन के विवाह के लिए प्रसन्न कर ही लिया। और खुश-खुश दोनों ने वहीं फिर खाना खाया, और चन्द्रहास को दोनों ने जाकर दोपहर में ‘बघाई’ दी। चन्द्रहास का जैसे विश्वास ही न होता था। हर्षातिरेक में उसके प्राण आरम विभोर हो उठे। वह कसकर शेखर से लिपट गया और अनूप सिंह जी के चरण छुए। अनूप सिंह ने आशीर्वाद का हाथ उसके सिर पर फेर, शेखर सहित वहाँ से बिदा ली।

घर आकर शेखर ने अपने पिता से कहा—‘पिता जी, मेरी इच्छा आगे पढ़ने की है पर हाँ, आप यदि मेरी पढ़ाई के खर्च की व्यवस्था कर सकेंगे तो मैं अपना जीवन सुन्दर बना सकूँगा। चाची ने तो, आप जानते ही हैं, अपना सब कुछ मेरे अर्पण कर दिया है। अब वह तो बेचारी मेरे कारण रीती होकर बैठ गई हैं। उन्होंने मेरे लिए क्या नहीं किया?’

क्रतुह सिंह उसके कन्धे पर हथ रखकर बोले—‘हाँ-हाँ तो बेटा, पढ़ो न। मैं कब मना करता हूँ? यह तो बहुत अच्छी बात है। खानदान का नाम उज्ज्वल ही होगा। बैंक में मेरे दस हजार जमा हैं जब चाहो उन्हें निकलवा सकते हो। वह सब तुम्हारे ही हैं।’

‘बहुत ठीक पिता जी। काम चल जायगा। बस, मैं आगे पढ़ूँगा, पढ़ता ही रहूँगा। हृद निश्चय के से स्वर में शेखर ने प्रसन्न होकर कहा और खुशी में फूला हुआ अपने कमरे की ओर चल दिया।

चाची आई तो उसने कह दिया ‘मैं बस चाची, आगे पढ़ूँगा। अभी और कोई काम नहीं करके बस, आगे पढ़ूँगा।’

